No. 129. Prem-Pachisi.

हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी-माला—३३ R. Gams

प्रेम-पचीसी

लेखक—

प्रेमचन्द

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

शाखा—ज्ञानवापी, काशी

東京外国語大学
図書館蔵書
604909
平成 18 年度

寄贈 蒲生禮一氏

[तृतीय बार] १९८६ [मूल्य सजिल्द २॥)

111-14

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया,
प्रोप्राइटर—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
२०३, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया,
"वणिक् प्रेस"
नं० १ सरकार लेन,
कलकत्ता।

निवेदन

जिस प्रकार उत्तम-से-उत्तम पदार्थको बराबर खाते रहनेसे मन ऊब जाता है उसी प्रकार पाठकोंका भी मन किसी एक विषयको पढ़ते-पढ़ते ऊब जाता है। इसके पहले अन्यान्य विषयकी कितनी पुस्तकें पाठकोंकी सेवामें भेंट की गयी हैं। इसीलिये इस बार पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ हमने हिन्दी-पुस्तक एजेन्सी मालाकी ३३ वीं संख्या 'प्रेम-पचीसी' उनके सामने रखनेका विचार किया। इसमें शिक्षाप्रद २५ अनूठी कहानियां हैं। कहानियों और उपन्यासोंके लिखनेमें 'प्रेमचन्दजी' ने जो प्रसिद्धि और गौरव लाभ किया है, शायद हिन्दीमें अभी तक और किसीने नहीं किया। यह पुस्तक भी उन्हीं उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजीकी सिद्ध-हस्त लेखनीका नमूना है। इन कहानियोंके जोड़की कहानियां महात्मा टालस्टायने ही लिखी हैं जिनका आदर समस्त यूरोपमें हुआ है। भाषा जितनी सरल है भाव उतने ही गम्भीर हैं। कोई कहानी ऐसी नहीं है जिससे मनोविनोदके साथ-साथ धार्मिक और नैतिक शिक्षा न मिलती हो। साधारण पढ़े-लिखे ग्रामीण, किसान तथा विद्यार्थी भी इनको अच्छी तरह समझ सकते हैं। मेरे प्रेमी पाठक 'प्रेमचन्दजी' द्वारा लिखित "प्रेमपचीसी" को अपनाकर अपने प्रेमका पूरा परिचय देंगे, इसका मुझे विश्वास है।

विनीत
—प्रकाशक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—आत्माराम	१
२—पशुसे मनुष्य	१३
३—मूठ	३२
४—ब्रह्मका स्वांग	५६
५—सुहागकी साड़ी	६६
६—विमाता	८४
७—विस्मृति	६२
८—बूढ़ी काकी	१२६
६—हारकी जीत	१४४
१०—लोकमतका सम्मान	१७१
११—दफ्तरी	१८४
१२—विध्वंस	१६४
१३—प्रारब्ध	२०२
१४—बैरका अन्त	२२०
१५—नाग-पूजा	२३३
१६—स्वत्व-रक्षा	२४६
१७—पूर्व संस्कार	२५६
१८—दुस्साहस	२७१
१६—बौड़म	२८४
२०—गुप्त धन	२६६
२१—आदर्श विरोध	३०८
२२—विषम समस्या	३२२
२३—अनिष्ट शंका	३३१
२४—नैराश्य लीला	३४१
२५—परीक्षा	३६१

प्रेम-पचीसी

आत्माराम

१

वेंदो ग्राममें महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायवानमें प्रातःसे संध्यातक अंगेठीके सामने बैठा हुआ खट खट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुननेके लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारणसे वह बन्द हो जाती तो जान पड़ता था कोई चीज गायब हो गयी है। वह नित्यप्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोतेका पिंजरा लिये कोई भजन गाता हुआ तालाबकी ओर जाता था। उस धुंधले प्रकाशमें उसका जर्जर शरीर, पोपला मुंह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्यको उसके पिशाच होनेका भ्रम हो सकता था। ज्योंही लोगोंके कानोंमें आवाज आती "सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता" लोग समझ जाते कि भोर हो गया।

महादेवका पारिवारिक जीवन सुखमय न था। उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुएं थीं, दर्जनों नाती पोते थे; लेकिन उसके बोझको हलका करनेवाला कोई न था। लड़के कहते जबतक,

दादा जीते हैं हम जीवनका आनन्द भोग लें, फिर तो यह ढोल गले पड़े होगा। बेचारे महादेवको कभी-कभी निराहार ही रहना पड़ता। भोजनके समय उसके घरमें साम्यवादका ऐसा गगन-भेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता और नारियलका हुक्का पीता हुआ सो जाता। उसका व्यावसायिक जीवन और भी अशान्तिकारक था। यद्यपि वह अपने काममें निपुण था, उसकी खटाई औरोंसे कहीं ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियायें कहीं ज्यादा कष्टसाध्य थीं, तथापि उसे आये दिन शक्की और धैर्यशून्य प्राणियोंके अपशब्द सुनने पड़ते थे। पर महादेव अविचलित गाम्भीर्य्यसे सिर झुकाये सब कुछ सुना करता। ज्यों-ही यह कलह शांत होता वह अपने तोतेकी ओर देखकर पुकार उठता, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'। इस मन्त्रके जपतेही उसके चित्तको पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जाती थी।

२

एक दिन संयोगवश किसी लड़केने पिंजरेका द्वार खोल दिया। तोता उड़ गया। महादेवने सिर उठाकर जो पिंजरेकी ओर देखा तो उसका कलेजा सन्नसे हो गया। तोता कहां गया! उसने फिर पिंजरेको देखा, तोता गायब था। महादेव घबराकर उठा और इधर-उधर खपरैलोंपर निगाह दौड़ाने लगा। उसे संसारमें कोई वस्तु प्यारी थी तो वह यही तोता था लड़के-बालों, नाती-पोतोंसे उसका जी भर गया था। लड़कोंकी चुल-बुलसे उसके काममें विघ्न पड़ता था। बेटोंसे उसे प्रेम न था, इसलिये नहीं कि वे निकम्मे थे, बलिक इसलिये कि उनके कारण वह अपने आनन्ददायी कुल्हड़ोंकी नियमित संख्यासे वंचित रह जाता था। पड़ोसियोंसे उसे चिढ़ थी, इसलिये कि वह उसकी अंगेठीसे आग निकाल ले जाते थे। इन समस्त विघ्न-बाधाओंसे उसके लिये कोई पनाह थी तो वह यही तोता था। इससे उसे किसी प्रकारका कष्ट न होता था। वह अब उस अवस्थामें था जब मनुष्यको शान्ति-भोगके सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती।

तोता एक खपरैलपर बैठा था। महादेवने पिंजरा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा—'आ, आ, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'। लेकिन गांव और घरके लड़के एकत्र होकर चिल्लाने और तालियां बजाने लगे, ऊपरसे कौवोंने कांव-कांवकी रट लगायी। तोता उड़ा और गांवसे बाहर निकलकर एक पेड़-पर जा बैठा। महादेव खाली पिंजरा लिये उसके पीछे दौड़ा, हां दौड़ा। लोगोंको उसकी द्रुतगामितापर अचम्भा हो रहा था। मोहकी इससे सुन्दर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती।

दो पहर हो गया था। किसान लोग खेतोंसे चले आ रहे थे, उन्हें विनोदका अच्छा अवसर मिला। महादेवको चिढ़ानेमें सभीको मजा आता था, किसीने कङ्कड़ फेंके, किसीने तालियां बजायीं, तोता फिर उड़ा और वहांसे दूर आमके बागमें एक पेड़की फुनगीपर जा बैठा। महादेव फिर खाली पिंजरा लिये मेढककी भांति उचकता हुआ चला। बागमें पहुंचा तो पैरके

तलुवोंसे आग निकल रही थी, सिर चक्कर खा रहा था। जब जरा सावधान हुआ तो फिर पिंजरा उठाकर कहने लगा, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'। तोता फुनगीसे उतरकर नीचेकी एक डालपर आ बैठा; किन्तु महादेवकी ओर सशंक नेत्रोंसे ताक रहा था। महादेवने समझा, डर रहा है। वह पिंजरेको छोड़कर आप एक दूसरे पेड़की आड़में छिप गया। तोतेने चारों ओर गौरसे देखा, निश्शंक हो गया, उतरा और आकर पिंजरेके ऊपर बैठ गया। महादेवका हृदय उछलने लगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त' का मंत्र जपता हुआ धीरे-धीरे तोतेके समीप आया, और लपका कि तोतेको पकड़ लें, किन्तु तोता हाथ न आया, फिर पेड़पर जा बैठा।

साँझतक यही हाल रहा। तोता कभी इस डालपर जाता, कभी उस डालपर। कभी पिंजरेपर आ बैठता, कभी पिंजरेके द्वारपर बैठ अपने दाना-पानीको प्यालियोंको देखता फिर उड़ जाता। बुड्ढा अगर मूर्तिमान मोह था तो तोता मूर्तिमती माया। यहाँतक कि शाम हो गयी, माया और मोहका यह संग्राम अन्धकारमें विलीन हो गया।

३

रात हो गयी। चारों ओर निबिड़ अन्धकार छा गया। तोता न जाने पत्तोंमें कहाँ छिपा बैठा था। महादेव जानता था कि रातको तोता कहीं उड़कर नहीं जा सकता और न पिञ्जरेहीमें

आ सकता है, तिसपर भी वह इस जगहसे हिलनेका नाम न लेता था। आज उसने दिनभर कुछ नहीं खाया, रातके भोजनका समय भी निकल गया, पानीकी एक बून्द भी उसके कंठमें न गयी, लेकिन उसे न भूख थी न प्यास। तोतेके बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पड़ता था। वह दिन-रात काम करता था, इसलिये कि यह उसकी अंतःप्रेरणा थी, जीवनके और काम इसलिये करता था कि आदत थी। इन कामोंमें उसे अपनी सजीविताका लेशमात्र भी ज्ञान न होता था। तोता ही वह वस्तु था जो उसे चेतनाकी याद दिलाता था। उसका हाथसे जाना जीवका देह त्याग करना था।

महादेव दिनभरका भूखा-प्यासा, थका-मांदा रह-रह कर झपकियां ले लेता था, किन्तु क्षणमें फिर चौंककर आँखें खोल देता और उस विस्तृत अंधकारमें उसकी आवाज सुनायी देती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'।

आधी रात गुजर गयी थी। सहसा वह कोई आहट पाकर चौंका तो देखा कि एक दूसरे वृक्षके नीचे एक धुंधला दीपक जल रहा है और कई आदमी बैठे हुए आपसमें कुछ बातें कर रहे हैं। वह सब चिलम पी रहे थे। तमाखूकी महंकने उसे अधीर कर दिया। उच्च स्वरसे बोला—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' और उन आदमियोंकी ओर चिलम पीने चला, किन्तु जिस प्रकार बंदूककी आवाज सुनते ही हिरन भाग जाते हैं उसी प्रकार उसे आते देख वह सब-के-सब उठकर भागे। कोई इधर गया कोई

उधर। महादेव चिल्लाने लगा—'ठहरो ठहरो!' एकाएक उसे ध्यान आ गया, यह सब चोर हैं। वह ज़ोरसे चिल्ला उठा—'चोर चोर, पकड़ो पकड़ो!' चोरोंने पीछे फिरकर भी न देखा।

महादेव दीपकके पास गया तो उसे एक कलसा रखा हुआ मिला। मोरचेसे काला हो रहा था। महादेवका हृदय उछलने लगा। उसने कलसेमें हाथ डाला तो मोहरें थीं। उसने एक मोहर बाहर निकाली और दीपकके उजालेमें देखा; हां मोहर थी। उसने तुरत कलसा उठा लिया; दीपक बुझा दिया और पेड़के नीचे छिपकर बैठ रहा। साहुसे चोर बन गया।

उसे फिर शङ्का हुई ऐसा न हो चोर लौट आयें और मुझे अकेला देखकर मोहरें छीन लें। उसने कुछ मोहरें कमरमें बांधीं फिर एक सूखी लकड़ीसे जमीनकी मिट्टी हटाकर कई गड्ढे बनाये। उन्हें मोहरोंसे भरकर मिट्टीसे ढांक दिया।

४

महादेवके अन्तःनेत्रोंके सामने अब एक दूसरा ही जगत था, चिन्ताओं और कल्पनाओंसे परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोषके हाथसे निकल जानेका भय था, पर अभिलाषाओंने अपना काम शुरू कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफेकी एक भारी दूकान खुल गयी, निज सम्बन्धियोंसे फिर नाता जुड़ गया, विलासकी सामग्रियां एकत्रित हो गयीं, तब तीर्थयात्रा करने चले और वहांसे लौटकर बड़े समारोहसे यज्ञ, ब्रह्मभोज हुआ। इसके

पश्चात् एक शिवालय और कुआं बन गया, एक उद्यान भी आरोपित हो गया और वहां वह नित्यप्रति कथा पुराण सुनने लगा। साधु-सन्तोंका आदर-सत्कार होने लगा।

अकस्मात् उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जायं तो मैं भागूंगा क्योंकर। उसने परीक्षा करनेके लिये कलसा उठाया और दो सौ पगतक बेतहाशा भागा हुआ चला गया। जान पड़ता था उसके पैरोंमें पर लग गये हैं। चिन्ता शांत हो गयी। इन्हीं कल्पनाओंमें रात व्यतीत हो गयी। उषाका आगमन हुआ, हवा जगी, चिड़ियां गाने लगीं। सहसा महादेवके कानोंमें आवाज़ आयी—

"सत्त गुरुदत्त शिवदत्तदाता,
रामके चरनमें चित्त लागा।"

यह बोल सदैव महादेवकी जिह्वापर रहता था, दिनमें सहस्रों ही बार ये शब्द उसके मुखसे निकलते थे, पर उनका धार्मिक भाव कभी उसके अन्तःकरणको स्पर्श न करता था। जैसे किसी बाजेसे राग निकलता है उसी प्रकार उसके मुंहसे यह बोल निकलता था, निरर्थक और प्रभावशून्य। तब उसका हृदयरूपी वृक्ष पत्र-पल्लव-विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुंजरित न कर सकती थी। पर अब उस वृक्षमें कपोलें और शाखाएं निकल आयी थीं; इस वायु-प्रवाहसे झूम उठा; गूंजित हो गया।

अरुणोदयका समय था। प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाशमें डूबी हुई थी। उसी समय तोता परोंको जोड़े हुए ऊंची डालीसे

उतरा, जैसे आकाशसे कोई तारा टूटे, और आकर पिंजरेमें बैठ गया। महादेव प्रफुल्लित होकर दौड़ा और पिंजरेको उठाकर बोला—"आओ आत्माराम, तुमने कष्ट तो बहुत दिया, पर मेरा जीवन भी सफल कर दिया। अब तुम्हें चांदीके पिंजरेमें रखूंगा और सोनेसे मढ़ दूंगा।" उसके रोम-रोमसे परमात्माके गुणानुवादकी ध्वनि निकलने लगी। प्रभु तुम कितने दयावान हो, यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नहीं तो मुझ जैसा पापी, पतित प्राणी, कब इस कृपाके योग्य था। इन पवित्र भावोंसे उसकी आत्मा विह्वल हो गयी, वह अनुरक्त होकर बोल उठा—

"सत्त गुरुदत्त शिवदत्तदाता,
रामके चरनमें चित लागा।"

उसने एक हाथमें पिंजरा लटकाया, बगलमें कलसा दबाया और घर चला।

५

महादेव घर पहुंचा तो अभी कुछ अंधेरा था। रास्तेमें एक कुत्तेके सिवाय और किसीसे भेंट न हुई और कुत्तेको मोहरोंसे विशेष प्रेम नहीं होता। उसने कलसेको एक नादमें छिपा दिया और उसे कोयलेसे अच्छी तरह ढांककर अपनी कोठरीमें रख आया। जब दिन निकल आया तो वह सीधे पुरोहितजीके घर जा पहुंचा। पुरोहितजी पूजापर बैठे सोच रहे थे। कल ही मुकदमेकी पेशी है और अभीतक हाथमें कौड़ी भी नहीं—जजमानोंमें

कोई सांस भी नहीं लेता। इतनेमें महादेवने पालागन किया। पण्डितजीने मुंह फेर लिया, यह अमङ्गलमूर्ति कहांसे आ पहुंची, मालूम नहीं दाना भी मयस्सर होगा या नहीं। रुष्ट होकर पूछा—"क्या है जी, क्या कहते हो, जानते नहीं कि हम इस बेला पूजापर रहते हैं?" महादेवने कहा—"महाराज आज मेरे यहां सत्यनारायणकी कथा है।"

पुरोहितजी विस्मित हो गये, कानोंपर विश्वास न हुआ। महादेवके घर कथाका होना उतनी ही असाधारण घटना थी जितनी अपने घरसे किसी भिखारीके लिये भीख निकालना। पूछा—"आज क्या है?"

महादेव बोला—"कुछ नहीं, ऐसी ही इच्छा हुई कि आज भगवानकी कथा सुन लूं।"

प्रभातहीसे तैयारी होने लगी। बेंदो और अन्य निकटवर्ती गांवोंमें सुपारी फिरी। कथाके उपरान्त भोजका भी नेवता था। जो सुनता आश्चर्य करता। यह आज रेतमें दूब कैसे जमी!

सन्ध्या समय जब सब लोग जमा हो गये, पण्डितजी अपने सिंहासनपर विराजमान हुए तो महादेव खड़ा होकर उच्च स्वरसे बोला—भाइयो, मेरी सारी उम्र छल-कपटमें कट गयी। मैंने न जाने कितने आदमियोंको दगा दिया, कितना खरेको खोटा किया, पर अब भगवानने मुझपर दया की है, वह मेरे मुंहकी कालिखको मिटाना चाहते हैं। मैं आप सभी भाइयोंसे ललकारकर कहता हूं कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ आता हो, जिसकी

जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे मालको खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक-एक कौड़ी चुका ले, अगर कोई यहां न आ सका हो तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिये, कलसे एक महीनेतक जब जो चाहे आवे और अपना हिसाब चुकता कर ले। गवाही-साखीका काम नहीं। सब लोग सन्नाटेमें आ गये। कोई मार्मिक भावसे सिर हिलाकर बोला—"हम कहते न थे? किसीने अविश्वाससे कहा—"क्या खाके भरेगा, हजारों-का टोटल हो जायगा।"

एक ठाकुरने ठठोली की—और जो लोग सुरधाम चले गये?

महादेवने उत्तर दिया—उनके घरवाले तो होंगे।

किन्तु इस समय लोगोंको वसूलीकी इतनी इच्छा न थी जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन मिल कहांसे गया। किसीको महादेवके पास आनेका साहस न हुआ। देहातके आदमी थे, गड़े मुर्दे उखाड़ना क्या जानें। फिर प्रायः लोगोंको याद भी न था कि उन्हें महादेवसे क्या पाना है और ऐसे पवित्र अवसरपर भूल-चूक हो जानेका भय उनका मुंह बन्द किये हुए था। सबसे बड़ी बात यह थी कि महादेवकी साधुताने उन्हें वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुरोहितजी बोले—तुम्हें याद है, मैंने तुम्हें एक कंठा बनानेके लिये सोना दिया था और तुमने कई माशे तौलमें उड़ा दिये थे।

महादेव—हां याद है, आपका कितना नुकसान हुआ होगा?

पुरोहित—५०) से कम न होगा।

महादेवने कमरसे दो मोहरें निकालीं और पुरोहितजीके सामने रख दीं।

पुरोहितकी लोलुपतापर टीकायें होने लगीं। यह बेईमानी है, बहुत तो दो-चार रुपयेका नुकसान हुआ होगा। बेचारेसे ५०) ऐंठ लिये। नारायणका भी डर नहीं। बननेको पंडित, पर नीयत ऐसी खराब! राम राम!!

लोगोंको महादेवसे एक श्रद्धा-सी हो गयी। एक घंटा बीत गया पर उन सहस्रों मनुष्योंमेंसे एक भी न खड़ा हुआ। तब महादेवने फिर कहा—"मालूम होता है, आप लोग अपना-अपना हिसाब भूल गये हैं। इसलिये आज कथा होने दीजिये, मैं एक महीनेतक आपकी राह देखूंगा। इसके पीछे तीर्थयात्रा करने चला जाऊंगा। आप सब भाइयोंसे मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करें।

एक महीनेतक महादेव लेनदारोंकी राह देखता रहा। रातको चोरोंके भयसे नींद न आती। अब वह कोई काम न करता। शराबका चसका भी छूटा। साधु-अभ्यागत जो द्वारपर आ जाते उनका यथायोग्य सत्कार करता। दूर-दूर उसका सुयश फैल गया। यहांतक कि महीना पूरा हो गया और एक आदमी भी हिसाब चुकाने न आया। अब महादेवको ज्ञात हुआ कि संसारमें कितना धर्म, कितना सद्व्यवहार है। अब उसे मालूम हुआ कि संसार बुरोंके लिये बुरा है, पर अच्छोंके लिये अच्छा है।

६

इस घटनाको हुए ५० वर्ष बीत चुके हैं। आप वेंशो जाइये तो दूरहीसे एक सुनहरा कलस दिखायी देता है। यह ठाकुरद्वारेका कलस है। उसमें मिला हुआ एक पक्का तालाब है जिसमें खूब कमल खिले रहते हैं। उसकी मछलियां कोई नहीं पकड़ता। तालाबके किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्मारामका स्मृतिचिह्न है। उनके सम्बन्धमें विभिन्न किम्बदन्तियां प्रचलित हैं। कोई कहता है, उनका रत्नजटित पिंजरा स्वर्गको चला गया कोई कहता है वह 'सत्त गुरुदत्त' कहते हुए अंतर्धान हो गये। पर यथार्थ यह है कि उस पक्षीरूपी चन्द्रको किसी बिल्लीरूपी राहुने ग्रस लिया। लोग कहते हैं, आधीरातको अभीतक तालाबके किनारे आवाज आती है—

"सत्त गुरुदत्त शिवदत्तदाता,
रामके चरनमें चित्त लागा।"

महादेवके विषयमें भी कितनी जनश्रुतियां हैं। उनमें सबसे मान्य यह है कि आत्मारामके समाधिस्थ होनेके बाद वह कई संन्यासियोंके साथ हिमालय चले गये और वहांसे लौटकर न आये। उनका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया।

पशुसे मनुष्य

१

दुर्गा माली डाक्टर मेहरा बार-ऐट-लाके यहां नौकर था। पांच रुपये मासिक वेतन पाता था। उसके घरमें स्त्री और दो-तीन छोटे बच्चे थे। स्त्री पड़ोसियों-के लिये गेहूं पीसा करती थी। दो बच्चे, जो जरा समझदार थे, इधर-उधरसे लकड़ियां उपले चुन लाते थे। किन्तु इतना यत्न करनेपर भी, वे बहुत तकलीफमें रहते थे। दुर्गा, डाक्टर साहबकी नजर बचाकर बगीचेसे फूल चुन लेता और बाजारमें पुजारियोंके हाथ बेच दिया करता था। कभी-कभी फलोंपर भी हाथ साफ किया करता। यही उसकी ऊपरी आमदनी थी। इससे नोन-तेल आदिका काम चल जाता था। उसने कई बार डाक्टर महोदयसे वेतन बढ़ानेके लिये प्रार्थना की थी, परन्तु डाक्टर साहब नौकरकी वेतनवृद्धिको छूतकी ऐसा बीमारी समझते थे, जो एकसे अनेकोंको ग्रस लेती है। वे साफ कह दिया करते कि, "भाई मैं तुम्हें बांधे तो हूं नहीं। तुम्हारा निर्वाह यहां नहीं होता, तो और कहीं चले जाओ, मेरे लिये मालियोंका अकाल नहीं है।" दुर्गामें इतना साहस न था कि वह लगी हुई रोजी छोड़कर नौकरी ढूंढने निकलता। इससे अधिक वेतन पानेकी आशा भी नहीं थी। इसलिये वह इसी निराशामें पड़ा हुआ जीवनके दिन काटता और अपने भाग्यको रोता था।

डाक्टर महोदयको बागवानीसे विशेष प्रेम था। नाना प्रकारके फूल-पत्ते लगा रक्खे थे। अच्छे-अच्छे फलोंके पौधे दरभंगा, मलीहाबाद, सहारनपुर आदि स्थानोंसे मंगवाकर लगाये थे। वृक्षोंको फलोंसे लदे हुए देखकर उन्हें हार्दिक आनन्द होता था। अपने मित्रोंके यहां गुलदस्ते, और शाक-भाजीकी डालियां, तोहफेके तौरपर भिजवाते रहते थे। उन्हें फलोंको आप खानेका शौक न था, पर मित्रोंके खिलानेमें उन्हें असीम आनन्द प्राप्त होता था। प्रत्येक फलके मौसिममें मित्रोंकी दावत करते, और 'पिकनिक पार्टियां' उनके मनोरंजनका प्रधान अङ्ग थीं।

एक बार गर्मियोंमें उन्होंने अपने कई मित्रोंको आम खानेकी दावत दी। एक मलीहाबादी वृक्षमें सुफेदेके फल खूब लगे हुए थे। डाक्टर साहब इन फलोंको प्रतिदिन देखा करते थे। ये पहले ही फले थे, इसलिये वे मित्रोंसे उनके मिठास और स्वादका बखान सुनना चाहते थे। इस विचारसे उन्हें वही आमोद होता था जो किसी पहलवानको अपने पट्ठोंके करतब दिखानेसे होता है। इतने बड़े, सुन्दर और सुकोमल सुफेदे स्वयं उनकी निगाहसे न गुजरे थे। इन फलोंके स्वादका उन्हें इतना विश्वास था कि वे एक फल चखकर उनकी परीक्षा करना आवश्यक न समझते थे, प्रधानतः इसलिये कि एक फलकी कमी एक मित्रको रसास्वादनसे वञ्चित कर देगी।

संध्याका समय था, चैतका महीना, मित्रगण आकर बगीचेमें हौजके किनारे कुरसियोंपर बैठे। बर्फ और दूधका प्रबन्ध पहले

हीसे कर लिया गया था, पर अभीतक फल न तोड़े गये थे। डाक्टर साहब पहले फलोंको पेड़में लगे हुए दिखलाकर तब उन्हें तोड़ना चाहते थे, जिसमें किसीको यह सन्देह न हो कि फल इनके बागके नहीं हैं। जब सब सज्जन जमा हो गये तब उन्होंने कहा—"आप लोगोंको कष्ट तो होगा पर जरा चलकर फलोंको पेड़में लटकते हुए देखिये। बड़ा ही मनोहर दृश्य है। गुलाबमें भी ऐसी लोचन-प्रिय लाली न होगी। रङ्गसे स्वाद टपका पड़ता है। मैंने इसकी कलम खास मलीहाबादसे मंगवाई थी और उसका विशेष रीतिसे पालन किया गया है।"

मित्रगण उठे। डाक्टर साहब आगे-आगे चले। रविशोंके दोनों ओर गुलाबकी क्यारियां थीं। उनकी छटा दिखाते हुए वे अन्तमें सुफेदेके पेड़के सामने आ गये। मगर, आश्चर्य! वहां एक भी फल न था। डाक्टर साहबने समझा शायद यह वह पेड़ नहीं है, दो पग और आगे चले, दूसरा पेड़ मिल गया। और आगे बढ़े तीसरा पेड़ मिला। फिर पीछे लौटे और एक विस्मित दशामें सफेदेके वृक्षके नीचे आकर रुक गये। इसमें सन्देह नहीं कि वृक्ष यही है, पर फल क्या हुए? बीस-पचीस आम थे, एकका भी पता नहीं! मित्रोंकी ओर अपराध-पूर्ण नेत्रोंसे देखकर बोले—"आश्चर्य है कि इस पेड़में एक भी फल नहीं है। आज सुबह मैंने देखा था, पेड़ फलोंसे लदा हुआ था। यह देखिये, फलोंके डंठल हैं। यह अवश्य मालीकी शरारत है। मैं आज उसकी हड्डियां तोड़ दूंगा। उस पाजीने मुझे कितना धोखा

दिया ! मैं बहुत लज्जित हूं कि आप लोगोंको व्यर्थ कष्ट हुआ। मैं सत्य कहता हूं, इस समय मुझे जितना दुःख है उसे प्रकट नहीं कर सकता। ऐसे रंगीले, कोमल, कमनीय फल मैंने अपने जीवनमें कभी न देखे थे। उनके यों लुप्त हो जानेसे मेरे हृदयके टुकड़े हुए जाते हैं।"

यह कहकर वे नैराश्य-वेदनासे कुरसीपर बैठ गये। मित्रोंने सान्त्वना देते हुए कहा—"नौकरोंका सब जगह यही हाल है। यह जाति ही पाजी होती है। आप हम लोगोंके कष्टका खेद न करें। वह सुफेदे न सही, दूसरे फल सही।"

एक सज्जनने कहा—"साहब, मुझे तो सब आम एकहीसे मालूम होते हैं। सुफेदे, मोहनभोग, लङ्गड़े, बम्बई, फजरी, दशहरी इनमें कोई भेद ही नहीं मालूम होता, जाने आप लोगोंको कैसे उनके स्वादमें फर्क मालूम होता है।"

दूसरे सज्जन बोले—"यहां भी वही हाल है। इस समय जो फल मिलें वही मंगवाइये। जो गये उनका अफसोस क्या?"

डाक्टर साहबने व्यथित भावसे कहा—"आमोंकी क्या कमी है. सारा बाग भरा पड़ा है, खूब शौकसे खाइये और बांधकर घर ले जाइये। वे हैं और किसलिये? पर वह रस और वह स्वाद कहां? आपको विश्वास न होगा, उन सुफेदोंपर ऐसा निखार था कि सेब मालूम होते थे। सेब भी देखनेहीमें सुन्दर होता है, उसमें वह रुचि-वर्द्धक लालित्य, वह सुधामय मृदुता कहां! इस मालीने आज वह अनर्थ किया है कि जी चाहता है, नमकहरामको

गोली मार दूं। इस वक्त सामने आ जाय तो अधमुआ कर दूं।"

माली बाजार गया हुआ था। डाक्टर साहबने साईससे कुछ आम तुड़वाये मित्रोंने आम खाये, दूध पिया और डाक्टर साहबको धन्यवाद देकर अपने-अपने घरको राह ली। लेकिन मिस्टर मेहरा वहां हौजके किनारे हाथमें हन्टर लिये मालीकी बाट जोहते रहे। आकृतिसे ज्ञात पड़ता था मानों साक्षात् क्रोध मूर्तिमान् हो गया था।

८

कुछ रात गये दुर्गा बाजारसे लौटा। वह चौकन्नी आंखोंसे इधर-उधर ताकता आता था। ज्योंही उसने डाक्टर साहबको हौजके किनारे हाथमें हन्टर लिये बैठे देखा, उसके होश उड़ गये। समझ गया कि चोरी पकड़ ली गई। इसी भयसे उसने बाजारमें खूब देर की थी। उसने समझा था, डाक्टर साहब कहीं सैर करने गये होंगे, मैं चुपकेसे कटहलके नीचे अपनी झोंपड़ीमें जा बैठूंगा, सवेरे कुछ पूछ-ताछ भी हुई तो मुझे सफाई देनेका अवसर मिल जायगा, कह दूंगा, सरकार मेरे झोंपड़ेकी तलाशी ले लें, इस प्रकार मामला दब जायगा। समय सफल चोरका सबसे बड़ा मित्र है। एक-एक क्षण उसे निर्दोष सिद्ध करता जाता है। किन्तु जब वह रंगे हाथों पकड़ा जाता है तब उसे बच निकलनेकी कोई राह नहीं रहती। रुधिरके सूखे हुए धब्बे रंगके दाग बन सकते हैं, पर ताजा लोहू आप-ही-आप पुकारता है। दुर्गाके

पैर थम गये, छाती धड़कने लगी। डाक्टर साहबकी निगाह उस-पर पड़ गई थी। अब उलटे पांव लौटना व्यर्थ था।

डाक्टर साहब उसे दूरसे देखते ही उठे कि चलकर उसको खूब मरम्मत करूं। लेकिन वकील थे, विचार किया कि इसका बयान लेना आवश्यक है। इशारेसे निकट बुलाया और पूछा—"हुफेरेके पेड़में कई आम लगे हुए थे, एक भी नहीं दिखायी देता। क्या हो गये?"

दुर्गाने निर्दोष भावसे उत्तर दिया—"हजूर, अभी मैं बाजार गया हूं तबतक तो सब आम लगे हुए थे। इतनी देरमें कोई तोड़ ले गया हो तो मैं नहीं कह सकता।"

डाक्टर—"तुम्हारा किसपर सन्देह है?"

दुर्गा—"सरकार, अब मैं किसे बताऊं! इतने नौकर-चाकर हैं, न जाने किसकी नीयत बिगड़ी हो।"

डाक्टर—"मेरा सन्देह तुम्हारे ऊपर है, अगर तोड़कर रक्खे हो तो लाकर दे दो, या साफ-साफ कह दो कि मैंने तोड़े हैं, नहीं तो मैं बुरी तरह पेश आऊंगा।"

चोर केवल दण्डसे ही नहीं बचना चाहता, वह अपमानसे भी बचना चाहता है। वह दण्डसे इतना नहीं डरता जितना अपमानसे। जब उसे सजासे बचनेकी कोई आशा नहीं रहती, उस समय भी वह अपने अपराधको स्वीकार नहीं करता। वह अपराधी बनकर छूट जानेसे निर्दोष बनकर दण्ड भोगना बेहतर समझता है। दुर्गा इस समय अपराध स्वीकार करके सजासे बच

सकता था, पर उसने कहा—"हजूर मालिक हैं, जो चाहें करें, पर मैंने आम नहीं तोड़े। सरकार ही बतायें, इतने दिन मुझे आपकी तावेदारी करते हो गये, कभी मैंने एक पत्ती भी छुई?"

डाक्टर—"तुम कसम खा सकते हो?"

दुर्गा—"गंगाकी कसम जो मैंने आमोंको हाथसे छुआ भी हो।"

डाक्टर—"मुझे इस कसमपर विश्वास नहीं है। तुम पहले लोटेमें पानी लाओ, उसमें तुलसीकी पत्तियां डालो, तब कसम खाकर कहो कि अगर मैंने आम तोड़े हों तो मेरा लड़का मेरे काम न आये। तब मुझे विश्वास आयगा।"

दुर्गा—"हजूर, सांचको आंच क्या, जो कसम कहिये खाऊंगा। जब मैंने काम ही नहीं किया तो मुझपर कसम क्या पड़ेगी।"

डाक्टर—"अच्छा, बातें न बनाओ, जाकर पानी लाओ।"

डाक्टर महोदय मानव-चरित्रके ज्ञाता थे। सदैव अपराधियोंसे व्यवहार रहता था। यद्यपि दुर्गा जबानसे हेकड़ीकी बातें कर रहा था, पर उसके हृदयमें भय समाया हुआ था। वह अपने झोंपड़ेमें आया, लेकिन लोटेमें पानी लेकर जानेकी उसे हिम्मत न हुई। उसके हाथ थरथराने लगे। ऐसी घटनाएं याद आ गयीं जिनमें झूठी गङ्गा उठानेवालोंपर देवी कोपका प्रहार हुआ था। ईश्वरके सर्वज्ञ होनेका ऐसा मर्मस्पर्शी विश्वास उसे कभी नहीं हुआ था। उसने निश्चय किया कि "मैं झूठी गङ्गा न उठाऊंगा,

यही न होगा, निकाल दिया जाऊंगा। नौकरी फिर कहीं-न-कहीं मिल जायगी। और नौकरी न भी मिले तो मजूरी तो कहीं नहीं गयी है। कुदाल भी चलाऊंगा तो सांझतक आधसेर आटेका ठिकाना हो जायगा।" वह धीरे-धीरे खाली हाथ डाक्टर साहबके सामने आकर खड़ा हो गया।

डाक्टर साहबने कड़े स्वरसे पूछा—"पानी लाया ?"

दुर्गा—"हजूर, मैं गंगा न उठाऊंगा।"

डाक्टर—"तो तुम्हारा आम तोड़ना साबित है।"

दुर्गा—"अब सरकार जो चाहें समझें। मान लीजिये, मैंने ही आम तोड़े तो आपका गुलाम ही तो हूं। रात-दिन तावेदारी करता हूं, बाल-बच्चे आमोंके लिये रोवें तो कहां जाऊं। अबकी जान बकसी जाय, फिर ऐसा कसूर न होगा।"

डाक्टर महोदय इतने उदार न थे। उन्होंने यही बड़ा उपकार किया कि दुर्गाको पुलिसके हवाले न किया और न हन्टर ही लगाये। उसकी इस धार्मिक श्रद्धाने उन्हें कुछ नर्म कर दिया था। मगर ऐसे दुर्बल हृदय मनुष्यको अपने यहां रखना असम्भव था। उन्होंने उसी क्षण दुर्गाको जवाब दे दिया और उसकी आधी महीनेकी बाकी मजूरी जप्त कर ली।

३

कई मासके पश्चात् एक दिन डाक्टर मेहरा बाबू प्रेमशंकरकी बागकी सैर करने गये। वहांसे कुछ-अच्छी अच्छी कलमें लाना चाहते थे। प्रेमशंकरको भी बागवानीसे प्रेम था और दोनों मनु-

ष्योंमें यही एक समानता थी, अन्य सभी विषयोंमें एक दूसरेसे भिन्न थे। प्रेमशंकर बड़े सन्तोषी, सरल, सहृदय मनुष्य थे। वे कई साल अमेरिका रह चुके थे। वहां उन्होंने कृषि-विज्ञानका खूब अध्ययन किया था और यहां आकर इस वृत्तिको अपनी जीविकाका आधार बना लिया था। मानव-चरित्र और वर्त्तमान सामाजिक संगठनके विषयमें उनके विचार विचित्र थे। इसके कारण शहरके सभ्य समाजमें लोग उनकी उपेक्षा करते थे और उन्हें झक्की समझते थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनके सिद्धान्तों-से लोगोंको एक प्रकारकी दार्शनिक सहानुभूति थी पर उनके क्रियात्मक होनेके विषयमें उन्हें बड़ी शङ्का थी। संसार कर्मक्षेत्र है, मीमांसाक्षेत्र नहीं। यहां सिद्धांत सिद्धान्त ही रहेंगे, उनका प्रत्यक्ष घटनाओंसे सम्बन्ध नहीं।

डाक्टर साहब बगीचेमें पहुंचे तो उन्होंने प्रेमशंकरको क्यारियोंमें पानी देते हुए पाया। कुएंपर एक मनुष्य खड़ा पम्पसे पानी निकाल रहा था। मेहराने उसे तुरंत पहचान लिया। वह दुर्गा माली था। डाक्टर साहबके मनमें उस समय दुर्गाके प्रति एक विचित्र ईर्ष्याका भाव उत्पन्न हुआ। जिस नराधमको उन्होंने दण्ड देकर अपने यहांसे अलग कर दिया था, उसे नौकरी क्यों मिल गयी ? यदि दुर्गा इस वक्त फटेहाल रोनी सूरत बनाये दिखायी देता और डाक्टर साहबको देखते ही उनके पैरोंपर गिर पड़ता, तो शायद डाक्टर साहबको उसपर दया आ जाती। वे सम्भवतः उसे कुछ इनाम देते और प्रेमशंकरसे उसकी कुछ प्रशंसा भी कर देते।

उनकी प्रकृतिमें दया थी और अपने नौकरोंपर उनकी कृपादृष्टि रहती थी। परन्तु उनकी इस कृपा और उस दयामें लेशमात्र भी भेद न था जो अपने कुत्तों और घोड़ोंसे थी। इस कृपाका आधार न्याय नहीं, दीन-पालन है। दुर्गाने उन्हें देखा, कुदाल खड़े-खड़े सलाम किया और फिर अपने काममें लग गया। उसका यह अभिमान डाक्टर साहबके हृदयमें भालेकी भांति चुभ गया। उन्हें यह विचार कर अत्यन्त क्रोध आया कि मेरे यहांसे निकलना इसके लिये हितकर हो गया। उन्हें अपनी सहृदयतापर जो घमण्ड था उसे बड़ा आघात लगा। प्रेमशंकर ज्योंही उनसे हाथ मिलाकर उन्हें क्यारियोंकी सैर कराने लगे त्योंही डाक्टर साहबने उनसे पूछा—"यह आदमी आपके यहां कितने दिनोंसे है ?"

प्रेमशङ्कर—"यही ६ या ७ महीने हुए होंगे।"

डाक्टर साहब—"कुछ नोच-खसोट तो नहीं करता ? यह मेरे यहां माली था। इसके हथलपकेपनसे तङ्ग आकर मैंने इसे निकाल दिया था। कभी फूल तोड़कर बेच लाता, कभी पौधे उखाड़ ले जाता, और फलोंको कहना ही क्या। वे तो इसके मारे बचते ही न थे। एक बार मैंने मित्रोंकी दावत की थी। मलीहाबादी सुफेदेमें खूब फल लगे हुए थे। जब सब लोग आकर बैठ गये और मैं उन्हें फल दिखानेके लिये ले गया तो सारे फल गायब! कुछ न पूछिये, उस घड़ी कितनी भद हुई! मैंने उसी क्षण इन महाशयको दुतकार बताया। बड़ा ही दगाबाज आदमी है, और ऐसा चतुर है कि उसको पकड़ना मुश्किल है। कोई वकीलों हो जैसा काइयां आदमी हो तो उसे पकड़ सकता है। ऐसी सफाई और ढिठाईसे दुलकता है कि उसका मुंह देखते रह जाइये। आपको भी तो कभी चरका नहीं दिया ?"

प्रेमशंकर—"जी नहीं, कभी नहीं। मुझे उसने शिकायतका कोई अवसर नहीं दिया। यहां तो खूब मिहनत करता है, यहां-तक कि दोपहरकी छुट्टीमें भी आराम नहीं करता। मुझे तो इस-पर इतना भरोसा हो गया है कि सारा बगीचा उसीपर छोड़ रक्खा है। दिनभरमें जो कुछ आमदनी होती है वह शामको मुझे दे देता है और कभी एक पाईका भी अन्तर नहीं पड़ता।"

डाक्टर—"यही तो उसका कौशल है कि आपको उलटे छुरेसे मूंड़े, और आपको खबर भी नहीं। आप उसे वेतन क्या देते हैं ?"

प्रेमशंकर—"यहां किसीको वेतन नहीं दिया जाता। सब लोग लाभमें बराबरके साझेदार हैं। महीनेभरमें आवश्यक व्ययके पश्चात् जो कुछ बचता है, उसमेंसे १०) प्रति सैकड़े धर्मखातेमें डाल दिया जाता है, शेष रुपये समान भागोंमें बांट दिये जाते हैं। पिछले महीने १४०) की आमदनी हुई थी। मुझे मिलाकर यहां ७ आदमी हैं। २०) हिस्सेमें पड़े। अबकी नारंगियां खूब हुई हैं, मटरकी फलियों, गन्ने, गोभी आदिसे अच्छी आमदनी हो रही है। ४०) रु० से कम न पड़ेंगे।"

डाक्टर मेहराने आश्चर्य्यसे पूछा—"इतनेमें आपका काम चल जाता है ?"

प्रेमशंकर—"जी हां, बड़ी सुगमतासे। मैं इन्हीं आदमियोंकेसे कपड़े पहनता हूं, इन्हींकासा खाना खाता हूं और मुझे कोई दूसरा व्यसन नहीं है। यहां २०) मासिक उन औषधियोंका खर्च है जो गरीबोंको दी जाती है। ये रुपये संयुक्त-आयसे अलग कर लिये जाते हैं, किसीको कोई आपत्ति नहीं होती। यह साइकिल जो आप देखते हैं, संयुक्त-आयसे ही ली गई है। जिसे जरूरत होती है उसपर सवार होता है। मुझे ये सब अधिक कार्य्य-कुशल समझते हैं और मुझपर पूरा विश्वास रखते हैं। बस, मैं इनका मुखिया हूं। जो कुछ सलाह देता हूं उसे सब मानते हैं। कोई भी यह नहीं समझता कि मैं किसीका नौकर हूं। सब-के-सब अपनेको साझेदार समझते हैं और जी तोड़कर मिहनत करते हैं। जहां कोई मालिक होता है और दूसरा उसका नौकर तो उन दोनोंमें तुरन्त द्वेष पैदा हो जाता है। मालिक चाहता है कि इससे जितना काम लेते बने लेना चाहिये। नौकर चाहता है कि मैं कम-से-कम काम करूं। उसमें स्नेह या सहानुभूतिका नामतक नहीं होता। दोनों यथार्थमें एक दूसरेके शत्रु होते हैं। इस प्रतिद्वन्द्विताका दुष्परिणाम हम और आप देख ही रहे हैं। मोटे और पतले आदमियोंके पृथक्-पृथक् दल बन गये हैं और उनमें घोर संग्राम हो रहा है। काल-चिह्नोंसे ज्ञात होता है कि यह प्रतिद्वन्द्विता अब कुछ ही दिनोंकी मेहमान है। इसकी जगह

अब सहकारिताका आगमन होनेवाला है। मैंने अन्य देशोंमें इस घातक संग्रामके दृश्य देखे हैं और मुझे उनसे घृणा हो गयी है। सहकारिता ही हमें इस सङ्कटसे मुक्त कर सकती है।"

डाक्टर—"तो यह कहिये कि आप 'सोशलिस्ट' हैं।"

प्रेमशंकर—"जी नहीं, मैं 'सोशलिस्ट' या 'डिमाक्रेट' कुछ नहीं हूं। मैं केवल न्याय और धर्मका दीन सेवक हूं। मैं निस्स्वार्थ सेवाको विद्यासे श्रेष्ठ समझता हूं। मैं अपनी आत्मिक और मानसिक शक्तियोंको, बुद्धि-सामर्थ्यको, धन और वैभवका गुलाम नहीं बनाना चाहता। मुझे वर्तमान शिक्षा और सभ्यतापर विश्वास नहीं है। विद्याका धर्म है आत्मिक उन्नति, और आत्मिक उन्नतिका फल उदारता, त्याग, सदिच्छा सहानुभूति, न्यायपरता और दयाशीलता है। जो शिक्षा हमें निर्बलोंको सतानेपर तैयार करे, जो हमें धरती और धनका गुलाम बनाये जो हमें भोग-विलासमें डुबाये, जो हमें दूसरोंका रक्त पीकर मोटा, होनेका इच्छुक बनाये, वह शिक्षा नहीं भ्रष्टता है। अगर मूर्ख, लोभ और मोहके पंजेमें फंस जायं तो वे क्षम्य हैं, परन्तु विद्या और सभ्यताके उपासकोंकी स्वार्थान्धता अत्यन्त लज्जाजनक है। हमने विद्या और बुद्धि-बलको विभूति-शिखरपर चढ़नेका मार्ग बना लिया। वास्तवमें वह सेवा और प्रेमका साधन था। कितनी विचित्र दशा है कि जो जितना ही बड़ा विद्वान है वह उतना ही बड़ा स्वार्थसेवी है। बस, हमारी सारी विद्या और बुद्धि, हमारा सारा उत्साह और अनुराग, धन-लिप्सा-

में ग्रसित है। हमारे प्रोफेसर साहब एक हजारसे कम वेतन पायें तो उनका मुंह ही नहीं सीधा होता। हमारे दीवानी और मालके अधिकारी लोग दो हजार मासिक पानेपर भी अपने भाग्यको रोया करते हैं। हमारे डाक्टर साहब चाहते हैं कि मरीज मरे या जिये, मेरी फीसमें बाधा न पड़े और हमारे वकील साहब (क्षमा कीजियेगा) ईश्वरसे मनाया करते हैं कि ईर्ष्या और द्वेषका प्रकोप हो और मैं सोनेकी दीवार खड़ी कर लूं। "समय धन है --" इसी वाक्यको हम ईश्वर-वाक्य समझ रहे हैं। इन महान् पुरुषोंमेंसे प्रत्येक व्यक्ति सैकड़ों नहीं, हजारों लाखों गरीबोंकी जीविका हड़प जाता है और फिर भी उसे जातिका भक्त बननेका दावा है। वह अपने स्वजाति-प्रेमका डङ्का बजाता-फिरता है। पैदा दूसरे करें, पसीना दूसरे बहायें, खाना और मोछोंपर ताव देना इनका काम है। मैं समस्त शिक्षित समुदायको केवल निकम्मा ही नहीं, वरन् अनर्थकारी भी समझता हूं।"

डाक्टर साहबने बहुत धैर्य्यसे काम लेकर पूछा—"तो क्या आप चाहते हैं कि हम सब-के-सब मजूरी करें?"

प्रेमशङ्कर—"जी नहीं, हालांकि ऐसा हो तो इससे मनुष्य-जातिका बहुत उपकार हो। मुझे जो आपत्ति है वह केवल दशाओंमें इस अन्याय-पूर्ण असमतासे है। यदि एक मजूर ५) रु० में अपना निर्वाह कर सकता है, तो एक मानसिक काम करने वाले प्राणीके लिये इससे दुगुनी तिगुनी आय काफी होनी

चाहिये और यह अधिकता इसलिये कि उसे कुछ उत्तम भोजन वस्त्र तथा सुखकी आवश्यकता होती है। मगर पांच और पांच हजार, पचास और पचास हजारका अस्वाभाविक अन्तर क्यों हो? इतना ही नहीं, हमारा समाज पांच और पांच लाखके अन्तरका भी तिरस्कार नहीं करता; वरन् उसकी और भी प्रशंसा करता है। शासन-प्रबन्ध, वकालत, चिकित्सा, चित्ररचना, शिक्षा, दलाली, व्यापार, सङ्गीत और इसी प्रकारकी सैकड़ों अन्य कलाएं शिक्षित समुदायकी जीवन-वृत्ति बनी हुई हैं। पर इनमेंसे एक भी धनोपार्जन नहीं करती। उसका आधार दूसरों-की कमाईपर है। मेरी समझमें नहीं आता कि वह उद्योग धन्धे जो जीवनकी सामग्रियां पैदा करते हैं, जिनपर जीवनका अव-लम्बन है, क्यों उन पेशोंसे नीचे समझे जायं, जिनका काम केवल मनोरञ्जन या अधिक-से-अधिक धनोपार्जनमें सहायता करना है। आज सारे वकीलोंका देश-निकाला हो जाय, सारे अधिकारिवर्ग लुप्त हो जायँ और सारे दलाल स्वर्गको सिधारें, तब भी संसार-का काम चलता रहेगा, बल्कि और भी सरलतासे। किसान भूमि जोतेंगे, जुलाहे कपड़े बुनेंगे; बढ़ई, लोहार, राज, चर्मकार सब-के-सब पूर्ववत् अपना-अपना काम करते रहेंगे। उनकी पञ्चायतें उनके झगड़ोंका निबटारा करेंगी। लेकिन यदि किसान न हों, तो सारा संसार क्षुधा-पीड़ासे व्याकुल हो जाय। परन्तु किसानके लिए ५) रु० बहुत समझा जाता है और वकील साहब या डाक्टर साहबके लिये पांच हजार भी काफी नहीं!"

डाक्टर—"आप अर्थशास्त्रके उस महत्त्व-पूर्ण सिद्धान्तको भूले जाते हैं जिसे श्रम-विभाग (Division of labour) कहते हैं। प्रकृतिने प्राणियोंको भिन्न-भिन्न शक्तियां प्रदान की हैं और उनके विकासके लिये भिन्न-भिन्न दशाओंकी आवश्यकता है।"

प्रेमशंकर—"मैं यह कब कहता हूं कि प्रत्येक मनुष्य मजूरी करनेपर मजबूर किया जाये! नहीं, जिसे परमात्माने विचारको शक्ति दी है वह शास्त्रोंकी विवेचना करे। जो भावुक हो, वह काव्यकी रचना करे। जो अन्यायसे घृणा करता हो वह वकालत करे। मेरा कथन केवल यह है कि भिन्न कार्यों को हैसियतमें इतना अन्तर न रहना चाहिये। मानसिक और औद्योगिक कामोंमें इतना फर्क न्यायके विरुद्ध है। यह प्रकृतिके नियमोंके प्रतिकूल ज्ञात होता है कि आवश्यक और अनिवार्य्य कार्य्यों पर अनावश्यक और निवार्य्य कार्य्यों को प्रधानता हो। कतिपय सज्जनोंका मत है कि इस साम्यसे गुणी लोगोंका अनादर होगा और संसारको उनके सद्विचारों और सद्-कार्य्योंसे लाभ न पहुंच सकेगा। किन्तु वे भूल जाते हैं कि संसारके बड़े-से-बड़े पण्डित, बड़े-से-बड़े कवि, बड़े-से-बड़े आविष्कारक, बड़े-से-बड़े शिक्षक, धन और प्रभुताके लोभसे मुक्त थे। हमारे अस्वाभाविक जीवनका एक कुपरिणाम यह भी है कि हम बलात् कवि और शिक्षक बन जाते हैं। संसारमें आज अगणित लेखक और कवि, वकील और शिक्षक उपस्थित हैं। वे सब-के-सब पृथ्वीपर भार-रूप हो रहे हैं। जब उन्हें मालूम होगा कि इन 'दिव्य' कलाओंमें कुछ लाभ नहीं है तो वही लोग कवि होंगे, जिन्हें कवि होना चाहिये। संक्षेपमें कहना यही है कि धनकी प्रधानताने हमारे समस्त समाजको उलट-पलट दिया है।

डाक्टर मेहरा अधीर हो गये। बोले—'महाशय, समाज-संगठनका यह रूप देव-लोकके लिये चाहे उपयुक्त हो, पर भौतिक संसारके लिये और इस भौतिक कालमें वह कदापि उपयोगी नहीं हो सकता।"

प्रेमशंकर—"केवल इसी कारणसे अभीतक धनवानोंका, जमींदारोंका और शिक्षित समुदायका प्रभुत्व जमा हुआ है। पर इसके पहले भी, कई बार इस प्रभुत्वको धक्का लग चुका है और चिह्नोंसे ज्ञात होता है कि निकट-भविष्यमें फिर इसका पराजय होनेवाला है। कदाचित् यह हार निर्णयात्मक होगी। समाजका चक्र साम्यसे आरम्भ होकर फिर साम्यपर ही समाप्त होता है। एकाधिपत्य, रईसोंका प्रभुत्व और वाणिज्य-प्राबल्य, उसकी मध्यवर्ती दशायें हैं। वर्तमान चक्रने मध्यवर्ती दशाओंको भोग लिया है और वह अपने अन्तिम स्थानके निकट आता-जाता है। किन्तु हमारी आंखें अधिकार और प्रभुताके मदसे ऐसी भरी हुई हैं कि हमें आगे-पीछे कुछ नहीं सूझता। चारों ओरसे जनता-वादका घोर नाद हमारे कानोंमें आ रहा है, पर हम ऐसे निश्चिन्त हैं मानों वह साधारण मेघकी गरज है। हम अभीतक उन्हीं विद्याओं और कलाओंमें लीन हैं जिनका आश्रय दूसरोंकी मिहनत है। हमारे विद्यालयोंकी संख्या बढ़ती जाती है,

हमारे वकीलखानेमें अब पांव रखनेकी जगह बाकी नहीं, गली-गली फोटो स्टुडियो खुल रहे हैं, डाक्टरोंकी संख्या मरीजोंसे भी अधिक हो गयी है, पर अब भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं। हम इस अस्वाभाविक जीवन—इस सभ्यताके तिलिस्म—से बाहर निकलनेकी चेष्टा नहीं करते। हम शहरोंमें कारखाने खोलते फिरते हैं, इसलिये कि मजूरोंकी मिहनतसे मोटे हो जायं। ३०) और ४०) सैकड़े लाभकी कल्पना करके फूले नहीं समाते। पर ऐसा कहीं देखनेमें नहीं आता कि किसी शिक्षित सज्जनने कपड़ा बुनना या जमीन जोतना शुरू किया हो। यदि कोई दुर्भाग्यवश ऐसा करे भी तो उसकी हंसी उड़ायी जाती है। हम उसीको मान-प्रतिष्ठाके योग्य समझते हैं जो तकिया गद्दी लगाये बैठा रहे, हाथ-पैर न हिलाये, और लेन-देनपर, सूद-बट्टेपर लाखोंके वारे न्यारे करता हो..............।"

यही बातें हो रही थीं कि दुर्गा माली एक डालीमें नारंगियां, गोभीके फूल, अमरूद, मटरकी फलियां आदि सजाकर लाया और उसे डाक्टर साहबके सामने रख दिया। उसके चेहरेपर एक प्रकारका गर्व था, मानों उसकी आत्मा जागरित हो गयी है। वह डाक्टर साहबके समीप एक मोढ़ेपर बैठ गया और बोला—"हजूरको कैसी कलमें चाहिये। आप बाबूजीको एक चिटपर उनके नाम लिखकर दे दीजिए। मैं कल आपके मकानपर पहुंचा दूंगा। आपके बाल-बच्चे तो अच्छी तरह हैं?"

डाक्टर साहबने कुछ सकुचकर कहा—"हां, लड़के अच्छी तरह हैं, तुम तो यहां अच्छी तरह हो?"

दुर्गा—"जी हां; आपकी दयासे बहुत आरामसे हूं।"

डाक्टर साहब उठकर चले। प्रेमशङ्कर उन्हें बिदा करने साथ-साथ फाटकतक आये। डाक्टर साहब मोटरपर बैठे तो मुस्कुराकर प्रेमशङ्करसे बोले—"मैं आपके सिद्धान्तोंका तो कायल नहीं हुआ, पर इसमें सन्देह नहीं कि आपने एक पशुको मनुष्य बना दिया। यह आपके सत्संगका फल है। लेकिन, क्षमा कीजियेगा, मैं फिर भी कहूंगा कि आप उससे होशियार रहियेगा। 'यूजेनिक्स' (सुप्रजा-जनन-शास्त्र) अभीतक किसी ऐसे प्रयोगका आविष्कार नहीं कर सका है जो जन्मके संस्कारोंको मिटा दे!"

मूठ

१

डाक्टर जयपालने प्रथम श्रेणीकी सनद पायी थी; पर इसे भाग्य कहिये या व्यावसायिक सिद्धान्तोंका अज्ञान कि उन्हें अपने व्यवसायमें कभी उन्नत अवस्था न मिली। उनका घर एक संकरी गलीमें था ; पर उनके जीमें खुली जगहमें घर लेनेका कभी विचारतक न उठा। औषधालयकी आलमारियां, शीशियां और डाक्टरी यन्त्र आदि भी साफ-सुथरे न थे। मितव्ययिताके सिद्धान्तका वह अपनी घरेलू बातोंमें भी बहुत ध्यान रखते थे। लड़का जवान हो गया था, पर अभी उसकी शिक्षाका प्रश्न सामने न आया था, सोचते थे कि इतने दिनों पुस्तकोंसे सर मारकर मैंने ऐसी कौनसी बड़ी सम्पत्ति पा ली जो उसके पढ़ाने-लिखानेमें हजारों रुपये बर्बाद करूं। उनकी पत्नी अहिल्या-धैर्य्यवान महिला थी, पर डाक्टर साहबने उसके इन गुणोंपर इतना बोझ रख दिया था कि उसकी कमर भी झुक गयी थी। माँ भी जीवित थीं पर गंगास्नानके लिये तरस-तरसकर रह जाती थीं, दूसरे पवित्र स्थानोंकी यात्राको चर्चा ही क्या! इस क्रूर मितव्ययिताका परिणाम यह था कि इस घरमें सुख और शान्तिका नाम न

था। अगर कोई मद फुटकल थी तो वह बुढ़िया महरी जगिया थी। उसने डाक्टर साहबको गोदमें खिलाया था और उसे इस घरसे कुछ ऐसा प्रेम हो गया था कि सब प्रकारको कठिनाइयां झेलती थी पर टलनेका नाम न लेती थी।

२

डाक्टर साहब डाक्टरी आयकी कमीको कपड़े और शक्करके कारखानोंमें हिस्से लेकर पूरा करते थे। आज संयोगवश बम्बईके एक कारखानेने इनके पास वार्षिक लाभके साढ़े सात सौ रुपये भेजे। डाक्टर साहबने बीमा खोला, नोट गिने, डाकियेको बिदा किया, पर डाकियेके पास रुपये अधिक थे बोझसे दबा जाता था। बोला, हुजूर रुपये ले लें और मुझे नोट दे दें तो बड़ा एहसान हो, बोझ हलका हो जाय। डाक्टर साहब डाकियोंको प्रसन्न रखा करते थे, उन्हें मुफ्त दवाइयां दे दिया करते थे, सोचा कि हां, मुझे बैंक जानेके लिये तांगा मंगाना ही पड़ेगा क्यों न बिना कौड़ीका उपकारवाले सिद्धान्तसे काम लूं। रुपये गिनकर एक थैलीमें रख दिये और सोच ही रहे थे कि चलूं इन्हें बैंकमें रखता आऊं कि एक रोगीने बुला भेजा। ऐसे अवसर यहां कदाचित् ही आते थे। यद्यपि डाक्टर साहबको बक्सपर भरोसा न था पर विवश होकर थैली बक्समें रखी और रोगीको देखने चले गये। वहांसे लौटे तो तीन बज चुके थे, बैंक बन्द हो चुका था, आज रुपये किसी तरह जमा न हो सकते

थे। प्रतिदिनकी भांति औषधालयमें बैठ गये। आठ बजे रातको जब घरके भीतर जाने लगे, तो थैलीको घर ले आनेके लिये बक्ससे निकाला, थैली कुछ हलकी जान पड़ी, तत्काल उसे दवाइयोंके तराजूपर तौला, होश उड़ गये, पूरे पांच सौ रुपये कम थे। विश्वास न हुआ। थैली खोलकर रुपये गिने, पांच सौ रुपये कम निकले। विक्षिप्त अधीरताके साथ बक्सके दूसरे खानोंको टटोला, परन्तु व्यर्थ! रुपये गायब थे। निराश होकर एक कुरसीपर बैठ गये और स्मरण-शक्तिको एकत्र करनेके लिये आंखें बन्द कर दीं—"मैंने रुपये कहीं अलग तो नहीं रखे, डाकियेने रुपये कम तो नहीं दिये, मैंने गिननेमें तो भूल नहीं की, मैंने पचीस-पचीस रुपयेकी गड्डियां लगायी थीं, पूरी तीस गड्डियां थीं, खूब याद है, मैंने एक-एक गड्डी गिनकर थैलीमें रखा, स्मरणशक्ति मुझे धोखा नहीं दे रही है। सब मुझे ठीक-ठीक याद है, बक्सका ताला भी बन्द कर दिया था किन्तु ओह, अब समझमें आ गया, कुंजी मेजपर ही छोड़ दी, जल्दीके मारे उसे जेबमें रखना भूल गया, वह अभीतक मेजपर पड़ी है। बस यही बात है, कुंजी जेबमें डालनेकी याद न रही, परन्तु ले कौन गया, बाहरके दरवाजे बन्द थे। घरमें मेरे रुपये-पैसे कोई छूता नहीं, आजतक कभी ऐसा अवसर नहीं हुआ। अवश्य यह किसी बाहरी आदमीका काम है। हो सकता है कि कोई दरवाजा खुला रह गया हो, कोई दवा लेने आया हो, कुंजी मेजपर पड़ी देखी हो और बक्स खोलकर रुपये निकाल लिये हों।

इसीसे मैं रुपये नहीं लिया करता, कौन ठिकाना डाकियेकी ही करतूत हो, बहुत सम्भव है, उसने मुझे बक्समें थैली रखते देखा था। ये रुपये जमा हो जाते तो मेरे पास पूरे······हजार रुपये हो जाते, ब्याज जोड़नेमें सरलता होती। क्या करूं पुलिसको खबर दूं? व्यर्थ बैठे-बिठाये उलझन मोल लेनी है। टोले-भरके आदमियोंकी दरवाजेपर भीड़ होगी। दस-पांच आदमियों-को गालियां खानी पड़ेंगी और फल कुछ नहीं! तो क्या धीरज धरकर बैठ रहूं? कैसे धीरज धरूं! यह कोई सेंतमेत मिला धन तो था नहीं, हरामकी कौड़ी होती तो समझता कि जैसे आयी वैसे गयी, यहां एक-एक पैसा अपने पसीनेका है, मैं जो इतनी मितव्ययितासे रहता हूं, इतने कष्ट सहता हूं; कंजूस प्रसिद्ध हूं, घरके आवश्यक व्ययमें भी काट-छांट करता रहता हूं, क्या इसीलिये कि किसी उचक्केके लिये मनोरञ्जनका सामान जुटाऊं? मुझे रेशमसे घृणा नहीं, न मेवे ही अरुचिकर हैं, न अजीर्णका रोग है कि मलाई खाऊं और अनपच हो जाय, न आंखोंमें दृष्टि कम है कि थियेटर और सिनेमाका आनन्द न उठा सकूं। मैं सब ओरसे अपने मनको मारे रहता हूं इसीलिये तो कि मेरे पास चार पैसे हो जायं, काम पड़नेपर किसीके आगे हाथ न फैलाना पड़े। कुछ जायदाद ले सकूं; और नहीं तो अच्छा घर ही बनवा लूं। पर इस मन मारनेका यह फल! गाढ़े परिश्रमके रुपये लुट जायं! अन्याय है कि मैं यों दिनदहाड़े लुट जाऊं और उस दुष्टका बाल भी टेढ़ा न हो। उसके

घर दिवाली हो रही होगी, आनन्द मनाया जा रहा होगा, सब-के-सब बगलें बजा रहे होंगे।"

डाक्टर साहब बदला लेनेके लिये व्याकुल हो गये। मैंने कभी किसी फकीरको, किसी साधुको, दरवाजेपर खड़ा नहीं होने दिया, अनेक बार चाहनेपर भी मैंने कभी मित्रोंको अपने यहां निमंत्रित नहीं किया, कुटुम्बियों और सम्बन्धियोंसे सदा बचता रहा, क्या इसीलिये? उसका पता लग जाता तो मैं एक विषैली सूईसे उसके जीवनका अन्त कर देता!

किन्तु कोई उपाय नहीं है। जुलाहेका गुस्सा दाढ़ीपर। गुप्त पुलिसवाले भी बस नामहीके हैं। पता लगानेकी योग्यता नहीं। इनकी सारी अक्ल राजनीतिक व्याख्यानों और झूठी रिपोर्टोंके लिखनेमें समाप्त हो जाती है। किसी मेस्मेरिजिम जाननेवालेके पास चलूं, वह इस उलझनको सुलझा सकता है। सुनता हूं यूरोप और अमेरिकामें बहुधा चोरियोंका पता इसी उपायसे लग जाता है। पर यहां ऐसा मेस्मेरिज्मिका पण्डित कौन है और फिर मेस्मेरिज्मिके उत्तर सदा विश्वसनीय नहीं होते। ज्योतिषियोंके समान वे भी अनुमान और अटकलके अनन्त-सागरमें डुबकियां लगाने लगते हैं। कुछ लोग नाम भी तो निकालते हैं। मैंने कभी उन कहानियोंपर विश्वास नहीं किया, परन्तु कुछ-न-कुछ इसमें तत्व है अवश्य, नहीं तो इस प्रकृति-उपासनाके युगमें इनका अस्तित्व ही न रहता। आजकलके विद्वान भी तो आत्मिक बलका लोहा मानते जाते हैं पर मान लो किसीने नाम बतला ही दिया तो मेरे हाथमें बदला चुकानेका

कौनसा उपाय है, अन्तर्ज्ञान साक्षीका काम नहीं दे सकता। एक क्षणके लिये मेरे जीको शांति मिल जानेके सिवाय और इससे क्या लाभ है?

हां, खूब याद आया, नदीकी ओर जाते हुए वह जो एक ओझा बैठता है उसके करतबकी कहानियां प्रायः सुननेमें आती हैं, सुनता हूं गड़े हुए धनका पता बतला देता है, रोगियोंको बात-की-बातमें चंगा कर देता है, चोरीके मालका पता लगा देता है, मूठ चलाता है। मूठकी बड़ी बड़ाई सुनी है, मूठ चली और चोरके मुंहसे रक्त जारी हुआ, जबतक वह माल लौटा न दे रक्त बन्द नहीं होता। यह निशाना बैठ जाय तो मेरी हार्दिक इच्छा पूरी हो जाय! मुंहमांगा फल पा जाऊं! रुपये भी मिल जायं! चोरको शिक्षा भी मिल जाय! उसके यहां सदा लोगोंकी भीड़ लगी रहती है। उसमें कुछ करतब न होता तो इतने लोग क्यों जमा होते? उसकी मुखाकृतिसे एक प्रतिभा बरसती है, आजकलके शिक्षित लोगोंको तो इन बातोंपर विश्वास नहीं है, पर नीच और मूर्खमण्डलीमें उसकी बहुत चर्चा है। भूत-प्रेत आदिकी कहानियां प्रतिदिन ही सुना करता हूं। क्यों न उसी ओझेके पास चलूं? मान लो कोई लाभ न हुआ तो हानि ही क्या हो जायगी। जहां साढ़े सात सौ गये हैं, दो चार रुपयेका खून और सही। माल मिल गया तो पूछना ही क्या, चोरको सदाके लिये शिक्षा तो मिल जायगी। यह समय भी अच्छा है। भीड़ कम होगी, चलना चाहिये।

३

जीमें यह निश्चय करके डाक्टर साहब उस ओझेके घरकी ओर चले। जाड़ेकी रात थी, नौ बज गये थे, रास्ता लगभग बन्द हो गया था, कभी-कभी घरोंसे रामायणकी ध्वनि कानोंमें आ जाती थी। कुछ देरके बाद बिलकुल सन्नाटा हो गया। रास्तेके दोनों ओर हरे-भरे खेत थे, सियारोंका हुआना सुन पड़ने लगा। जान पड़ता है, इनका दल कहीं पास ही है, डाक्टर साहबको प्रायः दूरसे इनका सुरीला स्वर सुननेका सौभाग्य हुआ था। पाससे सुननेका नहीं। इस समय इस सन्नाटेमें और इतने पाससे उनका चीखना सुनकर उन्हें डर लगा। कई बार अपनी छड़ी धरतीपर पटकी, पैर धमधमाये। सियार बड़े डरपोक होते हैं, आदमीके पास नहीं आते, पर फिर सन्देह हुआ, कहीं इनमें कोई पागल हो तो उसका काटा तो बचता ही नहीं। यह सन्देह होते ही कीटाणु, बैक्टिरिया, पास्टयोर इन्स्टिट्यूट, और कसौलीकी याद उनके मस्तिष्कमें चक्कर काटने लगी। वह जल्दी जल्दी पैर बढ़ाये चले जाते थे। यकायक जीमें विचार उठा, कहीं मेरे ही घरमें किसीने रुपये उड़ा दिये हों तो? वे तत्काल ठिठक गये पर एक ही क्षणमें उन्होंने इसका भी निर्णय कर लिया, क्या हर्ज है, घरवालोंको तो और भी कड़ा दण्ड मिलना चाहिये। चोरकी मेरे साथ सहानुभूति नहीं हो सकती, पर घरवालोंकी सहानुभूतिका मैं अधिकारी हूं, उन्हें जानना चाहिये कि मैं जो कुछ करता हूं। उन्हींके लिये

करता हूं, रात-दिन मरता हूं तो उन्हींके लिये मरता हूं, यदि इस पर भी वे मुझे यों धोखा देनेके लिये तैयार हों तो उनसे अधिक कृतघ्न, उनसे अधिक अकृतज्ञ, उनसे अधिक निर्दय और कौन होगा? इन्हें और भी कड़ा दंड मिलना चाहिये। इतना कड़ा, इतना शिक्षाप्रद कि फिर कभी किसीको करनेका ऐसा साहस न हो।

अन्तमें वे ओझेके घरके पास जा पहुंचे। लोगोंकी भीड़ न थी, उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ, हां उनकी चाल कुछ धीमी पड़ गयी। फिर जीमें सोचा, कहीं यह सब ढकोसला ही ढकोसला हो तो व्यर्थ लज्जित होना पड़े। जो सुने मूर्ख बनाये, कदाचित् ओझा ही मुझे तुच्छ बुद्धि समझे। पर अब तो आ गया, यह तजरबा भी हो जाय और कुछ न होगा तो जांच ही सही। ओझाका नाम बुद्धू था, लोग चौधरी कहते थे, जातिका चमार था। छोटासा घर और वह भी गन्दा, छप्पर इतनी नीची थी कि झुकनेपर भी सिरमें टक्कर लगनेका डर लगता था। दरवाजे-पर एक नीमका पेड़ था। उसके नीचे एक चौरा। नीमके पेड़पर दूरसे एक झण्डीसी लहराती थी। चौरेपर मिट्टीके सैकड़ों हाथी सिन्दूरसे रंगे हुए खड़े थे। कई लोहेके नोकदार त्रिशूल भी गड़े थे जो मानो इन मन्दगति हाथियोंके लिये अंकुशका काम दे रहे थे, दस बजे थे, बुद्धू चौधरी जो एक काले रंगका, तोंदीला और रोबदार आदमी था, एक फटे हुए टाटपर बैठा नारियल पी रहा था, बोतल और गिलास भी सामने रखे हुए थे।

बुद्धूने डाक्टर साहबको देखकर तुरत बोतल छिपा दिया

और नीचे उतरकर सलाम किया। घरसे एक बुढ़ियाने मोढ़ा लाकर उनके लिये रख दिया। डाक्टर साहबने कुछ झेंपते हुए सारी घटना कह सुनायी। बुद्धूने कहा—हुजूर, यह कौन बड़ा काम है, अभी इस एतवारको दारोगाजीकी घड़ी चोरी गयी थी, बहुत कुछ तहकीकात की, पता न चला। मुझे बुलाया, मैंने बात-की-बातमें पता लगा दिया। पांच रुपये इनाम दिये। कलकी बात है जमादार साहबकी घोड़ी खो गयी थी। चारों तरफ दौड़ते-फिरते थे मैंने ऐसा पता बता दिया कि घोड़ी खड़ी चरती हुई मिल गयी। इसी विद्याकी बदौलत हजूर हुक्काम सब मानते हैं।

डाक्टरको दारोगा और जमादारकी चर्चा न रुची। इन सब गंवारोंकी आंखोंमें जो कुछ है वह दारोगा और जमादार ही हैं। बोले—मैं केवल चोरीका पता लगाना नहीं चाहता, मैं चोरको सजा भी देना चाहता हूं।

बुद्धूने एक क्षणके लिये आंखें बन्द कीं, जमुहाइयां लीं, चुटकियां बजायीं और फिर कहा—यह घरहीके किसी आदमीका काम है।

डाक्टर—कुछ परवा नहीं, कोई हो।

बुढ़िया—पीछेसे कोई बात बने बिगड़ेगी तो हुजूर हमींको बुरा कहेंगे।

डाक्टर—इसकी तुम कुछ चिन्ता न करो, मैंने खूब सोच लिया है। बल्कि अगर घरके किसी आदमीकी शरारत है तो मैं उसके साथ और भी कड़ाई करना चाहता हूं। बाहरका आदमी मेरे साथ छल करे तो क्षमाके योग्य है पर घरके आदमीको मैं किसी प्रकार क्षमा नहीं कर सकता।

बुद्धू—तो हुजूर चाहते क्या हैं?

डाक्टर—बस यही कि, मेरे रुपये मिल जायँ और चोर किसी बड़े कष्टमें पड़ जाय।

बुद्धू—मूठ चला दूं?

बुढ़िया—ना बेटा, मूठके पास न जाना। न जाने कैसी पड़े कैसी न पड़े।

डाक्टर—तुम मूठ चला दो, इसका जो कुछ मेहनताना और इनाम हो मैं देनेको तैयार हूं।

बुढ़िया—बेटा, मैं फिर कहती हूं मूठके फेरमें न पड़। कोई जोखमकी बात आ पड़ेगी तो यही बाबूजी फिर तेरे सिर होंगे और तेरे बनाये कुछ न बनेगी। क्या जानता नहीं, मूठका उतार कितना कठिन है?

बुद्धू—हां! बाबूजी सोच लीजिये। मूठ तो मैं चला दूंगा लेकिन उसको उतारनेका जिम्मा मैं नहीं ले सकता।

डाक्टर—अजी कह तो दिया, मैं तुमसे उतारनेको न कहूंगा, चलाओ भी तो।

बुद्धूने आवश्यक सामानकी एक लम्बी तालिका बनायी। डाक्टर साहबने सामानकी अपेक्षा रुपये देना अधिक उचित समझा। बुद्धू राजी हो गया। डाक्टर साहब चलते-चलते बोले,

ऐसा मन्तर चलाओ कि सबेरा होते-होते चोर मेरे सामने माल लिये हुए आ जाय।

बुद्धू ने कहा—आप निसाखातिर रहें, ऐसा ही होगा।

४

डाक्टर साहब घर पहुंचे तो ग्यारह बज गये थे। जाड़ेकी रात कड़ाकेकी ठण्ढ थी, उनकी मां और स्त्री दोनों बैठी हुई उनकी राह देख रही थीं। जीको बहलानेके लिये बीचमें एक अंगीठी रख ली थी, जिसका प्रभाव शरीरकी अपेक्षा विचारपर अधिक पड़ता था। यहां कोयला विलास्य पदार्थ समझा जाता था। बुढ़िया महरी जगिया वहीं एक फटा टाटका टुकड़ा ओढ़े पड़ी थी। वह बार-बार उठकर अपनी अन्धेरी कोठरीमें जाती, आलेपर कुछ टटोलकर देखती और फिर अपनी जगहपर आकर पड़ रहती। बार-बार पूछती, कितनी रात गयी होगी, जरा भी खटक होती तो चौंक पड़ती और चिन्तित दृष्टिसे इधर-उधर देखने लगती। आज डाक्टर साहबने नियमके प्रतिकूल क्यों इतनी देर लगायी, इसका सबको आश्चर्य था। ऐसे अवसरपर बहुत कम आते थे कि उन्हें रोगियोंको देखनेके लिये रातको जाना पड़ता हो। यदि कुछ लोग उनको डाक्टरीके कायल भी थे तो वे रातको उस गलीमें आनेका साहस न करते थे। सभा-सोसाइटियोंमें जानेकी उन्हें रुचि न थी। मित्रोंसे भी उनका मेल-जोल न था। माँने कहा—जाने कहां चले गये, खाना बिलकुल पानी हो गया होगा।

अहिल्या—आदमी जाता है तो कहके जाता है, आधीरातसे ऊपर हो गयी।

माँ—कोई ऐसी ही अटक हो गयी होगी नहीं तो वह कब घरसे बाहर निकलते हैं।

अहिल्या—मैं तो अब सोने जाती हूं, उनका जब जी चाहे, आयें, कोई सारी रात बैठा पहरा देगा!

यही बातें हो रही थीं कि डाक्टर साहब भीतर पहुंचे। अहिल्या संभल बैठी, जगिया उठकर खड़ी हो गयी और उनकी ओर सहमी हुई आंखोंसे ताकने लगी, मांने पूछा—आज कहां इतनी देर लगा दी?

डा०—तुम लोग तो सुखसे बैठी हो न! हमें देर हो गयी इसकी तुम्हें क्या चिन्ता! जाओ, सुखसे सोओ, इन ऊपरी दिखा-वटी बातोंसे मैं धोखेमें नहीं आता, अवसर पाओ तो गला काट लो, इसपर चली हो बातें बनाने!

मांने दुखी होकर कहा—बेटा ऐसी जी दुखानेवाली बातें क्यों करते हो? घरमें तुम्हारा कौन बरी है जो तुम्हारा बुरा चेतेगा?

डा०—मैं किसीको अपना मित्र नहीं समझता, सभी मेरे बैरी हैं, मेरे प्राणोंके गाहक हैं। नहीं तो क्या आंख ओझल होते ही मेरी मेजपरसे पांच सौ रुपये उड़ जायं, दरवाजे बाहरसे बन्द थे, कोई गैर आया नहीं, रुपये रखते ही रखते उड़ गये। जो लोग इस प्रकार मेरा गला काटनेपर उतारू हों उन्हें क्योंकर अपना

समझूं। मैंने खूब पता लगा लिया है, अभी एक ओझेके पाससे चला आ रहा हूं। उसने साफ कह दिया कि घरके ही किसी आदमीका काम है। अच्छी बात है, जैसी करनी वैसी भरनी। मैं भी बता दूंगा कि मैं अपने बैरियोंका शुभचिन्तक नहीं हूं। यदि बाहरका आदमी होता तो कदाचित् मैं जाने भी देता। पर जब घरके आदमी जिनके लिये मैं रात-दिन चक्की पीसता हूं, मेरे साथ ऐसा छल करें तो वे इसी योग्य हैं कि उनके साथ जरा भी रिआयत न की जाय। देखना सबेरेतक चोरकी क्या दशा होती है। मैंने ओझेसे मूठ चलानेको कह दिया है, मूठ चली और उधर चोरके प्राण संकटमें पड़े।

जगिया घबड़ाकर बोली—भइया, मूठमें तो जान जोखम है।

डा०—चोरकी यही सजा है।

बुढ़िया—किस ओझेने चलाया है?

डा०—बुद्धू चौधरीने।

बुढ़िया—अरे राम, उसकी मूठका तो उतार ही नहीं।

डाक्टर अपने कमरेमें चले गये, तो मांने कहा—सूमका धन शैतान खाता है, पांच सौ रुपया कोई मुंह मारकर ले गया, इतने-में तो मेरे सातो धाम हो जाते। अहिल्या बोली—कंगनके लिये बरसोंसे झींक रही हूं, अच्छा हुआ, मेरी आह पड़ी है।

मां—भला घरमें उनके रुपये कौन लेगा?

अहिल्या—किवाड़ खुले होंगे, कोई बाहरी आदमी उड़ा ले गया होगा।

मां—उनको विश्वास क्योंकर आ गया कि घरहीके किसी आदमीने रुपये चुराये हैं।

अहिल्या—रुपयेका लोभ आदमीको शक्की बना देता है।

६

रातको एक बजा था, डाक्टर जयपाल भयावने स्वप्न देख रहे थे। यकायक अहिल्याने आकर कहा—जरा चलकर देखो, जगियाका क्या हाल हो रहा है, जान पड़ता है, जीभ ऐंठ गयी। कुछ बोलती ही नहीं, आंखें पथरा गयी हैं।

जयपाल चौंककर उठ बैठे, एक क्षणतक इधर-उधर ताकते रहे, मानों सोच रहे थे, यह भी स्वप्न तो नहीं है, तब बोले—क्या कहा! जगियाको क्या हो गया!

अहिल्याने फिर जगियाका हाल कहा, जयपालके मुखपर हलकीसी मुस्कुराहट दौड़ गयी, बोले—चोर पकड़ा गया, मूठने अपना काम किया।

स्त्री—और जो घरहीके किसी आदमीने ले लिये होते?

जयपाल—तो उसकी भी यही दशा होती, सदाके लिये सीख जाता।

स्त्री—पांच सौ रुपयोंके पीछे प्राण ले लेते?

जयपाल-पांच सौ रुपयेके लिये नहीं, आवश्यकता पड़े तो पांच हजार खर्च कर सकता हूं, केवल छल-कपटका दण्ड देनेके लिये।

स्त्री—बड़े निर्दयी हो।

जयपाल—तुम्हें सिरसे पैरतक सोनेसे लाद दूं तो मुझे

भलाईका पुतला समझने लगो, क्यों ? खेद है कि मैं तुमसे यह सनद् नहीं ले सकता।

यह कहते हुए वह जगियाकी कोठरीमें गये। उसकी हालत उससे कहीं अधिक खराब थी जो अहिल्याने बतायी थी। मुखपर मुर्दनी छायी हुई थी, हाथ पैर अकड़ गये थे। नाड़ीका कहीं पता न था। उनकी मां उसे होशमें लानेके लिये बार-बार उसके मुंह पानीके छींटे दे रही थी। जयपालने यह हालत देखी तो होश उड़ गये। उन्हें अपने उपायकी सफलतापर प्रसन्न होना चाहिये था। जगियाने रुपये चुराये, इसके लिये अब अधिक प्रमाणकी आवश्यकता न थी, परन्तु मूठ इतनी जल्दी प्रभाव डालनेवाली और घातक वस्तु है, इसका उन्हें अनुमान भी न था। वे चोरको एड़ियां रगड़ते, पीड़ासे कराहते और तड़पते देखना चाहते थे। बदला लेनेकी इच्छा आशातीत सफल हो रही थी, परन्तु वह नमककी अधिकता थी जो कौरको मुंहके भीतर धसने नहीं देती। यह दुःखमय दृश्य देखकर प्रसन्न होनेके बदले उनके हृदयपर चोट लगी। रोषमें हम अपनी निर्दयता और कठोरताका भ्रम-मूलक अनुमान कर लिया करते हैं। प्रत्यक्ष घटना विचारसे कहीं अधिक प्रभावशालिनी होती है। रणस्थलका विचार कितना कवित्वमय है। युद्धावेशका काव्य कितना गर्मी उत्पन्न करनेवाला है। परन्तु कुचले हुए शव और कटे हुए अंग-प्रत्यंग देखकर कौन मनुष्य है जिसे रोमाञ्च न हो आवे। दया मनुष्यका स्वाभाविक गुण है।

इसके अतिरिक्त इसका उन्हें अनुमान भी न था कि जगिया जैसी दुर्बल आत्मा मेरे रोषपर बलिदान होगी। वह समझते थे, मेरे बदलेका वार किसी सजीव मनुष्यपर होगा, यहांतक कि वे अपनी स्त्री और लड़केको भी इस वारके योग्य समझते थे। पर मरेको मारना, कुचलेको कुचलना उन्हें अपनी प्रतिघातमर्यादाके विपरीत जान पड़ा। जगियाका यह काम क्षमाके योग्य था। जिसे रोटियोंके लाले हों, कपड़ोंको तरसे, जिसकी आकांक्षाका भवन सदा अन्धकारमय रहा हो, जिसकी इच्छायें कभी पूरी न हुई हों, उसकी नीयत बिगड़ जाय तो आश्चर्यकी बात नहीं। वे तत्काल औषधालयमें गये, होशमें लानेकी जो अच्छी-अच्छी औषधियां थीं, उनको मिलाकर एक मिश्रित नयी औषधि बना लाये, जगियाके गलेमें उतार दी। कुछ लाभ न हुआ। तब विद्युत यंत्र ले आये और उसकी सहायतासे जगियाको होशमें लानेका यत्न करने लगे। थोड़ी ही देरमें जगियाकी आंखें खुल गयीं। उसने सहमी हुई दृष्टिसे जयपालको देखा, जैसे लड़का अपने अध्यापककी छड़ीकी ओर देखता है, और उखड़े हुए स्वरमें बोली, हाय राम, कलेजा फुंका जाता है, अपने रुपये ले लो, आलेपर एक हांड़ी है, उसीमें रखे हुए हैं। मुझे अंगारोंसे मत जला। मैंने तो यह रुपये तीरथ करनेके लिये चुराये थे। क्या तुझे तरस नहीं आता, मुट्ठी भर रुपयोंके लिये मुझे आगमें जला रहा है। मैं तुझे इतना काला न समझती थी, हाय राम!

यह कहते-कहते वह फिर मूर्च्छित हो गयी, नाड़ी बन्द हो

गयी, ओंठ नीले पड़ गये, शरीरके अंगोंमें खिंचाव होने लगा। जयपालने दीन भावसे स्त्रीकी ओर देखा और बोले—मैं तो अपने सारे उपाय कर चुका, अब इसे होशमें लाना मेरी सामर्थ्यके बाहर है। मैं क्या जानता था कि यह अभागी मूठ इतनी घातक होती है। कहीं इसकी जानपर बन गयी तो जीवन भर पछताना पड़ेगा। आत्माकी ठोकरोंसे कभी छुटकारा न मिलेगा, क्या करूं बुद्धि कुछ काम नहीं करती।

अहिल्या—सिविल सर्जनको बुलाओ, कदाचित् वह कोई अच्छी दवा दे दे। किसीको जान बूझकर आगमें ढकेलना न चाहिये।

जयपाल—सिविल सर्जन इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकते जो मैं कर चुका। हर घड़ी इसकी दशा और गिरती जाती है, न जाने हत्यारेने कौनसा मंत्र चला दिया। उसकी मां मुझे बहुत समझाती रही पर मैंने क्रोधमें उसकी बातोंकी जरा भी परवा न की।

मां—बेटा, तुम उसीको बुलाओ जिसने मंत्र चलाया है, पर क्या किया जायगा। कहीं मर गयी तो हत्या सिरपर पड़ेगी। कुटुम्बको सदा सतायेगी।

६

दो बज रहे थे, ठण्ढी हवा हड्डियोंमें चुभी जाती थी। जयपाल लम्बे पांवों बुद्धू चौधरीके घरकी ओर चले जाते थे। इधर-उधर व्यर्थ आंखें दौड़ाते थे कि कोई एक्का या तांगा मिल जाय।

उन्हें मालूम होता था कि बुद्धूका घर बहुत दूर हो गया है। कई बार धोखा हुआ, कहीं रास्ता तो नहीं भूल गया। कई बार इधर आया हूं, यह बाग तो कभी नहीं मिला, यह लेटर बक्स भी सड़कपर कभी नहीं देखा, यह पुल तो कदापि न था, अवश्य राह भूल गया। किससे पूछूं। वे अपनी स्मरणशक्तिपर झुंझलाये और उसी ओर थोड़ी दूरतक दौड़े। पता नहीं, दुष्ट इस समय मिलेगा भी या नहीं, शराबमें मस्त पड़ा होगा। कहीं इधर बेचारी चल न बसी हो। कई बार इधर-उधर घूम जानेका विचार हुआ पर अंतःप्रेरणाने सीधे राहसे हटने न दिया। यहांतक कि बुद्धूका घर देख पड़ा। डाक्टर जयपालकी जान-में-जान आयी। बुद्धूके दरवाजेपर जाकर जोरसे कुण्डी खटखटायी। भीतरसे कुत्तेने असभ्यतापूर्ण उत्तर दिया, पर किसी आदमीका शब्द न सुनायी दिया। फिर जोर-जोरसे किवाड़ खटखटाये, कुत्ता और भी तेज पड़ा, बुढ़ियाकी नींद टूटी, बोली—"यह कौन इतनी रात गये किवाड़ तोड़े डालता है?"

डा०—मैं हूं, जो देर हुई तुम्हारे पास आया था।

बुढ़ियाने बोली पहचानी, समझ गयी, इनके घरके किसी आदमीपर विपद पड़ी, नहीं तो इतनी रात गये क्यों आते, पर अभी तो बुद्धूने मूठ चलायी नहीं। उसका असर क्योंकर हुआ, समझाती थी तब न माने, खूब फंसे। उठकर कुप्पी जलायी और उसे लिये हुए बाहर निकली। डाक्टर साहबने पूछा—बुद्धू चौधरी सो रहे हैं? जरा उन्हें जगा दो।

बुढ़िया—न बाबूजी, इस वक्त मैं न जगाऊंगी, मुझे कच्चा ही खा जायगा, रातको लाट साहब भी आवें तो नहीं उठता।

डाक्टर साहबने थोड़े शब्दोंमें पूरी घटना कह सुनायी और बड़ी नम्रताके साथ कहा कि बुद्धू को जगा दे। इतनेमें बुद्धू अपने-ही-आप बाहर निकल आया और आंखें मलता हुआ बोला—"कहिये बाबूजी, क्या हुकुम है?"

बुढ़ियाने चिढ़कर कहा—तेरी नींद आज कैसे खुल गयी, मैं जगाने गयी होती तो मारने उठता।

डा०—मैंने सारा माजरा बुढ़ियासे कह दिया है, इन्हींसे पूछो।

बुढ़िया—कुछ नहीं, तूने मूठ चलायी थी, रुपये उनके घरकी महरीने लिये हैं, अब उसका अब-तब हो रहा है।

डा०—बेचारी मर रही है, कुछ ऐसा उपाय करो कि उसके प्राण बच जायं।

बुद्धू—यह तो आपने बुरी सुनायी, मूठको फेरना सहज नहीं है।

बुढ़िया—बेटा, जान जोखम है, क्या तू जानता नहीं। कहीं उलटे फेरनेवालेपर ही पड़े तो जान बचना कठिन हो जाय।

डा०—अब उसकी जान तुम्हारे ही बचाये बचेगी, इतना धर्म करो।

बुढ़िया—दूसरेकी जानकी खातिर कोई अपनी जान गाढ़ेमें डालेगा?

डा०—तुम रात-दिन यही काम करते रहते हो, तुम उसके दांव-घात सब जानते हो। मार भी सकते हो, जिला भी सकते हो, मेरा तो इन बातोंपर बिलकुल विश्वास ही न था लेकिन तुम्हारा कमाल देखकर दंग रह गया। तुम्हारे हाथों कितने ही आदमियोंका भला होता है, उस गरीब बुढ़ियापर दया करो।

बुद्धू—कुछ पसीजा, पर उसकी मां मामलेदारीमें उससे कहीं अधिक चतुर थी। डरी, कहीं यह नरम होकर मामला बिगाड़ न दे। उसने बुद्धू को कुछ कहनेका अवसर न दिया। बोली—यह तो सब ठीक है पर हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं। न जाने कैसी पड़े कैसी न पड़े, वह हमारे सिर जायगी न? आप तो अपना काम निकालकर अलग हो जायंगे, मूठ फेरना हंसी नहीं है।

बु०—हां, बाबूजी काम बड़े जोखमका है।

डा०—काम जोखमका है तो तुमसे मुफ्त तो नहीं करवाना चाहता।

बुढ़िया—आप बहुत देंगे, सौ-पचास रुपये देंगे। इतनेमें हम के दिनतक खायंगे। मूठ फेरना सांपके बिलमें हाथ डालना, आगमें कूदना है। भगवानकी ऐसी ही निगाह हो तो जान बचती है।

डा०—तो माताजी मैं तुमसे बाहर तो नहीं होता हूं। जो कुछ तुम्हारी मरजी हो वह कहो, मुझे तो उस गरीबकी जान बचानी है। यहां बातोंमें देर हो रही है, वहां मालूम नहीं उसका क्या हाल होगा।

बुढ़िया—देर तो आप ही कर रहे हैं, आप बात पक्की कर दें तो यह तो आपके साथ चला जाय। आपकी खातिर यह जोखम अपने सिर ले रही हूं। दूसरा होता तो झट इनकार कर जाती। आपके मुलाहजेमें पड़कर जान-बूझकर जहर पी रही हूं।

डाक्टर साहबको एक क्षण एक वर्ष जान पड़ रहा था। वह बुद्धू को उसी समय अपने साथ ले जाना चाहते थे। कहीं उसका दम निकल गया तो यह जाकर क्या बनायेगा, उस समय उनको आंखोंमें रुपयेका कोई मूल्य न था। केवल यही चिन्ता थी कि जगिया मौतके मुंहसे निकल आये। जिस रुपयेपर वह अपनी आवश्यकतायें और घरवालोंको आकांक्षायें निछावर करते थे उसे दयाके आवेशने बिलकुल तुच्छ बना दिया था। बोले—तुम्हीं बतलाओ, अब मैं क्या कहूं, पर जो कुछ कहना हो झटपट कह दो।

बुढ़िया—अच्छा तो पांच सौ रुपये दीजिये, इससे कममें काम न होगा।

बुद्धू ने मांकी ओर आश्चर्य्यसे देखा, और डाक्टर साहब तो मूर्च्छित-से हो गये, निराशासे बोले—इतना मेरे बूतेके बाहर है, जान पड़ता है उसके भाग्यमें मरना ही बदा है।

बुढ़िया—तो जाने दीजिये, हमें अपनी जान भार थोड़े ही है। हमने तो आपके मुलाहिजेसे इस कामका बीड़ा उठाया था। जाओ, बुद्धू सोओ।

डा०—बूढ़ी माता इतनी निर्दयता न करो, आदमीका काम आदमीसे ही निकलता है।

बुद्धू—नहीं बाबूजी, मैं हर तरहसे आपका काम करनेको तैयार हूं, इसने पांच सौ कहे, आप कुछ कम कर दीजिये, हां जोखमका ध्यान रखियेगा।

बुढ़िया—तू जाके सोता क्यों नहीं? इन्हें रुपये प्यारे हैं तो क्या तुझे अपनी जान प्यारी नहीं है, कलको लहू थूकने लगेगा तो कुछ बनाये न बनेगी, बाल-बच्चोंको किसपर छोड़ेगा? है घरमें कुछ?

डाक्टर साहबने संकोच करते हुए ढाई सौ रुपये कहे, बुद्धू राजी हो गया, मामला तय हुआ, डाक्टर साहब उसे साथ लेकर घरकी ओर चले। उन्हें ऐसी आत्मिक प्रसन्नता कभी न मिली थी, हारा हुआ मुकदमा जीतकर अदालतसे लौटनेवाला मुकदमाबाज भी इतना प्रसन्न न होगा। लपके चले जाते थे। बुद्धू से बार-बार तेज चलनेको कहते। घर पहुंचे तो जगियाको बिलकुल मरनेके निकट पाया। जान पड़ता था यही सांस अन्तिम सांस है। उनकी मां और स्त्री दोनों आंसू भरे निराश बैठी थीं। बुद्धू को दोनोंने विनम्र दृष्टिसे देखा, डाक्टर साहबके आंसू भी न रुक सके। बुढ़ियाकी ओर झुके तो आंसूकी बून्दें उसके मुरझाये हुए पीले मुंहपर टपक पड़ीं। स्थितिने बुद्धू को सजग कर दिया। बुढ़ियाकी देहपर हाथ रखते हुए बोला—बाबूजी, अब मेरा किया कुछ नहीं हो सकता। यह तो दम तोड़ रही है। डाक्टर साहेबने गिड़गिड़ा कर कहा—"नहीं चोधरी, ईश्वरके नामपर अपना

मन्त्र चलाओ, इसकी जान बच गयी तो सदाके लिये मैं तुम्हारा गुलाम बना रहूंगा ।

बुद्धू—आप मुझे जान-बूझकर जहर खानेको कहते हैं । मुझे मालूम न था कि मूठके देवता इस वक्त इतने गरम हैं । वह मेरे मनमें बैठे कह रहे हैं, तुमने मेरा शिकार छीना तो हम तुम्हें निगल जायंगे ।

डा०—देवताको किसी तरह राजी कर लो ।

बुद्धू—राजी करना बड़ा कठिन है । पांच सौ रुपये दीजिये तो इसकी जान बचे । उतारेके लिये बड़े-बड़े जतन करने पड़ेंगे ।

डा०—पांच सौ रुपये दे दूं तो इसकी जान बचा दोगे ?

बुद्धू—हां, शर्त बदकर ।

डाक्टर साहब बिजलीकी तरह लपककर अपने कमरेमें गये और बचे हुए पांच सौ रुपयोंकी थैली लाकर बुद्धूके सामने रख दी । बुद्धूने विजयकी दृष्टिसे थैलीको देखा, फिर जगियाका सर अपनी गोदमें रखकर उसपर हाथ फेरने लगा । कुछ बुद-बुदाकर छू छू करता जाता था । एक क्षणमें उसकी सूरत डरावनी हो गयी; लपटें-सी निकलने लगीं । बार-बार अंगड़ाइयां लेने लगा । इसी दशामें उसने एक बेसुरा गीत गाना आरम्भ किया । पर हाथ जगियाके सरपर ही थे । अन्तमें कोई आध घंटा बीतनेपर जगियाने आंखें खोल दीं, जैसे बुझते हुए दियेमें तेल पड़ जाय । धीरे-धीरे उसकी अवस्था सुधरने लगी । उधर कौवाकी बोल सुनायी दी, इधर बुढ़िया एक अंगड़ायी लेकर उठ बैठी ।

७

सात बजे थे । जगिया मीठी नींद सो रही थी, उसकी आकृति नीरोग थी, बुद्धू रुपयोंकी थैली लेकर अभी गया था । डाक्टर साहबकी मांने कहा—बात-की-बातमें पांच सौ रुपये मार ले गया ।

डा०—यह क्यों नहीं कहती कि एक मुरदेको जिला गया । क्या उसके प्राणका मूल्य इतना भी नहीं है ।

मां—देखो, आलेपर हांडीमें ढाई सौ रुपये हैं या नहीं ?

डा०—नहीं, उन रुपयोंमें हाथ मत लगाना, उन्हें वहीं पड़े रहने दो । उसने तीरथ करनेके लिये लिये थे, वह उसी काममें लगेंगे ।

मां—यह साढ़े सात सौ रुपये उसीके भागके थे ।

डा०—उसके भागके तो ढाई सौ ही थे, बाकी मेरे भागके थे । उनकी बदौलत मुझे ऐसी शिक्षा मिली जो उम्र भर न भूलेगी । तुम मुझे अब आवश्यक कामोंमें मुट्ठी बन्द करते हुए न पाओगी ।

ब्रह्मका स्वांग

स्त्री—

मैं वास्तवमें अभागिनी हूं, नहीं तो क्या मुझे नित्य ऐसे-ऐसे घृणित दृश्य देखने पड़ते! शोककी बात यह है कि वे मुझे केवल देखने ही नहीं पड़ते, वरन् दुर्भाग्यने उन्हें मेरे जीवनका मुख्य भाग बना दिया है। मैं उस सुपात्र ब्राह्मणकी कन्या हूं जिसकी व्यवस्था बड़े-बड़े गहन धार्मिक विषयोंपर सर्वमान्य समझी जाती है। मुझे याद नहीं, घरपर कभी बिना स्नान और देवोपासना किये पानीकी एक बून्द भी मुंहमें डाली हो। मुझे एक बार कठिन ज्वरमें स्नानादिके बिना दवा पीनी पड़ी थी, उसका मुझे महीनों खेद रहा। हमारे घरमें धोबी कदम नहीं रखने पाता था, चमारिनें दालानमें भी नहीं पैठ सकती थीं। किन्तु यहां आकर मैं मानों भ्रष्टलोकमें पहुंच गयी हूं। मेरे स्वामी बड़े दयालु, बड़े चरित्रवान और बड़े सुयोग्य पुरुष हैं। उनके यहां सद्गुण देखकर मेरे पिता जी उनपर मुग्ध हो गये थे। लेकिन शोक! वे क्या जानते थे कि यहां लोग अघोरपन्थके अनुयायी हैं। सन्ध्या और उपासना तो दूर रही, कोई नियमितरूपसे स्नान भी नहीं करता। बैठकमें नित्य मुसलमान, क्रिस्तान सब आया-जाया करते

हैं और स्वामीजी वहीं बैठे-बैठे पानी, दूध, चाय पी लेते हैं। इतना ही नहीं, वह वहीं बैठे-बैठे मिठाइयां भी खा लेते हैं। अभी कलकी बात है, मैंने उन्हें लेमोनेड पीते देखा था। साईस जो चमार है, बेरोक-टोक घरमें चला आता है। सुनती हूं, वे अपने मुसलमान मित्रोंके घर दावतें खाने भी जाते हैं। यह भ्रष्टाचार मुझसे नहीं देखा जाता। मेरा चित्त घृणासे व्यस्त हो जाता है। जब वे मुस्कुराते हुए मेरे समीप आ जाते हैं और मेरा हाथ पकड़कर अपने समीप बैठा लेते हैं तो मेरा जी चाहता है कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊं। हा हिन्दू जाति! तूने हम स्त्रियोंको अपने पुरुषोंकी दासी बनना ही क्या हमारे जीवनका परम कर्तव्य बना दिया! हमारे विचारोंका, हमारे सिद्धान्तोंका, यहांतक कि हमारे धर्मका भी कुछ मूल्य नहीं रहा!

* * * * *

अब मुझे धैर्य नहीं। आज मैं इस अवस्थाका अन्त कर देना चाहती हूं। मैं इस आसुरिक भ्रष्ट जालसे निकल जाऊंगी। मैंने अपने पिताकी शरण जानेका निश्चय कर लिया है। आज यहां सहभोज हो रहा है, मेरे पति उसमें सम्मिलित ही नहीं, वरन् उसके मुख्य प्रेषकोंमें हैं। इन्हींके उद्योग तथा प्रेरणासे यह विधर्मीय अत्याचार हो रहा है। समस्त जातियोंके लोग एक साथ बैठकर भोजन कर रहे हैं। सुनती हूं, मुसलमान भी एक ही पंक्तिमें बैठे हुए हैं। आकाश क्यों नहीं गिर पड़ता! क्या भगवान

धर्मकी रक्षा करनेके लिये अब अवतार न लेंगे ? ब्राह्मण जाति अपने निजी बन्धुओंके सिवाय अन्य ब्राह्मणोंका भी पकाया भोजन नहीं करती, वही महान् जाति इस अधोगतिको पहुंच गयी कि कायथों, बनियों, मुसलमानोंके साथ बैठकर खानेमें लेशमात्र भी सङ्कोच नहीं करती, बल्कि इसे जातीय गौरव, जातीय एकताका हेतु समझती है !

पत्नी—

वह कौन शुभ घड़ी होगी कि इस देशकी स्त्रियोंमें ज्ञानका उदय होगा और वे राष्ट्रीय संगठनमें पुरुषोंकी सहायता करेंगी ? हम कबतक ब्राह्मण अब्राह्मणके गोरखधन्धेमें फंसे रहेंगे ? हमारी विवाह-प्रणाली कबतक गोत्रके बन्धनमें जकड़ी रहेगी ? हम कब जानेंगे कि स्त्री और पुरुषके विचारोंकी अनुकूलता और समानता गोत्र और वर्णसे कहीं अधिक महत्व रखती है ? यदि ऐसा ज्ञात होता तो मैं वृन्दाका पति न होता और न वृन्दा मेरी पत्नी। हम दोनोंके विचारोंमें जमीन और आसमानका अन्तर है। यद्यपि वह प्रत्यक्ष नहीं कहती, किन्तु मुझे विश्वास है कि वह मेरे विचारोंको घृणाकी दृष्टिसे देखती है। मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि वह मुझे स्पर्श भी नहीं करना चाहती। यह उसका दोष नहीं, यह हमारे माता-पिताका दोष है जिन्होंने हम दोनोंपर ऐसा घोर अत्याचार किया।

* * * * *

कल वृन्दा खुल पड़ी। मेरे कई मित्रोंने सहभोजका प्रस्ताव

किया था। मैंने उनका सहर्ष समर्थन किया। कई दिनके वाद-विवादके पश्चात् अन्तको कल कुछ गिने-गिनाये सज्जनोंने सह-भोजका सामान कर ही डाला। मेरे अतिरिक्त केवल चार और सज्जन ब्राह्मण थे, शेष अन्य जातियोंके लोग थे। यह उदारता वृन्दाके लिये असह्य हो गयी। जब मैं भोजन करके लौटा तो वह ऐसी विकल थी मानों उसके मर्मस्थलपर आघात हुआ हो। मेरी ओर विषादपूर्ण नेत्रोंसे देखकर बोली—"अब तो स्वर्गका द्वार अवश्य खुल गया होगा !"

यह कठोर शब्द मेरे हृदयपर तीरके समान लगे। ऐंठकर बोला,—"स्वर्ग और नर्ककी चिन्तामें वे रहते हैं जो अपाहिज हैं, कर्तव्यहीन हैं, निर्जीव हैं। हमारा स्वर्ग और नर्क सब इसी पृथ्वीपर है। हम इस कर्मक्षेत्रमें कुछ कर जाना चाहते हैं।"

वृन्दा—"धन्य है आपके पुरुषार्थको, आपकी सामर्थ्यको। अब संसारमें सुख और शान्तिका साम्राज्य हो जायगा। आपने संसारका उद्धार कर दिया। इससे बढ़कर उसका और कल्याण क्या हो सकता है !" मैंने झुंझलाकर कहा—"जब तुम्हें इन विषयोंके समझनेको ईश्वरने बुद्धि ही नहीं दी, तो क्या समझाऊं। इस पारस्परिक भेद-भावसे हमारे राष्ट्रको जो हानि हो रही है, उसे मोटी-सी-मोटी बुद्धिका मनुष्य भी समझ सकता है। इस भेदके मिटानेसे देशका कितना कल्याण होता है ; इसमें किसीको सन्देह नहीं। हां, जो जानकर भी अनजान बने, उसकी बात दूसरी है।"

वृन्दा—"बिना एक साथ भोजन किये परस्पर प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता?"

मैंने इस विवादमें पड़ना अनुपयुक्त समझा। किसी ऐसी नीतिकी शरण लेनी आवश्यक ज्ञान पड़ी, जिसमें विवादका स्थान ही न हो। वृन्दाकी धर्मपर बड़ी श्रद्धा है, मैंने उसीके शस्त्रसे उसे पराजित करना निश्चय किया। बड़े गम्भीर भावसे बोला—"यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। किन्तु सोचो तो, यह कितना घोर अन्याय है कि हम सब एक ही पिताकी सन्तान होते हुए, एक दूसरेसे घृणा करें, ऊंच-नीचकी व्यवस्थामें मग्न रहें। यह सारा जगत् उसी परमपिताका विराट रूप है। प्रत्येक जीवमें उसी परमात्माकी ज्योति आलोकित हो रही है। केवल इसी भौतिक परदेने हमें एक दूसरेसे पृथक् कर दिया है। यथार्थमें हम सब एक हैं। जिस प्रकार सूर्य्यका प्रकाश अलग-अलग घरोंमें जाकर भिन्न नहीं हो जाता, उसी प्रकार ईश्वरकी महान् आत्मा पृथक्-पृथक् जीवोंमें प्रविष्ट होकर विभिन्न नहीं होती……।"

मेरी इस ज्ञान-वर्षाने वृन्दाके शुष्क-हृदयको तृप्त कर दिया। वह तन्मय होकर मेरी बातें सुनती रही। जब मैं चुप हुआ तो उसने मुझे भक्ति-भावसे देखा और रोने लगी।

स्त्री—

स्वामीके ज्ञानोपदेशने मुझे सजग कर दिया, मैं अन्धेरे कुंएमें पड़ी थी। इस उपदेशने मुझे उठाकर एक पर्वतके ज्योतिर्मय

शिखरपर बैठा दिया। मैंने अपनी कुलीनतासे, झूठे अभिमानसे, अपने वर्णकी पवित्रताके गर्वमें, कितनी आत्माओंका निरादर किया! परमपिता, तुम मुझे क्षमा करो। मैंने अपने पूज्यपाद पतिसे इस अज्ञानके कारण, जो अश्रद्धा प्रकट की है, जो कठोर शब्द कहे ह, उन्हें क्षमा करना!

जबसे मैंने वह अमृत-वाणी सुनी है, मेरा हृदय अत्यन्त कोमल हो गया है, नाना प्रकारकी सद्कल्पनायें चित्तमें उठती रहती हैं। कल धोबिन कपड़े लेकर आई थी। उसके सिरमें बड़ा दर्द था। पहले मैं उसे इस दशामें देखकर कदाचित मौखिक सहवेदना प्रगट करती, अथवा महरीसे उसे थोड़ा तेल दिलवा देती, पर कल मेरा चित्त विकल हो गया। मुझे प्रतीत हुआ, मानों यह मेरी बहिन है। मैंने उसे अपने पास बैठा लिया और घण्टे भरतक उसके सिरमें तेल मलती रही। उस समय मुझे जो स्वर्गीय आनन्द हो रहा था वह अकथनीय है। मेरा अन्तःकरण किसी प्रबल शक्तिके वशीभूत होकर उसकी ओर खिंचा चला जाता था। मेरी ननदने आकर मेरे इस व्यवहारपर कुछ नाक-भौं चढ़ायी, पर मैंने लेशमात्र भी परवा न की। आज प्रातःकाल कड़ाकेकी सर्दी थी। हाथ-पांव गले जाते थे। महरी काम करने आयी तो खड़ी कांप रही थी। मैं लिहाफ ओढ़े अंगीठीके सामने बैठी हुई थी। तिसपर भी मुंह बाहर निकालते न बनता था। महरीकी सूरत देखकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। मुझे अपनी स्वार्थवृत्तिपर लज्जा आयी। इसके और मेरे बीचमें क्या भेद है? इसकी आत्मा-

में उसी प्रकाशकी ज्योति है। यह अन्यान्य क्यों ? क्या इसीलिये कि मैं संयोगसे एक धनवान पतिकी स्त्री हूं ? क्या इसीलिये कि मायाने हममें भेद कर दिया है ? मुझे कुछ और सोचनेका साहस नहीं हुआ। मैं उठी, अपनी ऊनी चादर लाकर महरीको ओढ़ा दी और उसे हाथ पकड़कर अंगीठीके पास बिठा लिया। इसके उपरान्त मैंने अपना लिहाफ रख दिया और उसके साथ बैठकर बर्तन धोने लगी। वह सरलहृदया मुझे वहांसे बार-बार हटाना चाहती थी। मेरी ननदने आकर मुझे कौतूहलसे देखा और इस प्रकार मुंह बनाकर चली गयी, मानों मैं क्रीड़ा कर रही हूं। सारे घरमें हलचल पड़ गयी। और इस ज़रासी बातपर ! हमारी आंखों-पर कितने मोटे परदे पड़ गये हैं ! हम परमात्माका कितना अप-मान कर रहे हैं !

पुरुष—

कदाचित् मध्यम पथपर रहना नारी-प्रकृतिहीमें नहीं है—वह केवल सीमाओंपर ही रह सकती है। वृन्दा कहां तो अपनी कुलीनता और अपने कुल-मर्यादपर जान देती थी, कहां अब साम्य और सहृदयताकी मूर्ति बनी हुई है। मेरे उस सामान्य उपदेशका यह चमत्कार है ! अब मैं भी अपनी प्रेरक-शक्तियोंपर गर्व कर सकता हूं। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है कि वह नीच जातिकी स्त्रियोंके साथ बैठे, हंसे और बोले, उन्हें कुछ पढ़कर सुनाये, लेकिन उनके पीछे अपनेको बिलकुल भूल जाना मैं कदापि पसन्द नहीं कर सकता। तीन दिन हुए, मेरे पास

एक चमार अपने ज़मींदारपर नालिश करने आया था। निस्स-न्देह ज़मींदारने उसके साथ ज्यादती की थी, लेकिन वकीलोंका काम मुफ्तमें मुकदमे दायर करना नहीं। फिर एक चमारके पीछे एक बड़े ज़मींदारसे बैर करूं ! ऐसा करूं तो वकालत कर चुका ! उसके रोनेकी भनक वृन्दाके कानमें भी पड़ गयी। बस, वह मेरे पीछे पड़ गयी, कि इस मुकदमेको ज़रूर ले लो। मुझसे तर्क-वितर्क करनेपर उद्यत हो गयी। मैंने बहाना करके उसे किसी प्रकार टालना चाहा, लेकिन उसने मुझसे वकालत-नामेपर हस्ताक्षर कराकर तब पिंड छोड़ा। उसका परिणाम यह हुआ कि, पिछले तीन दिन मेरे यहां मुफ्तखोर मुवक्किलोंका तांता लगा रहा और मुझे कई बार वृन्दासे कठोर शब्दोंमें बातें करनी पड़ीं। इसीसे प्राचीन कालके व्यवस्थाकारोंने स्त्रियोंको धार्मिक उपदेशोंका पात्र नहीं समझा था। इनको समझमें यह नहीं आता कि प्रत्येक सिद्धान्तका व्यावहारिक रूप कुछ और ही होता है। हम सभी जानते हैं कि ईश्वर न्यायशील हैं, किन्तु न्यायके पीछे अपनी परिस्थितिको कौन भूलता है ! आत्माकी व्यापकताको यदि व्यवहारमें लाया जाय तो आज संसारमें साम्यका राज्य हो जाय, किन्तु उसी भांति साम्य जैसे दर्शनका एक सिद्धान्त हो रहा है और रहेगा, वैसे ही राजनीति भी एक अलभ्य वस्तु है और रहेगा। हम इन दोनों सिद्धान्तोंकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करेंगे, उनपर तर्क करेंगे, अपने पक्षको सिद्ध करनेमें उनसे सहायता लेंगे, किन्तु उनका उपयोग करना

असम्भव है। मुझे नहीं मालूम था कि वृन्दा इतनी मोटी-सी बात भी न समझेगी!

* * * *

वृन्दाकी बुद्धि दिनोंदिन उलटी ही होती जाती है। आज रसोईमें सबके लिये एक ही प्रकारके भोजन बने। अबतक घर-वालोंके लिये महीन चावल पकते थे, तरकारियां घीमें बनती थीं, दूध मक्खन आदि लिया जाता था। नौकरोंके लिये मोटा चावल, मटरकी दाल और तेलकी भाजियां बनती थीं। बड़े-बड़े रईसोंके यहां भी यही प्रथा चली आती है। हमारे नौकरोंने कभी इस विषयमें शिकायत नहीं की। किन्तु आज देखता हूं तो वृन्दाने सबके लिये एक ही भोजन बनवाया है। मैं कुछ बोल न सका, भौंचक्का-सा हो गया। वृन्दा सोचती होगी कि भोजन-में भेद करना नौकरोंपर अन्याय है। कैसा बच्चोंका-सा विचार है! नासमझ! यह भेद सदा रहा है और रहेगा। मैं भी राष्ट्रीय ऐक्यका अनुरागी हूं। समस्त शिक्षित-समुदाय राष्ट्रीयतापर जान देता है। किन्तु कोई स्वप्नमें भी कल्पना नहीं करता कि हम मजदूरों या सेवा-वृत्ति धारियोंको समताका स्थान देंगे। हम उनमें शिक्षाका प्रचार करना चाहते हैं। उनको दीनावस्थासे उठाना चाहते हैं। यह हवा संसार भरमें फैली हुई है, पर इसका मर्म क्या है यह दिलमें सभी समझते हैं, चाहे कोई खोलकर न कहे इसका अभिप्राय यही है कि, हमारा राजनैतिक महत्व बढ़े, हमारा प्रभुत्व उदय हो, हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनोंका प्रभाव अधिक

हो, हमें यह कहनेका अधिकार हो जाय कि हमारी ध्वनि केवल मुट्ठी भर शिक्षितवर्गहीकी नहीं, वरन् समस्त जातिकी संयुक्त ध्वनि है। पर वृन्दाको यह रहस्य कौन समझावे!

स्त्री—

कल मेरे पति महाशय खुल पड़े। इस समय मेरा चित्त बहुत ही खिन्न है। प्रभो! संसारमें इतना दिखावा, इतनी स्वार्थान्धता है, हम इतने दीन-घातक हैं! उनका उपदेश सुनकर मैं उन्हें देव-तुल्य समझने लगी थी, आज मुझे ज्ञात हो गया कि जो लोग एक साथ दो नावोंपर बैठना जानते हैं, वे ही जातिके हितैषी कहलाते हैं!

कल मेरी ननदकी विदाई थी। वह ससुराल जा रही थीं। बिरादरीकी कितनी ही महिलायें निमन्त्रित थीं। वे उत्तम-उत्तम वस्त्राभूषण पहने कालीनोंपर बैठी हुई थीं। मैं उनका स्वागत कर रही थी। निदान मुझे द्वारके निकट कई स्त्रियां भूमिपर बैठी हुई दिखायी दीं, जहां इन महिलाओंकी जूतियां और स्लीपरें रक्खी हुई थीं। ये बेचारी भी विदाई देखने आयी थीं। मुझे उनका वहां बैठना अनुचित जान पड़ा। मैंने उन्हें भी लाकर कालीनपर बिठा दिया। इसपर महिलाओंमें मटकियां होने लगीं और थोड़ी देरमें वे किसी-न-किसी बहानेसे एक-एक करके चली गयीं। मेरे पति महाशयसे किसीने यह समाचार कह दिया। वे बाहरसे क्रोधमें भरे हुए आये और आंखें लाल करके बोले—"यह तुम्हें क्या सूझी है, क्या हमारे मुंहमें कालिख लगवाना चाहती

हो! तुम्हें ईश्वरने इतनी बुद्धि भी नहीं दी कि किसे किसके साथ बैठाना चाहिये? भले घरकी महिलाओंके साथ नीच स्त्रियोंको बिठा दिया! वे अपने मनमें क्या कहती होंगी? तुमने मुझे कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रखा। छिः! छिः!!" मैंने सरल भावसे कहा—"इससे महिलाओंका तो क्या अपमान हुआ? आत्मा तो सबकी एक है। आभूषणोंसे आत्मा तो ऊंची नहीं हो जाती!"

पति महाशयने होंठ चबाकर कहा—चुप भी रहो, बेसुरा राग अलाप रही हो। बस, वही मुर्गीकी एक टांग, आत्मा एक है, परमात्मा एक है! न कुछ जानो, न बूझो। सारे शहरमें नक्कू बना दिया, उसपर और बोलनेको मरती हो। उन महिलाओं-की आत्माको कितना दुःख हुआ, कुछ इसपर भी ध्यान दिया?

मैं विस्मित होकर उनका मुँह देखने लगी।

* * * *

आज प्रातःकाल उठी, तो मैंने एक विचित्र दृश्य देखा। रात-को मेहमानोंके जूठे पत्तल, सकोरे, दोने, आदि बाहर मैदानमें फेंक दिये गये थे। पचासों मनुष्य उन पत्तलोंपर गिरे हुए उन्हें चाट रहे थे। हां, मनुष्य थे, वही मनुष्य जो परमात्माके निज स्वरूप हैं। कितने ही कुत्ते भी उन पत्तलोंपर झपट रहे थे, पर वे कङ्गले कुत्तोंको मार-मारकर भगा देते थे। उनकी दशा कुत्तोंसे भी गयी-बीती थी। यह कौतुक देखकर मुझे रोमाञ्च होने लगा, मेरी आंखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। भग-

वन्! ये भी हमारे ही भाई बहन हैं, हमारी आत्माएं हैं! उनकी ऐसी शोचनीय, दीन-दशा! मैंने तत्क्षण महरीको भेजकर उन मनुष्योंको बुलवाया और जितनी पूरियां मिठाइयां मेहमानोंके लिये रक्खी हुई थीं, सब पत्तलोंमें रखकर उन्हें दे दीं। महरी थर-थर कांप रही थी, सरकार सुनेंगे तो मेरे सिरका एक बाल भी न छोड़ेंगे। लेकिन मैंने उसे ढाढ़स दिया, तब उसकी जान-में-जान आयी।

अभी ये बेचारे कङ्गले मिठाइयां खा ही रहे थे कि पति महा-शय मुंह लाल किये हुए आये और अत्यन्त कठोर स्वरसे बोले—तुमने भंग तो नहीं खा ली? जब देखो, एक न एक उपद्रव खड़ा कर देती हो। मेरी समझमें नहीं आता कि कि तुम्हें क्या हो गया है। ये मिठाइयां डोमड़ोंके लिये नहीं बनवायी गयी थीं। उनमें घी, शक्कर, मैदा लगा था, जो आजकल मोतियोंके तौल बिक रहा है। हलवाइयोंको दूधके धोये रुपये मजदूरीके दिये गये थे। तुमने उठाकर सब डोमड़ोंको खिला दीं। अब मेहमानोंको क्या खिलाया जायगा? तुमने मेरी इज्जत बिगाड़नेका प्रण कर लिया है क्या?

मैंने गम्भीर भावसे कहा—आप व्यर्थ इतने क्रुद्ध होते हैं। आपकी जितनी मिठाइयां मैंने खिला दी है वह मैं मंगवा दूंगी। मुझसे यह नहीं देखा जाता कि कोई आदमी तो मिठाइयां खाय और कोई पत्तलें चाटे। डोमड़े भी तो मनुष्य ही हैं। उनके जीव-में भी तो उसी.........।

स्वामीने बात काटकर कहा—रहने भी दो, मरी तुम्हारी आत्मा! बस, तुम्हारे ही रक्षा करनेसे आत्माकी रक्षा होगी। यदि ईश्वरकी इच्छा होती कि प्राणिमात्रको समान सुख प्राप्त हो तो उसे सबको एक दशामें रखनेसे किसने रोका था? वह ऊंच-नीचका भेद होने ही क्यों देता है? जब उसकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, तो इतनी महान् सामाजिक व्यवस्था उसकी आज्ञाके बिना क्योंकर भंग हो सकती है? जब वह स्वयं सर्वव्यापी है तो वह अपनेहीको ऐसे-ऐसे घृणोत्पादक अवस्थाओंमें क्यों रखता है? जब तुम इन प्रश्नोंका कोई उत्तर नहीं दे सकतो तो उचित है कि संसारकी वर्तमान रीतियोंके अनुसार चलो। इन बेसिर-पैरकी बातोंसे हंसी और निन्दाके सिवाय और कुछ लाभ नहीं।

मेरे चित्तकी क्या दशा हुई, वर्णन नहीं कर सकती। मैं अवाक् रह गयी। हा स्वार्थ! हा मायान्धकार! हम ब्रह्मका भी स्वांग बनाते हैं!

उसी क्षणसे पतिश्रद्धा और पतिभक्तिका भाव मेरे हृदयसे लुप्त हो गया!

यह घर मुझे अब कारागार लगता है। किन्तु मैं निराश नहीं हूं। मुझे विश्वास है कि जल्द या देरमें, ब्रह्म-ज्योति यहां अवश्य चमकेगी और वह इस अन्धकारको नष्ट कर देगी।

सुहागकी साड़ी

यह कहना भूल है कि दाम्पत्य-सुखके लिये स्त्री-पुरुषके स्वभावमें मेल होना आवश्यक है। श्रीमती गौरा और श्रीमान् कुँवर रतनसिंहमें कोई बात न मिलती थी—गौरा उदार थी, रतनसिंह कौड़ी-कौड़ीको दांतोंसे पकड़ते थे, वह हंसमुख थी, रतनसिंह चिन्ताशील थे, वह कुल-मर्यादा पर जान देती थी, रतनसिंह इसे आडम्बरमात्र समझते थे। उनके सामाजिक व्यवहार और विचारमें भी घोर अन्तर था। यहां उदारताकी बाजी रतनसिंहके हाथ थी। गौराको सहभोजसे आपत्ति थी, विधवा-विवाहसे घृणा और अछूतोंके प्रश्नसे विरोध। रतनसिंह इन सभी व्यवस्थाओंके अनुमोदक थे। राजनीतिक विषयोंमें यह विभिन्नता और भी जटिल थी। गौरा वर्त्तमान स्थितिको अटल, अमर, अपरिहार्य्य समझती थी, इसलिये वह नरम-गरम, कांग्रेस, स्वराज्य, होमरूल सभीसे विरक्त थी। कहती—"ये मुट्ठीभर पढ़े-लिखे आदमी क्या बना लेंगे, चने कहीं भाड़ फोड़ सकते हैं?" रतनसिंह पक्के आशावादी थे, राजनीति-सभाकी पहली पंक्तिमें बैठनेवाले, कर्मक्षेत्रमें सबसे पहले कदम उठानेवाले, स्वदेशव्रत-धारी और बहिष्कारके पूरे अनुयायी। इतनी विषमताओंपर भी उनका दाम्पत्य-जीवन सुखमय था। कभी

कभी उनमें मतभेद अवश्य हो जाता था पर वे समीरके वे झोंके थे जो स्थिर जलको हलकी-हलकी लहरोंसे आभूषित कर देते हैं; वे प्रचण्ड झोंके नहीं जिनसे सागर विप्लव-क्षेत्र बन जाता है। थोड़ीसी सहृदयता, थोड़ासा लिहाज, थोड़ीसी सहानुभूति, थोड़ीसा सदिच्छा सारी विषमताओं, असमताओं और मतभेदोंका प्रतिकार कर देती थी।

२

विदेशी कपड़ोंकी होलियां जलायी जा रही थीं। स्वयं-सेवकोंके जत्थे भिखारियोंकी भांति द्वारोंपर खड़े हो-होकर विलायती कपड़ोंको भिक्षा मांगते थे और ऐसा किंचित् ही कोई द्वार था जहां उन्हें निराश होना पड़ता हो। खद्दर और गाढ़ेके दिन फिर गये थे। नयनसुख नयनदुख, मलमल मनमल और तनजेब तनबेध हो गये थे। रतनसिंहने आकर गौरासे कहा—लाओ अब सब विदेशी कपड़े सन्दूकसे निकाल दो, दे दूं।

गौरा—अरे तो इसी घड़ी कोई साइत निकली जाती है, फिर कभी दे देना।

रतन—वाह, लोग द्वारपर खड़े कोलाहल मचा रहे हैं और तुम कहती हो फिर कभी दे देना।

गौरा—तो यह कुंजी लो, निकालकर दे दो। मगर यह सब है लड़कोंका खेल। घर फूँकनेसे स्वराज्य न कभी मिला है और न मिलेगा।

रतन—मैंने कल ही तो इस विषयपर तुमसे घण्टों सिर-पच्ची की थी और उस समय तुम मुझसे सहमत भी हो गयी थी, आज तुम फिर वही शंकायें करने लगी?

गौरा—मैं तुम्हारे अप्रसन्न हो जानेके डरसे चुप हो गयी थी।

रतन—अच्छा, शंकायें फिर कर लेना, इस समय जो करना है वह करो।

गौरा—लेकिन मेरे कपड़े तो न लोगे न?

रतन—सब देने पड़ेंगे, विलायतका एक सूत भी घरमें रखना मेरे व्रतको भंग कर देगा।

इतनेमें रामटहल साईसने बाहरसे पुकारा—सरकार, लोग जल्दी मचा रहे हैं, कहते हैं अभी कई मुहल्लोंका चक्कर लगाना है। कोई गाढ़ेका टुकड़ा हो तो मुझे भी मिल जाय, मैंने भी अपने कपड़े दे दिये।

केसर महरी कपड़ोंकी एक गठरी लेकर बाहर जाती हुई दिखायी दी। रतनसिंहने पूछा—"क्या तुम भी अपने कपड़े देने जाती हो?"

केसरने लजाते हुए कहा—हां सरकार, जब देश छोड़ रहा है तो मैं कैसे पहनूं?

रतनने गौराकी ओर आदेशपूर्ण नेत्रोंसे देखा। अब वह विलम्ब न कर सकी। लज्जासे सिर झुकाये सन्दूक खोलकर कपड़े निकालने लगी। एक सन्दूक खाली हो गया तो उसने दूसरा सन्दूक खोला। सबसे ऊपर एक सुन्दर रेशमी सूट रखा

हुआ था जो कुंअर साहबने किसी अङ्गरेजी कारखानेमें सिलाया था। गौराने पूछा—क्या यह सूट भी निकाल दूं?

रतन—हां, हां, उसे किस दिनके लिये रखोगी?

गौरा—यदि मैं यह जानती कि इतनी जल्द हवा बदलेगी तो कभी यह सूट न बनवाने देती। सारे रुपये खून हो गये।

रतनने कुछ उत्तर न दिया। तब गौराने अपना सन्दूक खोला और जलनके मारे स्वदेशी-विदेशी सभी कपड़े निकाल-निकाल कर फेंकने लगी। वह आवेश-प्रवाहमें आ गयी। उनमें कितनी ही बहुमूल्य फैंसी जाकेट और साड़ियां थीं जिन्हें किसी समय पहनकर वह फूली न समाती थी। बाज-बाज साड़ियोंके लिये तो उसे रतनसिंहसे बार-बार तकाजे करने पड़े थे। पर इस समय सब-की-सब आंखोंमें खटक रही थीं। रतनसिंह उसके भावोंको ताड़ रहे थे। स्वदेशी कपड़ोंका निकाला जाना उन्हें अखर रहा था पर इस समय चुप रहने हीमें कुशल समझते थे। तिसपर भी दो-एक बार वाद-विवादकी नौबत आ ही गयी। एक बनारसी साड़ीके लिये तो वह झगड़ बैठे, उसे गौराके हाथोंसे छीन लेना चाहा, पर गौराने एक न मानी, निकाल ही फेंका। सहसा सन्दूकमेंसे एक केसरिये रंगकी तनजेबकी साड़ी निकल आयी जिसपर पक्के आंचल और पल्ले टंके हुए थे। गौराने उसे जल्दीसे लेकर अपनी गोदमें छिपा लिया।

रतनने पूछा—यह कैसी साड़ी है?

गौरा—कुछ नहीं, तनजेबकी साड़ी है। अञ्चल पक्का है।

रतन—तनजेबकी है तब तो जरूर ही विलायती होगी। उसे अलग क्यों रख लिया? क्या वह बनारसी साड़ियोंसे अच्छी है?

गौरा—अच्छी तो नहीं है पर मैं इसे न दूंगी।

रतन—वाह, इस विलायती चीजको मैं न रखने दूंगा। लाओ इधर।

गौरा—नहीं, मेरी खातिरसे इसे रहने दो।

रतन—तुमने मेरी खातिरसे एक चीज भी नहीं रखी, मैं क्यों तुम्हारी खातिर करूं?

गौरा—पैरों पड़ती हूं, जिद न करो।

रतन—स्वदेशी साड़ियोंमेंसे जो चाहो रख लो, लेकिन इस विलायती चीजको मैं न रखने दूंगा। इसी कपड़ेकी बदौलत हम गुलाम बने, यह गुलामीका दाग मैं अब नहीं रख सकता। लाओ इधर।

गौरा—मैं इसे न दूंगी, एक बार न दूंगी, हजार बार न दूंगी।

रतन—मैं इसे लेकर छोड़ूंगा, इस गुलामीके पट्टेको इस दासत्वके बन्धनको किसी तरह न रखूंगा।

गौरा—नाहक जिद करते हो।

रतन—आखिर तुमको इससे क्यों इतना प्रेम है?

गौरा—तुम तो बालकी खाल निकालने लगते हो। इतने कपड़े थोड़े हैं? एक साड़ी रख ही ली तो क्या?

रतन—तुमने अभीतक इन होलियोंका आशय ही नहीं समझा।

गौरा—खूब समझती हूं। सब ढोंग है। चार दिनमें जोश ठण्ढा पड़ जायगा।

रतन—तुम केवल इतना बतला दो कि यह साड़ी तुम्हें क्यों इतनी प्यारी है, तो शायद मैं मान जाऊं।

गौरा—यह मेरी सुहागकी साड़ी है।

रतन—(ज़रा देर सोचकर) तब तो मैं इसे कभी न रखूंगा। मैं विदेशी वस्त्रको यह शुभस्थान नहीं दे सकता। उस पवित्र संस्कारका यह अपवित्र स्मृति-चिह्न घरमें नहीं रख सकता। मैं इसे सबसे पहले होलीकी भेंट करूंगा। लोग कितने हतबुद्धि हो गये थे कि ऐसे शुभ कार्योंमें भी विदेशी वस्तुओंका व्यवहार करनेमें सङ्कोच न करते थे। मैं इसे अवश्य होलीमें दूंगा।

गौरा—कैसा अशगुन मुंहसे निकालते हो।

रतन—ऐसी सुहागकी साड़ीका घरमें रखना हो अशकुन, अमङ्गल, अनिष्ट और अनर्थ है।

गौरा—यों चाहे जबरदस्ती छीन ले जाओ पर खुशीसे न दूंगी।

रतन—तो फिर मैं जबर्दस्ती ही करूंगा। मजबूरी है।

यह कहकर वह लपके कि गौराके हाथोंसे साड़ी छीन लूं।

गौराने उसे मजबूत पकड़ लिया और रतनकी ओर कातर नेत्रोंसे देखकर कहा—तुम्हें मेरे सिरकी कसम।

केसर महरी बोली—बहूजीकी इच्छा है तो रहने दीजिये।

रतनसिंहके बढ़े हुए हाथ रुक गये, मुख मलिन हो गया। उदास होकर बोले—मुझे अपना व्रत तोड़ना पड़ेगा। प्रतिज्ञा-पत्रपर झूठे हस्ताक्षर करने पड़ेंगे। खैर, यही सही।

३

शाम हो गयी थी। द्वारपर स्वयंसेवकगण शोर मचा रहे थे, कुंअर साहब जल्द आइये, श्रीमतीजीसे भी कह दीजिये हमारी प्रार्थना स्वीकार करें। बहुत देर हो रही है। उधर रतनसिंह असमंजसमें पड़े हुए थे कि प्रतिज्ञा-पत्रपर कैसे हस्ताक्षर करूं। विदेशी वस्त्र घरमें रखकर स्वदेशी व्रतका पालन क्योंकर होगा? आगे कदम बढ़ा चुका हूं, पीछे नहीं हटा सकता। लेकिन प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन करना अभीष्ट भी तो नहीं, केवल उसके आशयपर लक्ष्य रहना चाहिये। इस विचारसे मुझे प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करनेका पूरा अधिकार है। त्रिया-हठके सामने किसीकी नहीं चलती। यों चाहूं तो एक तानेमें काम निकल सकता है पर उसे बहुत दुःख होगा, बड़ी भावुक है, उसके भावोंका आदर करना मेरा कर्त्तव्य है।

गौरा भी चिन्तामें डूबी हुई थी। सुहागकी साड़ी सुहागका चिह्न है, उसे आग.............कितने अशकुन की बात है। ये कभी-कभी बालकोंकी भांति जिद करने लगते हैं, अपनी धुन-

में किसीकी सुनते ही नहीं। बिगड़ते हैं तो महीनों मुंह ही नहीं सीधा होता।

लेकिन वे बेचारे भी तो अपने सिद्धान्तोंसे मजबूर हैं। झूठ-से उन्हें घृणा है। प्रतिज्ञापर झूठी स्वीकृति लिखनी पड़ेगी, उनकी आत्माको बड़ा दुःख होगा, घोर धर्म-सङ्कटमें पड़े होंगे, यह भी तो नहीं हो सकता कि सारे शहरमें स्वदेशानुरागियोंके शिरमौर बनकर उस प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करनेमें आनाकानी करें। कहीं मुंह दिखानेको जगह न रहेगी, लोग समझेंगे बना हुआ है। पर शकुनकी चीज कैसे दूं?

इतनेमें उसने रामटहल साईसको सिरपर कपड़ोंका गट्ठर लिये बाहर जाते देखा। केसर महरी भी एक गट्ठर सिरपर रखे हुए थी। पीछे-पीछे रतनसिंह हाथमें प्रतिज्ञा-पत्र लिये आ रहे थे। उनके चेहरेपर ग्लानिकी झलक थी जैसे कोई सच्चा आदमी झूठी गवाही देने आ रहा हो।

गौराको देखकर उन्होंने आंखें फेर लीं और चाहा कि उसकी निगाह बचाकर निकल जाऊं। गौराको ऐसा जान पड़ा कि उनकी आंखें डबडबाई हुई हैं। वह राह रोककर बोली—जरा सुनते आओ।

रतन—जाने दो, दिक न करो, लोग बाहर खड़े हैं।

उन्होंने चाहा कि पत्रको छिपा लूं पर गौराने उसे उनके हाथ-से छीन लिया, उसे गौरसे पढ़ा और एक क्षण चिन्ता-मग्न रहने-के बाद बोली—यह साड़ी भी लेते जाओ।

रतन—रहने दो, अब तो मैंने झूठ लिख ही दिया।

गौरा—मैं क्या जानती थी कि तुम ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा कर रहे हो।

रतन—यह तो मैं तुमसे पहले ही कह चुका था।

गौरा—मेरी भूल थी, क्षमा कर दो और इसे लेते जाओ।

रतन—जब तुम इसे देना अशकुन समझती हो तो रहने दो, तुम्हारी खातिर थोड़ा सा झूठ बोलनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

गौरा—नहीं, लेते जाओ। अमङ्गलके भयसे तुम्हारी आत्माका हनन नहीं करना चाहती।

यह कहकर उसने अपनी सुहागकी साड़ी उठाकर पतिके हाथोंमें रख दी। रतनने देखा, गौराके चेहरेपर एक रङ्ग आता है एक रङ्ग जाता है जैसे कोई रोगी अन्तरस्थ विषम वेदनाको दबानेकी चेष्टा कर रहा हो। उन्हें अपनी अहृदयतापर लज्जा आयी। हा! केवल अपने सिद्धान्तकी रक्षाके लिये, अपनी आत्माके सम्मानके लिये, मैं इस देवीके भावोंका वध कर रहा हूं! यह अत्याचार है। साड़ी गौराको देकर बोले—तुम इसे रख लो, मैं प्रतिज्ञापत्रको फाड़े डालता हूं।

गौराने दृढ़तासे कहा—तुम न ले जाओगे तो मैं खुद जाकर दे आऊंगी।

रतनसिंह विवश हो गये। साड़ी ली और बाहर चले आये।

४

उसी दिनसे गौराके हृदयपर एक बोझ-सा रहने लगा। वह दिल बहलानेके लिये नाना उपाय करती, जलसोंमें भाग लेती, सैर करने जाती, मनोरञ्जक पुस्तकें पढ़ती, यहांतक कि कई बार नियमके विरुद्ध थियेटरोंमें भी गयी, किसी प्रकार अमङ्गल कल्पना-को शान्त करना चाहती थी पर यह आशङ्का एक मेघ-मण्डलकी भांति उसके हृदयपर छायी रहती थी।

जब एक पूरा महीना गुजर गयी और उसकी मानसिक वेदना दिनोंदिन बढ़ती ही गयी तो कुंअर महाशयने उसे कुछ दिनोंके लिये अपने इलाकेपर ले जानेका निश्चय किया। उनका मन उन्हें उनके आदर्श-प्रेमपर नित्य तिरस्कार किया करता था। वह अक्सर देहातोंमें प्रचारका काम करने जाया करते थे। पर अब अपने गांवसे बाहर न जाते, या जाते तो सन्ध्यातक जरूर लौट आते। उनकी एक दिनकी देर, उनके साधारण सिरदर्द और जुकाम उसे अव्यवस्थित कर देते थे। वह बहुधा बुरे स्वप्न देखा करती। किसी अनिष्टके काल्पनिक अस्तित्व-की साया उसे अपने चारों ओर मण्डलाती हुई प्रतीत होती थी।

वह तो देहातमें पड़ी हुई आशंकाओंकी कठपुतली बनी हुई थी। इधर उसकी सुहागकी साड़ी स्वदेश-प्रेमकी वेदीपर भस्म होकर ऋद्धि-प्रदायिनी भभूत बनी हुई थी।

दूसरे महीनेके अन्तमें रतनसिंह उसे लेकर लौट आये।

५

गौराको वापस आये तीन-चार दिन हो चुके थे पर असबाबके संभालने और नियत स्थानपर रखनेमें वह इतनी व्यस्त रही कि घरसे बाहर न निकल सकी थी। कारण यह था कि केसर महरी उसके जानेके दूसरे ही दिन छोड़कर चली गयी थी और अभी उतनी चतुर दूसरी महरी मिली न थी। कुंअर साहबका साईस रामटहल भी छोड़ गया था। बेचारे कोचवानको साईस-का भी काम करना पड़ता था।

सन्ध्याका समय था। गौरा बरामदेमें बैठी आकाशकी ओर एकटक होकर ताक रही थी। चिन्ताग्रस्त प्राणियोंका एकमात्र यही अवलम्ब है। सहसा रतनसिंहने आकर कहा—चलो आज तुम्हें स्वदेशी बाजारकी सैर करा लावें। यह मेरा ही प्रस्ताव था पर चार दिन यहां आये हो गये उधर जानेका अवकाश ही न मिला।

गौरा—मेरा तो जानेको जी नहीं चाहता। यहीं बैठकर कुछ बातें करो।

रतन—नहीं, चलो देख आवें। एक घण्टेमें लौट आवेंगे।

अन्तमें गौरा राजी हो गयी। इधर महीनोंसे वह बाहर न निकली थी। आज उसे चारों तरफ एक विचित्र शोभा दिखायी दी। बाजार कभी इतनी रौनकपर न था। वह स्वदेशी बाजारमें पहुंची तो जुलाहों और कोरियोंको अपनी-अपनी दूकानें

सजाये बैठे देखा। सहसा एक वृद्ध कोरीने आकर रतनसिंहको सलाम किया। रतनसिंह चौंककर बोले:—

रामटहल, तुम अब कहां हो?

रामटहलका चेहरा प्रसन्न था। उसके अङ्ग-अङ्गसे आत्म-सम्मानकी आभा झलक रही थी। आंखोंमें गौरव-ज्योति थी। रतनसिंहको कभी अनुमान न हुआ था कि मलबल साफ करनेवाला बुड्ढा रामटहल इतना सौम्य, इतना भद्र पुरुष है। वह बोला—सरकार अब तो अपना कारबार करता हूं। जबसे आपको गुलामी छोड़ी तबसे अपने काममें लग गया। आप लोगोंको निगाह हम गरीबोंपर हो गयी कि हमारी भी गुजर हो रही है, नहीं आप तो जानते हैं किस हालतमें पड़ा हुआ था। जातका कोरी हूं, पर पापी पेटके लिये चमार बन गया था।

रतन—तो भई, अब मुंह मीठा कराओ। यह बाजार लगानेकी मेरी ही सलाह थी बिक्री तो अच्छी होती है?

रामटहल—हां, सरकार, आजकल खूब बिक्री हो रही है। माल हाथोंहाथ उड़ जाता है, यहां बैठते हुए एक महीना हो गया है पर आपकी कृपासे लोगोंके चार पैसे लेने-देने थे वे बेबाक हो गये। भगवानकी दयासे रूखा-सूखा भोजन भी दोनों समय मिल जाता है, और क्या चाहिये। मालिकनकी सुहागकी साड़ीका होलीमें आना कहिये और बाजारका चमकना कहिये। लोगोंने कहा, जब इतने बड़े आदमी होकर ऐसे शकुनकी चीजको परवा नहीं करते तो फिर हम ही विदेशी कपड़े क्यों रखें। जिस

दिन होली जली है उसके दो-तीन दिन पहले ही सरकार इलाकेपर चले गये थे। उसके पहले भी सरकार कई दिनोंतक घरसे बहुत कम निकले थे। मैं तो यही कहूंगा कि यह सारी माया उसी सुहागकी साड़ीकी है।

इतनेमें एक अधेड़ स्त्री गौराके सामने आकर बोली—बहूजी, मुझे भूल तो नहीं गयीं?

गौराने सिर उठाया तो सामने केसर महरी खड़ी थी। वह सुन्दर साड़ी पहने हुए थी, हाथ-पांवमें मामूली गहने भी थे, चेहरा खिला हुआ था। स्वाधीन जीवनका गौरव एक-एक भावसे प्रस्फुटित हो रहा था।

गौराने कहा—इतनी जल्द भूल जाऊंगी? अब कहां हो? हमें लौटने भी न दिया, बीचहीमें उड़ भागीं।

केसर—क्या करूं सरकार, अपना काम चलते देखकर सबर न हो सका। जबतक रोजगार न चलता था तबतक लाचारी थी। पेटके लिये सेवा-टहल, करम-कुकरम, सभी करना पड़ता था। अब आप लोगोंकी दयासे हमारे दिन भी लौटे हैं, अब दूसरा काम नहीं किया जाता। अगर बाजारका यही रंग रहा तो अपनी कमाई खाये न चुकेगी। यह सब आपकी साड़ीकी महिमा है। उसकी बदौलत हम गरीबोंके कितने ही घर बस गये। एक महीना पहले इन दूकानवालोंमेंसे किसीको रोटियोंका ठिकाना न था। कोई साईसी करता था, कोई ताशे बजाता था, यहांतक कि कई आदमी मेहतरका काम करते थे। कितने ही भीख मांगते थे। अब सब

अपने धन्धेमें लग गये हैं। सच पूछो तो तुम्हारे सुहागकी साड़ीने हमें सुहागिन बना दिया, नहीं तो हम सुहागिन होते हुए भी विधवाएं थीं। सच कहती हूं, सैकड़ों जवानोंसे नित्य यही दुआ निकलती है कि आपका सुहाग अमर हो, जिसने हमारी रांड़ जातको सुहाग दान दिया।

रतनसिंह एक दूकानपर बैठकर कुछ कपड़े देखने लगे। गौराका भावुक हृदय आनन्दसे पुलकित हो रहा था। उसकी सारी अमङ्गल कल्पनाएं स्वप्नवत् विच्छिन्न होती जाती थीं। आंखें सजल हो गयी थीं और सुहागकी देवी अश्रु-सिञ्चित नेत्रोंके सामने खड़ी आंचल फैलाकर उसे आशीर्वाद दे रही थी।

उसने रतनसिंहको भक्तिपूर्ण आंखोंसे देखकर कहा—मेरे लिये भी एक साड़ी ले लो—हां, यह मुझे पसन्द है, यही ले लो।

६

जब गौरा यहांसे चली तो सड़ककी बिजलियां जल चुकी थीं। सड़कोंपर खूब प्रकाश था। उसका हृदय भी आनन्दके प्रकाशसे जगमगा रहा था।

रतनसिंहने पूछा—सीधे घर चलूं ?

गौरा—नहीं, छावनीकी तरफ होते चलो !

रतन—बाजार खूब सजा हुआ था।

गौरा—यह जमीन लेकर एक स्थायी बाजार बनवा दो। स्वदेशी कपड़ोंकी दूकानें हों और किसीसे किराया न लिया जाय।

रतन—बहुत खर्च पड़ेगा।

गौरा—मकान बेच दो, रुपये ही रुपये हो जायंगे।

रतन—और रहें पेड़ तले ?

गौरा—नहीं, गांववाले मकानमें।

रतन—सोचूंगा ?

गौरा—(जरा देरमें)—इलाके भरमें खूब कपासकी खेती कराओ, जो कपास बोये, उसकी बेगार माफ कर दो।

रतन—हां, तदबीर अच्छी है, दूनी उपज हो जायगी।

गौरा (कुछ देर तक सोचनेके बाद)—लकड़ी बिना दाम दो तो कैसा हो ? जो चाहे चरखे बनवानेके लिये काट ले जाय।

रतन—लूट मच जायगी।

गौरा—ऐसी बेईमानी कोई न करेगा।

जब उसने गाड़ीसे उतरकर घरमें कदम रखा तो उसका चित शुभ कल्पनाओंसे प्रफुल्लित हो रहा था। मानों कोई बछड़ा खूंटेसे छूटकर किलोलें कर रहा हो।

विमाता

१

स्त्रीकी मृत्युके तीन ही मास बाद पुनर्विवाह करना मृतात्माके साथ ऐसा अन्याय और उसकी आत्मापर ऐसा आघात है जो कदापि क्षम्य नहीं हो सकता। मैं यह न कहूंगा कि उस स्वर्गवासिनीकी मुझसे अन्तिम प्रेरणा थी और न मेरा शायद यह कथन ही मान्य समझा जाय कि हमारे छोटे बालकके लिये 'मां' की उपस्थिति परमावश्यक थी। परन्तु इस विषयमें मेरी आत्मा निर्मल है और मैं आशा करता हूं कि स्वर्ग-लोकमें मेरे इस कार्यकी निर्दय आलोचना न की जायगी। सारांश यह कि मैंने विवाह किया और यद्यपि एक नव-विवाहिता बधूको मातृत्वका उपदेश एक बेसुरा राग था, पर मैंने पहले ही दिन अम्बासे साफ कह दिया कि मैंने तुमसे केवल इस अभिप्रायसे विवाह किया है कि तुम मेरे भोले बालककी मा बनो और उसके हृदयसे उसकी माकी मृत्युका शोक भुला दो!

२

दो मास व्यतीत हो गये। मैं संध्या समय मुन्नूको साथ लेकर वायु-सेवनको जाया करता था। लौटते समय कतिपय मित्रोंसे भेंट भी कर लिया करता था। उन संगतोंमें मुन्नू श्यामा-

की भांति चहकता। वास्तवमें इन संगतोंसे मेरा अभिप्राय मनो-विनोद नहीं, केवल मुन्नूके असाधारण बुद्धि-चमत्कारको प्रदर्शित करना था। मेरे मित्रगण जब मुन्नूको प्यार करते और उसकी विलक्षण बुद्धिकी सराहना करते तो मेरा हृदय बांसों उछलने लगता था। एक दिन मैं मुन्नूके साथ बाबू ज्वालासिंहके घर बैठा हुआ था। ये मेरे परम मित्र थे। मुझमें और उनमें कुछ भेद-भाव न था। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी क्षुद्रतायें, अपने पारिवारिक कलहादि और अपनी आर्थिक कठिनाइयां बयान किया करते थे। नहीं, हम इन मुलाकातोंमें भी अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करते थे और अपनी दुरवस्थाका जिक्र कभी हमारी जबानपर न आता था। अपनी कालिमाओंको सदैव छिपाते थे। एकतामें भी भेद था और घनिष्ठतामें भी अन्तर। अचानक बाबू ज्वालासिंहने मुन्नूसे पूछा,—"क्यों तुम्हारी अम्मा तुम्हें खूब प्यार करती है न?" मैंने मुस्करा कर मुन्नूकी ओर देखा। उसके उत्तरके विषयमें मुझे कोई सन्देह न था। मैं भलीभांति जानता था कि अम्मा उसे बहुत प्यार करती है। परन्तु मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब मुन्नूने इस प्रश्नका उत्तर मुखसे न देकर नेत्रोंसे दिया। उसके नेत्रोंसे आंसूकी बूंदें टपकने लगीं। मैं लज्जासे गड़ गया। इस अश्रु-जलने अम्माके उस सुन्दर चित्रको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जो गत दो मासमें मैंने हृदयमें अङ्कित कर रखा था। ज्वालासिंहने मुझे कुछ संशयकी दृष्टिसे देखा और पुनः मुन्नूसे पूछा—"क्यों रोते हो

बेटा ?" मुन्नू बोला—"रोता नहीं हूं, आंखोंमें धुंआं लग गया था।" ज्वालासिंहका विमाताकी ममतापर सन्देह करना स्वाभाविक बात थी। परन्तु वास्तवमें मुझे भी सन्देह हो गया कि अम्मा सहृदयता और स्नेहकी वह देवी नहीं हैं जिसकी सराहना करते मेरी जिह्वा न थकती थी। वहांसे उठा तो मेरा हृदय भरा हुआ था और लज्जासे माथा न उठता था।

३

मैं घरकी ओर चला तो मनमें विचार करने लगा कि किस प्रकार अपने क्रोधको प्रकट करूं। क्यों न मुंह ढांककर सो रहूं, अम्मा अब पूछे तो कठोरतासे कह दूं कि सिरमें पीड़ा है, मुझे तंग मत करो। भोजनके लिये उठाये तो झिड़ककर उत्तर दूं। अम्मा अवश्य समझ जायगी कि कोई बात मेरी इच्छाके प्रतिकूल हुई है। मेरे पांव पड़ने लगेगी उस समय अपनी व्यङ्ग-पूर्ण बातोंसे उसका हृदय बेध डालूंगा। ऐसा रुलाऊंगा कि वह भी याद करे। पुनः विचार आया कि उसका हँसमुख चेहरा देखकर मैं अपने हृदयको वशमें रख सकूंगा या नहीं। उसकी एक प्रेम-पूर्ण दृष्टि, एक मीठी बात, एक रसीली चुटकी मेरी इस शिला-तुल्य रुष्टताके टुकड़े-टुकड़े कर सकती है। परन्तु हृदयकी इस निर्बलतापर मेरा मन झुंझला उठा। यह मेरी क्या दशा है, क्या इतनी जल्द मेरे चित्तकी काया पलट गयी ? मुझे पूर्ण विश्वास था कि मैं इन मृदुल वाक्योंकी आंधी और ललित कटाक्षोंके बहावमें भी अचल रह सकता हूं, और कहां अब यह दशा हो

गयी कि मुझमें साधारण झोंकेको भी सहन करनेकी सामर्थ्य नहीं! इन विचारोंसे हृदयमें कुछ दृढ़ता आयी, तिसपर भी क्रोधकी लगाम पग-पगपर ढीली होती जाती थी। अन्तमें मैंने हृदयको बहुत दबाया और बनावटी क्रोधका भाव धारण किया। ठान लिया कि चलते-ही-चलते एकदमसे बरस पड़ूँगा।

ऐसा न हो कि बिलम्बरूपी वायु इस क्रोधरूपी मेघको उड़ा ले जाय; परन्तु ज्योंही घर पहुंचा, अम्माने दौड़कर मुन्नूको गोदीमें ले लिया और प्यारसे सने हुए कोमल स्वरसे बोली, "आज तुम इतनी देरतक कहां घूमते रहे ? चलो, देखो, मैंने तुम्हारे लिये कैसी अच्छी-अच्छी फुलौड़ियां बनायी हैं।" मेरा कृत्रिम क्रोध एक क्षणमें उड़ गया। मैंने विचार किया, इस देवीपर क्रोध करना भारी अत्याचार है। मुन्नू अबोध बालक है। सम्भव है कि वह अपनी माको स्मरण कर रो पड़ा हो। अम्मा इसके लिये दोषी नहीं ठहरायी जा सकती। हमारे मनोभाव पूर्व विचारोंके अधीन नहीं होते। हम उनको प्रकट करनेके निमित्त कैसे-कैसे शब्द गढ़ते हैं परन्तु समयपर शब्द हमें धोखा दे जाते हैं और वे ही भावनाएं स्वाभाविकरूपसे प्रगट होती हैं। मैंने अम्माको न तो कोई व्यंग-पूर्ण बातें ही कहीं और न क्रोधित हो मुख ढांककर सोया ही, बल्कि अत्यन्त कोमल स्वरमें बोला, "मुन्नूने आज मुझे अत्यन्त लज्जित किया। खजानची साहबने पूछा कि तुम्हारी नई अम्मा तुम्हें प्यार करती है या नहीं, तो ये रोने लगा! मैं लज्जासे गड़

गया। मुझे तो स्वप्नमें भी यह विचार नहीं हो सकता कि तुमने इसे कुछ कहा होगा। परन्तु अनाथ बच्चोंका हृदय उस चित्रकी भांति होता है जिसपर एक बहुत ही साधारण परदा पड़ा हुआ हो। पवनका साधारण झोंका भी उसे हटा देता है।" ये बातें कितनी कोमल थीं, तिसपर भी अम्माका विकसित मुख-मण्डल कुछ मुरझा गया। वह सजलनेत्र होकर बोली—"इस बातका विचार तो मैंने यथासाध्य पहले ही दिनसे रखा है। परन्तु यह असम्भव है कि मैं मुन्नूके हृदयसे माका शोक मिटा दूं। मैं चाहे अपना सर्वस्व अर्पण कर दूं, परन्तु मेरे नामपर जो सौतेलेपनकी कालिमा लगी हुई है वह मिट नहीं सकती।

मुझे भय था कि इस वार्तालापका परिणाम कहीं विपरीत न हो। परन्तु दूसरे ही दिन मुझे अम्माके व्यवहारमें बहुत ही अन्तर दिखायी देने लगा। मैं उसे प्रातःसे सायंकाल पर्य्यन्त मुन्नूकी ही सेवामें लगा हुआ देखता, यहांतक कि उस धुनमें उसे मेरी भी चिन्ता न रहती थी। परन्तु मैं ऐसा त्यागी न था कि अपने आरामको मुन्नूपर अर्पण कर देता। कभी-कभी मुझे अम्माकी यह अश्रद्धा न भाती परन्तु मैं कभी भूलकर भी इसकी चर्चा न करता। एक दिन मैं अनियमित रूपसे दफ्तरसे कुछ पहले ही आ गया। क्या देखता हूं कि मुन्नू द्वारपर भीतकी ओर मुख किये खड़ा है। मुझे इस समय आंख-मिचौनी खेलनेकी सूझी। मैंने दबे पाँव पीछेसे जाकर

उसके नेत्र मूंद लिये। पर शोक! उसके दोनों गाल अश्रुपूरित थे। मैंने तुरन्त दोनों हाथ हटा लिये। ऐसा प्रतीत हुआ मानों सर्पने डस लिया हो। हृदयपर एक चोट लगी। मुन्नूको गोदमें लेकर बोला; मुन्नू, क्यों रोते हो? यह कहते-कहते मेरे नेत्र भी सजल हो आये। मुन्नू आंसू पीकर बोला, जी नहीं, रोता तो नहीं हूं। मैंने उसे हृदयसे लगा लिया और कहा, अम्माने कुछ कहा तो नहीं? मुन्नूने सिसकते हुए कहा, जी नहीं, वह तो मुझे बहुत प्यार करती हैं। मुझे विश्वास न हुआ, पूछा वह प्यार करती तो तुम रोते क्यों? उस दिन खजानचीके घर भी तुम रोये थे। तुम मुझसे छिपाते हो। कदाचित् तुम्हारी अम्मा अवश्य तुमसे कुछ क्रुद्ध हुई है। मुन्नूने मेरी ओर कातर दृष्टिसे देखकर कहा, "जी नहीं, वह मुझे प्यार करती हैं इसी कारण मुझे बारम्बार रोना आता है। मेरी अम्मा मुझे अत्यंत प्यार करती थीं। वह मुझे छोड़कर चली गयीं। नई अम्मा उनसे भी अधिक प्यार करती हैं। इसलिये मुझे भय लगता है कि उन्हींकी भांति ये भी मुझे छोड़कर न चली जायं।" यह कहकर मुन्नू पुनः फूट-फूटकर रोने लगा। मैं भी रो पड़ा। अम्माके इस स्नेहमय व्यवहारने मुन्नूके सुकोमल हृदयपर कैसा आघात किया था! थोड़ी देरतक मैं स्तम्भित रह गया। किसी कविकी यह वाणी स्मरण आ गयी कि पवित्र आत्माएं इस संसारमें चिरकालतक नहीं ठहरतीं। कहीं भावी ही इस बालककी जिह्वासे तो यह शब्द नहीं कहला रही है, ईश्वर

न करे कि वह अशुभ दिन देखना पड़े। परन्तु मैंने तर्कके द्वारा इस शंकाको हृदयसे निकाल दिया। समझा कि माताकी मृत्युने प्रेम और वियोगमें एक मानसिक सम्बन्ध उत्पन्न कर दिया है और कोई बात नहीं है। मुन्नूको गोदमें लिये हुए अम्माके पास गया और मुसकराकर बोला,—इनसे पूछो क्यों रो रहे हैं? अम्मा चौंक पड़ी। उसके मुखकी कांति मलिन हो गयी। बोली, तुम्हीं पूछो। मैंने कहा, यह इसलिये रोते हैं कि तुम इन्हें अत्यन्त प्यार करती हो और इनको भय है कि तुम भी इनकी माताकी भांति इन्हें छोड़कर न चली जाओ। जिस प्रकार गर्द पुंछ जानेसे दर्पण चमक उठता है उसी भांति अम्माका मुख-मण्डल प्रकाशित हो गया। उसने मुन्नूको मेरी गोदसे छीन लिया और कदाचित् यह प्रथम ही अवसर था कि उसने ममतापूर्ण स्नेहसे मुन्नूका पांव चुम्बन किया।

शोक! महा शोक!! मैं क्या जानता था कि मुन्नूकी अशुभ कल्पना इतनी शीघ्र पूर्ण हो जायगी। कदाचित् उसकी बाल-दृष्टिने होनहारको देख लिया था, कदाचित् उसके बाल-श्रवण मृत्युदूतोंके विकराल शब्दोंसे परिचित थे।

छः मास भी व्यतीत न होने पाये थे कि अम्मा बीमार पड़ी और इन्फ्लुएंज़ाने देखते-देखते उसे हमारे हाथोंसे छीन लिया। पुनः वह उपवन मरुतुल्य हो गया, पुनः वह बसा हुआ घर उजड़ गया। अम्माने अपनेको मुन्नूपर अर्पण कर दिया था—हां, उसने पुत्रस्नेहका आदर्शरूप दिखा दिया। शीतकाल था और वह घड़ी

रात्रि शेष रहते ही मुन्नूके लिये प्रातःकालका भोजन बनाने उठती थी। उसके इस स्नेहबाहुल्यने मुन्नूपर स्वाभाविक प्रभाव डाल दिया था। वह हठीला और नटखट हो गया था। जबतक अम्मा भोजन कराने न बैठे, मुंहमें कौर न डालता, जबतक अम्मा पंखा न झले वह चारपाईपर पांव न रखता। उसे छेड़ता, चिढ़ाता और हैरान कर डालता। परन्तु अम्माको इन बातोंसे आत्मिक सुख प्राप्त होता था। इन्फ्लुएंज़ासे कराह रही थी, करवट लेनेतककी शक्ति न थी, शरीर तवा हो रहा था परन्तु मुन्नूके प्रातःकालके भोजनकी चिन्ता लगी रहती थी। हाय! वह निःस्वार्थ मातृस्नेह अब स्वप्न हो गया। उस स्वप्नके स्मरणमें अब भी हृदय गद्गद् हो जाता है। अम्माके साथ मुन्नूका चुलबुलापन तथा बालक्रीड़ा भी विदा हो गयी। अब वह शोक और नैराश्यकी जीवित मुर्ति है, वह अब कभी नहीं रोता। ऐसा पदार्थ खोकर अब उसे कोई खटका कोई भय नहीं रह गया।

विस्मृति

चित्रकूटके सन्निकट धनगढ़ नामी एक गांव है। कुछ दिन हुए वहां शानसिंह और गुमानसिंह दो भाई रहते थे। ये जातिके ठाकुर (क्षत्री) थे। युद्धस्थलमें वीरताके कारण उनके पूर्वजोंको भूमिका एक भाग मुआफी प्राप्त हुआ था। खेती करते थे, भैंसें पाल रक्खी थीं, घी बेंचते थे, मट्ठा खाते थे और प्रसन्नतापूर्वक समय व्यतीत करते थे। उनकी एक बहिन थी जिसका नाम दूजी था। यथा नाम तथा गुण। दोनों भाई परिश्रमी और अत्यन्त साहसी थे। बहिन अत्यन्त कोमल, सुकुमारी, सिरपर घड़ा रखकर चलती तो उसकी कमर बल खाती थी। किन्तु तीनों अभीतक कुंआरे थे। प्रकटतः उन्हें विवाहकी कुछ चिन्ता न थी। बड़े भाई शानसिंह सोचते, छोटे भाईके रहते हुए अब मैं अपना विवाह कैसे करूं। छोटे भाई गुमानसिंह लज्जावश अपनी अभिलाषा प्रकट न करते थे कि बड़े भाईसे पहले मैं अपना ब्याह कर लूं! वे लोगोंसे कहा करते थे, भाई, हम बड़े आनन्दमें हैं, आनन्दपूर्वक भोजन कर मीठी नींद सोते हैं। कौन यह झंझट सिरपर ले? किन्तु लग्नके दिनोंमें कोई नाई या ब्राह्मण गांवमें वर ढूढ़ने आ जाता तो उसकी सेवा-सत्कारमें यह लोग कोई बात न उठा रखते थे। पुराने चावल निकाले जाते, पालतू बकरे देवीको

भेंट होते और दूधकी नदियां बहने लगती थीं। यहांतक कि कभी-कभी उनका भ्रातृस्नेह प्रतिद्वन्द्विता एवं द्वेषभावके रूपमें परिणत हो जाता था। इन दिनोंमें इनकी उदारता उमंगपर आ जाती थी और इससे लाभ उठानेवालोंकी भी कमी न थी। कितने ही नाई और ब्राह्मण ब्याहके असत्य समाचार लेकर उनके यहां आते और दो-चार दिन पूड़ी-कचौड़ी खा कुछ बिदाई लेकर वर-रक्षा (फलदान) भेजनेका वादा करके अपने घरकी राह लेते। किन्तु दूसरे लग्नतक वह अपना दर्शनतक न देते थे। किसी-न-किसी कारण भाइयोंका यह परिश्रम निष्फल हो जाता था। अब कुछ आशा थी तो दूजीसे। भाइयोंने यह निश्चय कर लिया था कि इसका विवाह वहींपर किया जाय जहांसे एक बहू प्राप्त हो सके।

२

इसी बीचमें गांवका बूढ़ा कारिन्दा परलोक सिधारा। उसकी जगहपर एक नवयुवक ललनसिंह नियुक्त हुआ जो अंगरेजीकी शिक्षा पाये हुए, शौकीन, रंगीन और रसीला आदमी था। दो-चार ही दिनोंमें उसने पनघटों, तालाबों और झरोखोंकी देख-भाल भली भांति कर ली। अन्तमें उसकी रसभरी दृष्टि दूजीपर पड़ी। उसकी सुकुमारता और रूपलावण्यपर मुग्ध हो गया। भाइयोंसे प्रेम और परस्पर मेल-जोल पैदा किया। कुछ विवाह-संबन्धी बातचीत छेड़ दी। यहांतक कि हुक्का-पानी भी साथ-साथ होने लगा। सायं-प्रातः इनके घरपर आया करता।

भाइयोंने भी उसके आदर-सम्मानकी सामग्रियां जमा कीं। पानदान मोल लाये, कालीन खरीदी। वह दर्वाजेपर आता तो दूजी तुरन्त पानके बीड़े बनाकर भेजती, बड़े भाई कालीन बिछा देते और छोटे भाई तश्तरीमें मिठाइयां रखकर लाते। एक दिन श्रीमान्‌ने कहा, "भैया शानसिंह, ईश्वरकी कृपा हुई तो अबकी लग्नमें भाभीजी आ जायंगी। मैंने सब बातें ठीक कर ली हैं।" शानसिंहकी बाछें खिल गयीं। अनुग्रहपूर्ण दृष्टिसे देखकर कहा, "मैं अब इस अवस्थामें क्या ब्याह करूंगा। हां, गुमानसिंहकी बातचीत कहीं ठीक हो जाती तो पाप कट जाता।"

गुमानसिंहने ताड़का पंखा उठा लिया और झलते हुए बोले, "वाह भैया! कैसी बात कहते हो?" ललनसिंहने अकड़कर शानसिंहकी ओर देखते हुए कहा, "भाई साहब, क्या कहते हो अबकी लग्नमें दोनों भाभियां छमाछम करती हुई घरमें आवें तो बात! मैं ऐसा कच्चा मामला नहीं रखता। तुम तो अभीसे बुड्ढोंकी भांति बातें करने लगे। तुम्हारी अवस्था यद्यपि पचाससे भी अधिक हो गयी पर देखनेमें चालीस वर्षसे भी कम मालूम होती है। अबकी दोनों विवाह होंगे, बीच खेत होंगे। यह तो बताओ, वस्त्राभूषणका समुचित प्रवन्ध है न? शानने उनके जूतोंको सीधा करते हुए कहा, "भाई साहब! आपको यदि ऐसी कृपा-दृष्टि है तो सब कुछ हो जायगा। आखिर इतने दिन कमा-कमाकर क्या किया है।" गुमानसिंह घरमें गये, हुक्का ताजा किया, तम्बाकूमें दो-तीन बूंद इत्रके डाले, चिलम भरी, दूजीसे कहा कि शरबत घोल दे, और हुक्का लेकर ललनसिंहके सामने रख दिया। ललनसिंहने दो-चार दम लगाये और बोले, "नाई दो-चार दिनमें आनेवाला है। ऐसा घर चुना है कि चित्त प्रसन्न हो जाय, एक विधवा है। दो कन्यायें एक-से-एक सुन्दर। विधवा दो-एक वर्षमें संसारको त्याग देगी और तुम एक सम्पूर्ण गांवमें दो आनेके हिस्सेदार बन जाओगे। गांववाले जो अभी हंसी करते हैं पीछे जल-जल मरेंगे हां, भय इतना ही है कि कोई बुढ़िया-के कान न भर दे कि सारा बना बनाया खेल बिगड़ जाय।"

शानसिंहके चेहरेपर हवाइयां उड़ने लगीं। गुमानसिंहकी मुखकांति मलिन हो गयी। बोले, "अब तो आपकी ही आशा है, आपकी जैसी राय हो किया जाय।"

जब कोई पुरुष हमारे साथ अकारण मित्रताका व्यवहार करने लगे तो हमको सोचना चाहिये कि इसमें उसका कोई स्वार्थ तो नहीं छिपा है। यदि हम अपने सीधेपनसे इस भ्रममें पड़ जायं कि कोई मनुष्य हमको केवल अनुगृहीत करनेके लिये हमारी सहायता करनेपर तत्पर है तो हमें धोखा खाना पड़ेगा। किन्तु अपने स्वार्थकी धुनमें ये मोटी-मोटी बातें भी हमारी निगाहोंसे छिप जाती हैं और छल अपने रंगे हुए भेषमें आकर हमको सर्वदाके लिये परस्पर व्यवहारका उपदेश देता है। शान और गुमानने सोच विचारसे कुछ भी काम न लिया और ललनसिंहके फन्दे नित्यप्रति गाढ़े होते गये। मित्रताने यहांतक पांव पसारे

कि भाइयोंकी अनुपस्थितिमें भी वह बेधड़क घरमें घुस जाते और आंगनमें खड़े होकर छोटी बहिनसे पान हुक्का मांगते। दूजी उन्हें देखते ही अति प्रसन्नतासे पान बनाती। फिर आंखें मिलतीं, एक प्रेमाकांक्षासे बेचैन, दूसरी लज्जावश सकुची हुई। फिर मुसकराहटकी झलक होठोंपर आती। चितवनोंकी शीतलता कलियोंको खिला देती। हृदय नेत्रोंद्वारा बातें कर लेते।

इस प्रकार प्रेमलिप्सा बढ़ती गयी। उस नेत्रालिंगनमें, जो मनोभावोंका वाह्यरूप था, उद्विग्नता और विकलताकी दशा उत्पन्न हुई। वह दूजी, जिसे कभी मनिहारे और बिसातीकी रुचिकर ध्वनि भी चौखटसे वाहर न निकाल सकती थी, अब एक प्रेम विह्वलताकी दशामें प्रतीक्षाकी मूर्ति बनी हुई घण्टों दरवाजोंपर खड़ी रहती। उन दोहे और गीतोंमें, जिन्हें वह कभी विनोदार्थ गाया करती थी, अब उसे विशेष अनुराग और विरह-वेदनाका अनुभव होता। तात्पर्य यह कि प्रेमका रङ्ग गाढ़ा हो गया।

शनैः-शनैः गांवमें चर्चा होने लगी। घास और काँस स्वयं उगते हैं। उखाड़नेसे भी नहीं जाते। अच्छे पौधे बड़ी देख-रेखसे उगते हैं। इसी प्रकार बुरे समाचार स्वयं फैलते हैं छिपानेसे भी नहीं छिपते। पनघटों और तालाबोंके किनारे इस विषयपर कानाफूंसी होने लगी। गांवकी बनियाइन जो अपनी तराजूपर हृदयोंको तौलती थी और ग्वालिन जो जलमें प्रेमका रंग देकर दूधका दाम लेती थी और तम्बोलिन जो पानके बीड़ोंसे दिलोंपर रंग जमाती थी, बैठकर दूजीकी लोलुपता और निर्लज्जताका राग अलापने लगीं। बेचारी दूजीको घरसे निकलना दुर्लभ हो गया, सखी सहेलियां एवं बड़ी बूढ़ियां सभी उसको ताने मारतीं। सखी सहेलियां हंसीसे छेड़तीं और वृद्धा स्त्रियां हृदयविदारक व्यङ्गोंसे।

मर्दोंतक बातें फैलीं। ठाकुरोंका गांव था। उनकी क्रोधाग्नि भड़की। आपसमें सम्मति हुई कि ललनसिंहको इस दुष्टताका दण्ड देना उचित है। दोनों भाइयोंको बुलाया और बोले, भैया, क्या अपनी मर्यादाका नाश करके विवाह करोगे?

दोनों भाई चौंक पड़े। उन्हें विवाहकी उमंगमें यह सुधि ही नहीं थी कि घरमें क्या हो रहा है। ज्ञानसिंहने कहा, "तुम्हारी बात मेरी समझमें नहीं आयी। साफ-साफ क्यों नहीं कहते।" एक ठाकुरने जवाब दिया, "साफ-साफ क्या कहलाते हो? इस शोहदे ललनसिंहका अपने यहां आना-जाना बंद कर दो, नहीं तो तुम तो अपनी आंखोंपर पट्टी बांधे ही हो उसकी जानकी कुशल नहीं। हमने अभीतक इसीलिये तरह दिया है कि कदाचित् तुम्हारी आंखें खुलें, किन्तु ज्ञात होता है कि तुम्हारे ऊपर उसने मुर्देका भस्म डाल दिया है। ब्याह क्या अपनी आबरू बेचकर करोगे? तुम लोग खेतमें रहते हो और हम लोग अपनी आंखोंसे देखते हैं कि वह शोहदा अपना बनाव-संवार किये आता है और तुम्हारे घरमें घण्टों घुसा रहता है। तुम उसे अपना भाई समझते हो तो समझा करो। हम तो ऐसे भाईका गला काट लें जो विश्वासघात करे।"

भाइयोंके नेत्र-पट खुले। दूजीके सम्बन्धमें जो उत्तरका सन्देह था वह प्रेमका उत्तर निकला। रुधिरमें उबाल आया। नेत्रोंसे चिनगारियां उड़ीं। तेवर बदले। दोनों भाइयोंने एक दूसरेकी ओर क्रोधमय दृष्टिसे देखा। मनोगत भाव जिह्वातक न आ सके। अपने घर आये। किन्तु दरवाजेपर पांव रक्खा ही था कि ललनसिंहसे मुठभेड़ हो गई।

ललनसिंहने हंसकर कहा—"वाह भैया! वाह! हम तुम्हारी खोजमें बारम्बार आते हैं, किन्तु आपके दर्शनतक नहीं मिलते। मैंने समझा, आखिर रात्रिमें तो कुछ काम न होगा। किन्तु देखता हूं आपको इस समय भी छुट्टी नहीं है।"

शानसिंहने हृदयके भीतर क्रोधाग्निको दबाकर कहा—"हां, इस समय वास्तवमें छुट्टी नहीं है।"

ललनसिंह—"आखिर क्या काम है? मैं भी सुनूँ।"

शानसिंह—"बहुत बड़ा काम है, तुमसे छिपा न रहेगा।"

ललनसिंह—"कुछ वस्त्राभूषणका भी प्रबन्ध कर रहे हो? अब लग्न सिरपर आ गयी है।"

शानसिंह—"अब बड़ी लग्न सिरपर आ पहुंची है, पहिले इसका प्रबन्ध करना है।"

ललनसिंह—"क्या किसीसे ठन गई क्या?"

शानसिंह—"भली भांति।"

ललनसिंह—"किससे?"

शानसिंह—"इस समय जाइये प्रातःकाल बतलाऊंगा।"

५

दूजी भी ललनसिंहके साथ दरवाजेके चौखटतक आई थी। भाइयोंकी आहट पाते ही ठिठक गई और यह बातें सुनीं। उसका माथा ठनका कि आज यह क्या मामला है। ललनसिंहका कुछ आदर-सत्कार नहीं हुआ। न हुक्का न पान। क्या भाइयोंके कानोंमें कुछ भनक तो नहीं पड़ी? किसीने कुछ लगा तो नहीं दिया? यदि ऐसा हुआ तो कुशल नहीं।

इसी उधेड़बुनमें बैठी थी कि भाइयोंने भोजन परोसनेकी आज्ञा दी। जब वह भोजन करने बैठे तो दूजीने अपनी निर्दोषिता और पवित्रता प्रकट करनेके लिये एवं अपने भाइयोंके दिलका भेद लेनेके लिये कुछ कहना चाहा। त्रियाचरित्रमें अभी निपुण न थी। बोली—"भैया, ललनसिंहसे कह दो, घरमें न आया करें। आप घरमें रहिये तो कोई बात नहीं, किन्तु कभी-कभी आप नहीं रहते तो मुझे अत्यन्त लज्जा आती है। आज ही वह आपको पूछते हुए चले आये, अब मैं उनसे क्या कहूं? आपको नहीं देखा तो लौट गये।"

शानसिंहने बहिनकी तरफ तानाभरे नेत्रोंसे देखकर कहा—"अब वह घरमें न आयंगे।"

गुमानसिंह बोले—"हम इसी समय जाकर उन्हें समझा देंगे।"

भाइयोंने भोजन कर लिया। दूजीको पुनः कुछ कहनेका साहस न हुआ। उसे उनके तेवर आज कुछ बदले हुए मालूम होते थे। भोजनोपरान्त दोनों भाई दीपक लेकर भण्डारेकी कोठरी

में गये। अनावश्यक बर्तन, पुराने सामान, पुरुषाओंके समयके अस्त्र-शस्त्र, आदि इसी कोठरीमें रखे थे। गांवमें जब कोई बकरा देवीजीको भेंट किया जाता तो यह कोठरी खुलती थी। आज तो कोई ऐसी बात नहीं है। इतनी रात गये यह कोठरी क्यों खोली जाती है? दूजीको किसी भावी दुर्घटनाका सन्देह हुआ। वह दबे पांव दरवाजेपर गई तो देखती क्या है कि गुमानसिंह एक कुदाली लिये पत्थरपर रगड़ रहा है। उसका कलेजा धक-धक करने लगा, और पांव थर्राने लगे। वह उलटे पांव लौटना चाहती थी कि शानसिंहकी आवाज सुनाई दी—"इसी समय एक घड़ीमें चलना ठीक है। पहली नींद बड़ी गहरी होती है। बेधड़क सोता होगा।" गुमानसिंह बोले—"अच्छी बात है, देखो कुदालीकी धार! एक हाथमें काम तमाम हो जायगा!"

दूजीको ऐसा ज्ञात हुआ मानों किसीने पहाड़परसे ढकेल दिया। सारी बातें उसकी समझमें आ गईं। वह भयकी दशामें घरसे निकली और ललनसिंहके चौपालकी ओर चली। किन्तु वह अन्धेरी रात, प्रेमकी घाटी थी; और वह रास्ता, प्रेमका कठिन मार्ग। वह इस सुनसान अंधेरी रातमें चौकन्ने नेत्रोंसे इधर-उधर देखती, विह्वलताकी दशामें शीघ्रतापूर्वक चली जाती थी। किन्तु हाय निराशा! एक-एक पग उसे प्रेम-भवनसे दूर लिये जाता था। उस अन्धेरी भयानक रात्रिमें भटकती, न जाने वह कहां चली जाती थी, किससे पूंछे! लज्जावश वह किसीसे

कुछ न पूछ सकती थी। कहीं चूड़ियों झनझनाहट भेद न खोल दे! क्या इन अभागे आभूषणोंको आज ही झनझनाना है? अंतमें एक वृक्षके तले वह बैठ गई, सब चूड़ियां चूर-चूर कर दीं, आभूषण उतार अञ्चलमें बांध लिये। किन्तु हाय! यह चूड़ियां सुहागकी चूड़ियां थीं; और यह गहने सुहागके गहने थे, जो एक बार उतारकर फिर न पहने गये।

उसी वृक्षके नीचे पयस्विनी नदी पत्थरके टुकड़ोंसे टकराती हुई बहती थी। जहां नौकाओंका निर्वाह दुस्तर था। दूजी बैठी हुई सोचती थी, क्या मेरे जीवनकी नदीमें प्रेमकी नौका दुःखकी शिलाओंसे टकर खाकर डूब जायगी।

६

प्रातःकाल ग्रामवासियोंने आश्चर्यपूर्वक सुना कि ठाकुर ललनसिंहकी किसीने हत्या कर डाली। सारे गांवके स्त्री, पुरुष, वृद्ध, युवा, सहस्रोंकी संख्यामें चौपालके सामने जमा हो गये। स्त्रियां पनघटोंको जाती हुई रुक गईं। किसान हल-बैल लिये ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये। किसीकी समझमें न आता था कि यह हत्या किसने की। कैसा मिलनसार, हंसमुख सज्जन मनुष्य था! उसका कौन ऐसा शत्रु था! बेचारेने किसीपर इज़ाफा लगाना या बेदखलीकी नालिशतक नहीं की। किसीको दो बाततक नहीं कही। दोनों भाइयोंके नेत्रोंसे आंसूकी धारा बहती थी। उनका घर उजड़ गया। सारी आशाओंपर तुषारपात हो गया। गुमानसिंहने रोकर कहा—"हम तीन भाई थे, अब दो ही रह गये!

हमसे तो दांत काटी रोटी थी। साथ उठना-बैठना हँसी, दिल्लगी। भोजन-छाजन एक हो गया था। हत्यारेसे इतना भी नहीं देखा गया। हाय! अब हमको कौन सहारा देगा?" शान-सिंहने आंसू पोंछते हुए कहा—"हम दोनों भाई कपास निराने जा रहे थे। ललनसिंहसे कई दिनसे भेंट नहीं हुई थी। सोचे कि इधरसे होते चलें, किन्तु पिछवाड़े आते ही सेंध दिखाई पड़ी। हाथोंके तोते उड़ गये। दरवाजोंपर आकर देखा तो चौकीदार सिपाही सब सो रहे हैं। उन्हें जगाकर ललनसिंहका किवाड़ खट-खटाने लगा। परन्तु बहुत बल करनेपर भी किवाड़ अंदरसे न खुल तो सेंधके रास्तेसे झांका, आह कलेजेमें एक तीर लग गया! संसार अन्धेरासा दिखाई दिया। प्यारे ललनसिंहका सिर धड़से अलग था। रक्तकी नदी बह रही थी। शोक! भैया सदाके लिये बिछुड़ गये!

मध्याह्न कालतक इसी प्रकार विलाप होता रहा। दरवाजेपर मेला लगा हुआ था। दूर-दूरसे लोग इस दुर्घटनाका समाचार पाकर इकट्ठे होते जाते थे। सन्ध्या होते-होते हल्केके दारोगा साहब भी चौकीदार और सिपाहियोंका एक झुण्ड लिये आ पहुंचे। कड़ाही चढ़ गई। पूड़ियां छनने लगीं। दारोगाजीने जाँच करना शुरू किया। घटनास्थल देखा। चौकीदारोंका बयान हुआ। दोनों भाइयोंके बयान लिखे। आस-पासके पासी और चमार पकड़े गये और उनपर मार पड़ने लगी। ललनसिंहकी लाश लेकर थानेपर गये। हत्यारेका पता न चला। दूसरे दिन इन्सपेक्टर-पुलिसका

आगमन हुआ। उन्होंने भी गांवका चक्कर लगाया, चमारों और पासियोंकी फिर मरम्मत हुई; हलुआ, मोहन, गोश्त, पूड़ीका स्वाद लेकर सायंकालको उन्होंने भी अपनी राह ली। कुछ पासि-योंपर जो कि कई बार डाके-चोरीमें पकड़े जा चुके थे, सन्देह हुआ। उनका चालान किया गया। मजिस्ट्रेटने गवाही पुष्ट पाकर अपराधियोंको सेशन सुपुर्द किया। और मुकदमेकी पेशी होने लगी।

मध्याह्नका समय था। आकाशपर मेघ छाये हुए थे। कुछ बून्दें भी पड़ रही थीं। सेशन जज कुंवर विनयकृष्ण बघलाके इजलासमें मुकदमा पेश था। कुंवर साहब बड़े सोच-विचारमें थे कि क्या करूं। अभियुक्तोंके विरुद्ध साक्षी निर्बल थी। किन्तु सरकारी वकील जो एक प्रसिद्ध नीतिज्ञ थे, नज़ीरोंपर नज़ीरें पेश करते जाते थे कि अचानक दूजी श्वेत साड़ी पहने, घूंघट निकाले हुए निर्भय न्यायालयमें आ पहुंची और हाथ जोड़कर बोली—"श्रीमान्! मैं शानसिंह और गुमानसिंहकी बहन हूं। इस मामलेमें जो कुछ जानती हूं वह मुझसे भी सुन लिया जाय। इसके बाद सरकार जो फैसला चाहे करें।

कुंवर साहबने आश्चर्यसे दूजीकी तरफ दृष्टि फेरी। शान-सिंह और गुमानसिंहके शरीरमें काटो तो रक्त नहीं। वकीलोंने भी आश्चर्यकी दृष्टिसे उसकी ओर देखना शुरू किया। दूजीके चेहरेपर दृढ़ता झलक रही थी। भयका लेशमात्र न था। नदी आँधीके पश्चात् स्थिर दशामें थी उसने उसी प्रवाहमें कहना प्रारंभ

किया—"ठाकुर ललनसिंहको हत्या करनेवाले मेरे दोनों भाई हैं।"

कुंवर साहबके नेत्रोंके सामनेसे पर्दा-सा हट गया। सारी कचहरी दङ्ग हो गई और सब टकटकी बाँधे दूजीकी तरफ देखने लगे।

दूजी बोली—"यह वह भुजाली है जो ललनसिंहकी गर्दनपर फेरी गई है। अभी इसका खून ताजा है। मैंने अपनी आंखोंसे भाइयोंको इसे पत्थरपर रगड़ते देखा; उनकी बातें सुनीं। मैं उसी समय घरसे बाहर निकली कि ललनसिंहको सावधान कर दूं। किन्तु मेरा भाग्य खोटा था। चौपालका पता न लगा। मेरे दोनों भाई सामने खड़े हैं, वह मर्द हैं। मेरे सामने असत्य कदापि न कहेंगे। इनसे पूछ लिया जाय और सच पूछिये तो यह छूरी मैंने चलाई है। मेरे भाइयोंका अपराध नहीं है। यह सब मेरे भाग्यका खेल है। यह सब मेरे कारण हुआ और न्यायकी तलवार मेरी ही गर्दनपर पड़नी चाहिये। मैं ही अपराधिनी हूं और हाथ जोड़कर कहती हूं कि इस भुजालीसे मेरी गर्दन काट ली जाय।

७

न्यायालयमें एक स्त्रीका आना बाजारमें भानमतीका आना है। अबतक अभियोग नीरस और अरुचिकर था। दूजीके आगमनने उसमें प्राण डाल दिये। न्यायालयमें एक भीड़ लग गई। मवक्किल और वकील, अमले और दूकानदार, असावधानीकी दशामें इधर-उधरसे दौड़ते हुए चले आते थे। प्रत्येक पुरुष उसके देखनेका इच्छुक था। सहस्रों नेत्र उसके मुखड़ेकी तरफ देखते थे और वह जनसमूहमें शान्तिकी मूर्ति बनी हुई निश्चल खड़ी थी।

इस घटनाकी प्रत्येक पुरुष अपनी-अपनी समझके अनुसार आलोचना करता था। वृद्ध जन कहते थे बेहया है, ऐसी लड़कीका तो सिर काट लेना चाहिये। भाइयोंने वही किया जो मर्दोंका काम था। इस निर्लज्जको तो देखो कि अपना परदा ढांकनेके बदले उसका डंका बजा रही है और भाइयोंको भी डुबाये देती है। आंखोंका पानी गिर गया है। ऐसी न होती तो यह दिन ही क्यों आता!

मगर नवयुवक, स्वतंत्रतापर जान न्यौछावर कर देनेवाले वकीलों और अमलोंमें उसके साहस और निर्भयताकी प्रशंसा हो रही थी। उनकी समझमें जब यहांतक नौबत आ गयी थी तो भाइयोंका धर्म था कि दोनोंका ब्याह कर देते।

कई वृद्ध वकीलोंकी अपने नवयुवक मित्रोंसे कुछ छेड़छाड़ हो गई। एक फैशनेबुल बैरिस्टर साहबने हंसकर कहा—मित्र, और तो जो कुछ है सो है, यह स्त्री सहस्रोंमें एक है; रानी मालूम होती है। सर्वसाधारणने इसका समर्थन किया। कुंवर विनयकृष्ण इस समय कचहरीसे उठे थे। बैरिस्टर साहबकी बात सुनी और घृणासे मुंह फेर लिया। वह सोच रहे थे कि जिस स्त्रीके

क्रोधमें इतनी ज्वाला है क्या उसका प्रेम भी इसी प्रकार ज्वाला-पूर्ण होगा।

८

दूसरे दिन फिर दस बजे मुकदमा पेश हुआ। कमरेमें तिल रखनेकी भी जगह न थी। दूजी कटघरेके पास सिर झुकाये खड़ी थी। दोनों भाई कई कानिस्टेबिलोंके बीचमें चुपचाप खड़े थे। कुंवर विनयकृष्णने उन्हें सम्बोधित करके उच्च स्वरसे कहा—"ठाकुर शानसिंह, गुमानसिंह, तुम्हारी बहिनने तुम्हारे सम्बन्धमें अदालतमें जो कुछ बयान किया है उसका तुम्हारे पास क्या उत्तर है ?"

शानसिंहने गर्वपूर्ण भावसे उत्तर दिया—"मेरी बहिनने जो कुछ बयान किया वह सब सत्य है। हमने अपना अपराध इसलिये छिपाया था कि हम बदनामी और बेइज्जतीसे डरते थे। किन्तु अब जब कि हमारी बदनामी जो कुछ होनी थी हो चुकी तो हमको अपनी सफाई देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे जीवनसे अब मृत्यु ही उत्तम है। ललनसिंहसे मेरी हार्दिक मित्रता थी। आपसमें कोई विभेद न था। हम उसे अपना भाई समझते थे किन्तु उसने हमको धोखा दिया। उसने मेरे कुलमें कलंक लगा दिया और हमने उसका बदला लिया। उसने चिकनी चुपड़ी बातों द्वारा मेरी इज्जत लेनी चाही। किन्तु हम अपने कुलकी मर्यादा इतनी सस्ती नहीं बेच सकते थे। स्त्रियां ही कुल-मर्यादाकी सम्पत्ति होती हैं। मर्द उसके रक्षक होते हैं। जब इस

सम्पत्तिपर कपटका हाथ उठे तो मर्दोंका धर्म है कि रक्षा करें। इस पूंजीको अदालतका कानून, परमात्माका भय या सद्विचार नहीं बचा सकता। हमको इसके लिये न्यायालयसे जो दण्ड प्राप्त हो वह शिरोधार्य है।

जजने शानसिंहकी बात सुनी। कचहरीमें सन्नाटा छा गया और सन्नाटेकी दशामें उन्होंने अपना फैसला सुनाया। दोनों भाइयोंको हत्याके अपराधमें कालेपानीका दण्ड मिला।

९

सायंकाल हो गया था। दोनों भाई कानिस्टेबिलोंके बीचमें कचहरीसे बाहर निकले। हाथमें हथकड़ियाँ थीं, पाँवोंमें बेड़ियाँ। हृदय अपमानसे संकुचित, और शिर लज्जाके बोझसे झुके हुए थे। मालूम होता था मानों सारी पृथ्वी हमपर हंस रही है।

दूजी पृथ्वीपर बैठी थी कि उसने कैदियोंके आनेकी आहट सुनी। उठ खड़ी हुई। भाइयोंने भी उसकी ओर देखा। परन्तु हाय! उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ कि यह भी हमारे ऊपर हंस रही है। घृणासे नेत्र फेर लिये। दूजीने भी उन्हें देखा। किन्तु क्रोध और घृणासे नहीं, केवल एक उदासीन भावसे। जिन भाइयोंकी गोदमें खेली और जिनके कंधोंपर चढ़कर बाल्यावस्था व्यतीत की; जिन भाइयोंपर जान न्यौछावर करती थी, आज वही दोनों भाई उस कालेपानीको जा रहे हैं जहाँसे कोई लौटकर नहीं आता और उसके रक्तमें तनिक भी गति नहीं होती! रुधिर भी द्वेषसे जलकी भाँति जम जाता है! सूर्यकी किरणें वृक्षोंकी

डालियोंसे मिलीं, फिर अड्डोंको चूमती हुई चल दीं। उनके लिये अंधकार गोद फैलाये हुए था। क्या इस अभागिनी स्त्रीके लिये भी इस संसारमें कोई ऐसा आश्रय नहीं था?

आकाशकी लालिमा नीलावरण हो गई। तारोंके कंवल खिले। वायुके लिये पुष्प-शय्या बिछ गई। ओसके लिये हरी मखमलका फर्श बिछ गया, किन्तु अभागिनी दूजी उसी वृक्षके नीचे शिथिल बैठी थी। उसके लिये संसारमें कोई स्थान न था। अबतक जिसे वह अपना घर समझती थी, उसके दरवाजे उसके लिये बन्द थे। वहाँ क्या मुंह लेकर जाती? नदीको अपने उद्गमसे चलकर अथाह समुद्रके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं ठिकाना नहीं है।

दूजी उसी तरह निराशाके समुद्रमें निमग्न हो रही थी, कि एक वृद्ध स्त्री उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। दूजी चौंककर उठ बैठी। वृद्ध स्त्रीने उसकी ओर आश्चर्यान्वित होकर कहा—"इतनी रात बीत गयी, अभीतक तुम यहीं बैठी हो?"

दूजीने चमकते हुए तारोंकी ओर देखकर कहा—"कहाँ जाऊं?" इन शब्दोंमें कैसा हृदय-विदारक आशय छिपा हुआ था। कहाँ जाय? संसारमें उसके लिये अपमानकी गलीके सिवा और कोई स्थान नहीं था। बुढ़ियाने प्रेममय स्वरमें कहा—"बेटी, भाग्यमें जो कुछ लिखा है वह तो होही कर रहेगा, किन्तु तुम यहाँ कबतक बैठी रहोगी! मैं दीन ब्राह्मणी हूं। चलो मेरे घर रहो; जो कुछ भिक्षा-भवन माँगे मिलेगा उसीमें हम दोनों

निर्वाह कर लेंगी। न जाने पूर्व-जन्ममें हमसे तुमसे क्या सम्बन्ध था। जबसे तुम्हारी दशा सुनी है, बेचैन हूं सारे शहरमें आज घर-घर तुम्हारी चर्चा हो रही है। कोई कुछ कहता है कोई कुछ, बस अब उठो। यहाँ सन्नाटेमें पड़े रहना अच्छा नहीं। समय बुरा है। मेरा घर यहाँसे थोड़ी ही दूरपर है। नारायणका दिया बहुत कुछ है। मैं भी अकेलीसे दुकेली हो जाऊंगी। भगवान किसी-न-किसी प्रकार दिन काट ही देंगे।

एक घने, सुनसान, भयानक वनमें भटका हुआ मनुष्य जिधर पगडण्डियोंका चिह्न पाता है उसी मार्गको पकड़ लेता है वह यही सोच-विचार करता कि यह मार्ग मुझे कहाँ ले जायगा। दूजी इस बुढ़ियाके साथ चली। इतनी ही प्रसन्नतासे कुएंमें कूद पड़ती। वायुमें उड़नेवाली चिड़िया दानोंपर गिरी। क्या इन दानोंके नीचे जाल बिछा हुआ था!

१०

दूजीको बूढ़ी कैलाशीके साथ रहते हुए एक मास बीत गया। कैलाशी देखनेमें दीन किन्तु मनकी धनी थी। उसके पास संतोषरूपी धन था जो किसीके सामने हाथ नहीं फैलाता। रीवांके महाराजके यहाँसे कुछ सहायता मिलती थी। यही उसके जीवनका अवलम्ब था। वह सर्वदा दूजीको ढाढ़स देती रहती थी। ज्ञात होता था कि यह दोनों मां बेटी हैं। एक ओरसे पूर्ण सहानुभूति और ढाढ़स, दूसरी ओरसे सच्ची सेवकाई और विश्वास। कैलाशी कुछ हिन्दी जानती थी। दूजीको रामायण

और सीता-चरित्र सुनाती। दूजी इन कथाओंको बड़े प्रेमसे सुनती। उज्ज्वल-वस्त्रपर रङ्ग भलीभांति चढ़ता है। जिस दिन उसने सीता-वनवासकी कथा सुनी वह सारे दिन रोती रही। सोई तो सीताकी मूर्ति उसके सामने खड़ी थी। उनके शरीरपर उज्ज्वल साड़ी थी, आंखोंमें आंसू और आंसूकी ओटमें प्यार छिपा हुआ था, दूजी हाथ फैलाये हुए लड़कोंकी भांति उनकी तरफ दौड़ी। माता, मुझको भी साथ लेती चलो। मैं वनमें तुम्हारी सेवा करूंगी। तुम्हारे लिये पुष्प-शय्या बिछाऊंगी। तुमको कमलके थालोंमें फलोंका भोजन कराऊंगी। तुम वहां अकेली एक बुड्ढे साधुके साथ कैसे रहोगी? मैं तुम्हारे चित्तको प्रसन्न रखूंगी। जिस समय हम और तुम वनमें किसी सागरके किनारे घने वृक्षोंकी छायामें बैठेंगी उस समयमें वायुकी धीमी-धीमी लहरोंके साथ गाऊँगी।

सीताने उसको तिरस्कारसे देखकर कहा—"तू कलङ्किनी है, मैं तुझे स्पर्श नहीं कर सकती। तपस्याकी आंचमें अपनेको पवित्र कर।"

दूजीकी आंखें खुल गयीं। उसने निश्चय किया, मैं इस कलङ्कको मिटाऊंगी।

आकाशके नीले समुद्रमें तारागण पानीके बुलबुलेकी भांति मिटते जाते थे। दूजीने उन झिलमिलाते हुए तारोंको देखा। मैं भी उन्हीं तारोंकी तरह सबके नेत्रोंसे छिप जाऊंगी। उन्हीं बुलबुलोंकी भांति मिट जाऊंगी।

विलासियोंकी रात हुई। संयोगी जागे। चक्रियोंने अपने सुहावने राग छेड़े। कैलाशी स्नान करने चली। तब दूजी उठी और जङ्गलकी ओर चल दी। चिड़िया पंख-हीन होनेपर भी सुनहरे पिंजड़ेमें न रह सकी।

११

प्रकाशकी एक धुंधलीसी झलकमें कितनी आशा, कितना बल, कितना आश्वासन है, यह उस मनुष्यसे पूछो जिसे अंधेरेने एक घने वनमें घेर लिया है। प्रकाशकी वह प्रभा उसके लड़खड़ाते हुए पैरोंको शीघ्रगामी बना देती है; उसके शिथिल शरीरमें जान डाल देती है। जहाँ एक-एक पग रखना दुस्तर था वहाँ इस जीवन-प्रकाशको देखते हुए वह मीलों और कोसोंतक प्रेमकी उमंगोंमें उछलता हुआ चला जाता है।

परन्तु दूजीके लिये आशाकी यह प्रभा कहाँ थी? वह भूखी प्यासी, उन्मादकी दशामें चली जाती थी।

शहर पीछे छूटा। बाग और खेत आये। खेतोंमें हरियाली थी बाटिकाओंमें वसन्तकी छटा। मैदान और पर्वत मिले। मैदानोंसे बाँसुरीकी सुरीली रागें आती थीं। पर्वतोंके शिखर मोरोंकी झनकारसे गूंज रहे थे।

दिन चढ़ने लगा। सूर्य उसकी ओर आता हुआ दिखाई पड़ा। कुछ कालतक उसके साथ रहा। कदाचित् रूठेको मानता था। पुनः अपनी राह चला गया। वसन्त ऋतुकी शीतल, मन्द, सुग-

न्धित वायु चलने लगी, खेतोंने कुहरोंकी चादरें ओढ़ लीं, रात हो गई और वृद्धा एक पर्वतके किनारे झाड़ियोंमें उलझती, चट्टानोंसे टकराती चली जाती थी, मानों किसी झीलकी मन्द-मन्द लहरोंमें किनारेपर उगे हुए झाऊके पौधोंका साया थरथरा रहा हो। इस प्रकार अज्ञातकी खोजमें अकेली निर्भय वह गिरती पड़ती चली जाती थी। यहांतक कि भूख प्यास और अधिक श्रमके कारण उसकी शक्तियोंने जवाब दे दिया। वह एक शिला-पर बैठ गई और भयभीत दृष्टिसे इधर-उधर देखने लगी। दाहिने बाँयें घोर अन्धकार था। उच्च पर्वतशिखाओंपर तारे जगमगा रहे थे। सामने एक टीला मार्ग रोके खड़ा था और समीप ही किसी जल-धाराकी दबी हुई सायँ-सायँकी आवाज सुनाई देती थी।

१२

वृद्धा थककर चूर हो गयी थी। पर उसे नींद न आयी। सर्दीसे कलेजा काँप रहा था। वायुके निर्दयी झोंके लेशमात्र भी चैन न लेने देते थे। कभी कभी एक क्षणके लिये आँखें झपक जातीं और फिर चौंक पड़ती। रात्रि ज्यों त्यों व्यतीत हुई। सवेरा हुआ। चट्टानसे कुछ दूर एक बड़ा पाकरका वृक्ष था, जिसकी जड़ें सूखे पत्थरोंसे चिमटकर यों रस खींचती थीं जैसे कोई महाजन दीन असामियोंको बांधकर उनसे ब्याजके रुपये वसूल करता है। इस वृक्षके सामने कई छोटी-छोटी चट्टानोंने

मिलकर एक कोठरीकी आकृति बना रखी थी। दाहिनी ओर लगभग दो सौ गजकी दूरीपर नीचेकी ओर पयस्विनी नदी चट्टानों और पाषाण-शिलाओंसे उलझती, घूमती-घामती बह रही थी, जैसे कोई दृढ़प्रतिज्ञ मनुष्य बाधाओंका ध्यान न कर अपने इष्ट-साधन-के मार्गपर बढ़ता चला जाता है। नदीके किनारे साधु-प्रकृति बगुले चुपचाप मौन-व्रत धारण किये हुए बैठे थे। संतोषी जल-पक्षी पानीमें तैर रहे थे। लोभी टिटिहिरियां नदीपर मंडराती थीं और रह-रहकर मछलियोंकी खोजमें टूटती थीं। खिलाड़ी मैने निःशङ्क अपने परोंको खुजला खुजला स्नान कर रहे थे। और चतुर कौए झुण्डके झुण्ड भोजन-सम्बंधी प्रश्नको हल कर रहे थे। एक वृक्षके नीचे मोरोंकी सभा सुसज्जित थी और वृक्षोंकी शाखाओं-पर कबूतर आनन्द कर रहे थे। एक दूसरे वृक्षपर महाशय काग एवं श्रीमान् पं० नीलकण्ठजी घोर-शास्त्रार्थमें प्रवृत्त थे। महाशय कागने छेड़नेहीके लिये पण्डितजीके निवासस्थानकी ओर दृष्टि डाली थी। इसपर पण्डितजी इतने क्रोधित हुए कि महाशय कागके पीछे पड़ गये। महाशय काग अपनी स्वाभाविक बुद्धि-मत्ताको काममें लाकर सहजहीमें भाग खड़े हुए। श्रीमान् पंडितजी बुरा भला कहते हुए महाशय कागके पीछे पड़े। किसी भांति महाशयजीकी सर्वज्ञताने उनकी जान बचायी।

थोड़ी देरमें जङ्गली नील गायोंका एक झुण्ड आया। किसीने पानी पीया, किसीने सूंघकर छोड़ दिया। दो, चार युवावस्थाके मतवाले हिरण आपसमें सींगें मिलाने लगे। फिर एक काला

हिरण अभिमानभरे नेत्रोंसे देखता एक-एक डग पग उठाता कुछ मृगनयनियोंको साथ लिये नदीके किनारे आया। बच्चे थोड़ी दूरपर खेलते हुए चले आते थे। कुछ और हटकर एक वृक्षके नीचे बन्दरोंने अपने डेरे डाल रखे थे। बच्चे क्रीड़ा करते थे। पुरुषोंमें छेड़छाड़ हो रही थी। रमणियां सानन्द बैठी हुई एक दूसरोंके बालोंसे जूयें निकालती थीं और उन्हें अपने मुंहमें रखती जाती थीं। दूबी एक चट्टानपर अर्द्धनिद्राकी दशामें बैठी हुई यह दृश्य देख रही थी। घामके कारण निद्रा आ गयी। नेत्रपट बन्द हो गये।

१३

प्रकृतिकी इसी रङ्गभूमिमें दूबीने अपने चौदह वर्ष व्यतीत किये। वह प्रतिदिन प्रातःकाल इसी नदीके किनारे शिलाओंपर बैठी यही दृश्य देखती और लहरोंकी कारुणिक ध्वनि सुनती। इसी नदीकी भांति उसके मनमें लहरें उठतीं; जो कभी धैर्य्य और साहसके किनारोंपर चढ़कर नेत्रों द्वारा बह निकलतीं। उसे मालूम होता कि वनके वृक्ष तथा जीव-जन्तु सब मेरी ओर व्यंग-पूर्ण नेत्रोंसे देख रहे हैं। नदी भी उसे देखकर क्रोधसे मुंहमें फेन भर लेती। जब यहां बैठे-बैठे उसका जी ऊब जाता तो वह पर्वतपर चढ़ जाती और दूरतक देखती। पर्वतोंके बीचमें कहीं-कहीं मिट्टीके घरौनेंकी भांति छोटे-छोटे मकान दिखाई

देते, कहीं लहलहाती हुई हरियाली। सारा दृश्य एक नवीन वाटिकाकी भांति मनोरम था। उसके दिलमें एक तीव्र इच्छा होती कि उड़कर उन चोटियोंपर जा पहुंचती। नदीके किनारे या पाकरकी घनी छायामें बैठी हुई घंटों सोचा करती, बचपनके वे दिन याद आ जाते जब वह सहेलियोंके गलेमें बाहें डालकर महुए चुनने जाया करती थी। फिर गुड़ियोंके ब्याहका स्मरण हो आता, पुनः अपनी प्यारी मातृभूमिकी पनघट आंखोंमें फिर जाती। आज भी वहां वही भीड़ होगी, वही हास्य, चहल-पहल। पुनः अपना घर ध्यानमें आता और वह गाय स्मरण आती जो कि उसको देखकर हुंकरती हुई अपने प्रेमका परिचय देती थी। मन्नू स्मरण हो आता जो उसके पीछे-पीछे छलांगें मारता हुआ खेतोंमें जाया करता; जो बर्तन धोते समय बारम्बार बर्तनोंमें मुंह डालता। तब ललनसिंह नेत्रोंके सामने आकर खड़े हो जाते थे। होठोंपर वही मुसकराहट, नेत्रोंमें वही चंचलता। तब वह उठ खड़ी होती और अपने मनको दूसरी ओर ले जानेकी चेष्टा करती।

दिन गुजरते थे किन्तु बहुत धीरे-धीरे। वसंत आया। सेमलकी लालिमा एवं कचनारकी ऊदी पुष्प-माला अपनी यौवन-छटा दिखलाने लगी। मकोयके फल महंके। गर्मीका प्रारम्भ हुआ—प्रातःकाल समीरके झोंके, दोपहरकी लू जलती हुई लपट। डालियां फूलोंसे लदीं। फिर वह समय आया कि जब दिनको न सुख था और न रातको नींद। दिन तड़पता था, रात जलती

थी, नदियां बधिकोंके हृदयोंकी भांति सूख गयीं। वनके पशु मध्याह्नकी धूपमें प्यासके कारण जिह्वा निकाले पानीकी खोजमें इधर-उधर दौड़ते फिरते थे। जिस प्रकार द्वेषसे भरे हुए दिल तनिक तनिकसी बातोंपर जल उठते हैं उसी प्रकार गर्मीसे जलते हुए वन-वृक्ष कभी-कभी वायुके झोकोंसे परस्पर रगड़ खाकर जल उठते थे। ज्वाला ऊंची उठती थी, मानो अग्निदेवने तारागणोंपर धावा मारा है। वनमें एक भगदड़सी पड़ जाती। फिर आंधी और तूफानके दिन आये। वायुकी देवी गरजती हुई आती। पृथ्वी और आकाश थर्रा उठते, सूर्य छिप जाता, पर्वत भी कांप उठते थे। पुनः वर्षा ऋतुका जन्म हुआ। वर्षाकी झड़ी लगी। वन लहराये, नदियोंने पुनः-पुनः अपने सुरीले राग छेड़े। पर्वतोंके कलेजे ठण्डे हुए। सूखे मैदानोंमें हरियाली छायी। सारसकी ध्वनि पर्वतोंमें गूंजने लगी। आषाढ़ मासमें बाल्यावस्थाका अल्हड़पन था। श्रावणमें युवावस्थाके पग बढ़े, फुहारें पड़ने लगीं। भादों कमाईके दिन थे, जिसने भीलोंके कोष भर दिये। पर्वतोंको धनाढ्य कर दिया। अन्तमें बुढ़ापा आया। कांसके उज्ज्वल बाल लहराने लगे। जाड़ा आ पहुंचा।

१४

इस प्रकार ऋतुका परिवर्तन हुआ। दिन और महीने गुजरे। वर्ष आये और गये। किन्तु दूजीने विन्ध्याचलके उस किनारे-

को न छोड़ा। गर्मियोंके भयानक दिन और वर्षाकी भयावनी रातें सब उसी स्थानपर काट दीं। क्या भोजन करती थी, क्या पहनती थी, इसकी चर्चा व्यर्थ है। मनपर चाहे जो बीते किन्तु भूख और ऋतु-सम्बन्धी कष्टका निवारण करना ही पड़ता है। प्रकृतिकी थाल सजी हुई थी। कभी बनबेरों और शरीफोंके पकवान थे, कभी तेंदू, कभी मकोय और कभी रामका नाम। वस्त्रोंके लिये चित्रकूटके मेलेमें साथमें केवल एक बार जाती। मोरोंकेपर, हिरणोंकी सींग, बन-औषधियां महंगे दामों बिकती। कपड़ा भी आया, बर्तन भी आये। यहांतक कि दीपक जैसी विलास वस्तु भी एकत्र हो गयी। एक छोटीसी गृहस्थी जम गयी।

दूजीने निराशाकी दशामें संसारसे विमुख होकर जीवन व्यतीत करना जितना सहज समझा था उससे कहीं कठिन मालूम हुआ। आत्मानुरागमें निमग्न बैरागी तो वनमें रह सकता है, परन्तु एक स्त्री जिसकी अवस्था हँसने-खेलनेमें व्यतीत हुई हो बिना किसी नौकाके सहारे बिराग-सागरको किस प्रकार पार करनेमें समर्थ हो सकती है? दो वर्षके पश्चात् दूजीको एक-एक दिन वहां वर्षकासा प्रतीत होने लगा। कालक्षेप करना दुस्तर हो गया। घरकी सुधि एक क्षण भी विस्मृत न होती। कभी-कभी वह इतनी व्यग्र होती कि क्षणमात्रके लिये अपमानका भी भय न रहता। वह दृढ़ विचार करके उन पहाड़ियोंके बीच शीघ्रतासे पग बढ़ाती घरकी ओर चलती मानों कोई अपराधी

कारागारसे भागा जा रहा हो। किन्तु पहाड़ियोंकी सीमाके बाहर आते ही उसके पग स्वयं रुक जाते। वह आगे न बढ़ सकती। तब वह एक ठंढी सांस भरकर एक शिलापर बैठ जाती और फूट-फूटकर रोती। फिर वही भयानक रात्रि और वही सघन कुञ्ज, वही नदीकी भयावनी गरज और शृंगालोंकी वही विकराल ध्वनि!

"ज्यों-ज्यों भीजै कामरी, त्यों-त्यों भारी होय" भाग्यको धिक्कारते-धिक्कारते उसने ललनसिंहको धिक्कारना आरम्भ किया। एकान्तवासने उसमें आलोचना और विवेचनाकी शक्ति पैदा कर दी। मैं क्यों इस बनमें मुंह छिपाये दुःखके दिन व्यतीत कर रही हूं? यह उसी निर्दयी ललनसिंहकी लगायी आग है। कैसे सुखसे रहती थी! इसीने आकर मेरे झोंपड़ेमें आग लगा दी। मैं अबोध और अनजान थी। उसने जान-बूझकर मेरा जीवन भ्रष्ट कर डाला। उसने मुझे अपने आमोदका केवल एक खिलौना बनाया था। यदि उसे मेरा प्रेम होता तो क्या वह मुझसे विवाह न कर लेता? वह भी तो बुन्देला ठाकुर था। हाय! मैं कैसी अज्ञान थी। अपने पैरोंमें आप कुल्हाड़ी मारी। इस प्रकार मनसे बातें करते-करते ललनसिंहकी मूर्त्ति उसके नेत्रोंके सम्मुख आ जाती तो वह घृणासे मुंह फेर लेती। वह मुसकराहट जो उसका मन हर लिया करती थी, वह प्रेममय मृदु-भाषण जो उसके नसोंमें सनसनाहट पैदा कर देता था, क्रीड़ामय हाव-भाव जिनपर वह मतवाली हो जाती थी, अब उसे

एक दूसरे ही रूपमें दृष्टिगोचर होते। उनमें अब प्रेमकी झलक न थी। वह अब कपट-प्रेम और काम-तृष्णाके गाढ़े रंगमें रंगे हुए दिखाई देते थे। वह प्रेमका कच्चा घरौंदा, जिसमें वह गुड़िया बनी बैठी थी, वायुके झोंकेमें संभला, परन्तु जलके प्रबल प्रवाहमें न संभल सका। अब वह अभागी गुड़िया निर्दयी चट्टानोंपर पटक दी गयी है कि रो-रोकर जीवनके दिन काटे। उन गुड़ियोंकी भांति जो गोटे-पट्टे और आभूषणोंसे सजी हुई, मखमली पेटारेमें भोग-विलास करनेके पश्चात्, नदी और तालाब-में बहा दी जाती हैं, डूबनेके लिये और तरंगोंमें थपेड़े खानेके लिये।

ललनसिंहकी तरफसे फिरते ही दूजीका मन एक अधीरताके साथ भाइयोंकी ओर मुड़ा। मैं अपने साथ उन बेचारोंको व्यर्थ ले डूबी। मेरे सिरपर उस घड़ी न जाने कौनसा भूत सवार था। उन बेचारोंने तो जो कुछ किया मेरी ही मर्य्यादा रखनेके लिये किया। मैं तो उन्मत्त हो रही थी। समझाने-बुझानेसे क्या काम चलता और समझाना-बुझाना तो स्त्रियोंका काम है। मर्दोंका समझाना तो उसी ढंगका होना चाहिये, और होता ही है। नहीं मालूम उन बेचारोंपर क्या बीती! क्या मैं उन्हें फिर कभी देखूंगी। यह विचारते-विचारते भाइयोंकी वह मूर्त्ति उसके नेत्रोंमें फिर जाती, जो उसने अन्तिम बार देखी थी, जब वह उस देशको जा रहे थे जहांसे लौटकर फिर आना मानों मृत्युके मुखसे निकल आना है—वह रक्त-वर्ण नेत्र, वह अभिमान-

से भरी हुई चाल, वह फिरे हुए नेत्र जो एक बार उसकी ओर उठ गये थे। आह उनमें क्रोध या द्वेष न था, केवल क्षमा थी। वह मुझपर क्रोध क्या करते! फिर अदालतके इजलासका चित्र नेत्रोंके सामने खिंच जाता। भाइयोंके वह तीवर, उनकी वह आखें, जो क्षणमात्रके लिये क्रोधाग्निसे फैल गई थीं, फिर उनकी प्यारकी बातें, उनका प्रेम स्मरण आता। पुनः वे दिन याद आते जब वह उनकी गोदमें खेलती थी, जब वह उनकी उंगली पकड़कर खेतोंको जाया करती थी। हाय! क्या वह दिन भी आवेंगे कि मैं उनको पुनः देखूंगी।

एक दिन वह था कि दूजी अपने भाइयोंके रक्तकी प्यासी थी, निदान एक दिन आया कि वह पयस्विनी नदीके तटपर कङ्कड़ियों द्वारा दिनोंकी गणना करती थी। एक कृपण जिस सावधानीसे रुपयोंको गिन-गिनकर इकट्ठा करता है उसी साव-धानीसे दूजी इन कङ्कड़ियोंको गिन-गिनकर इकट्ठा करती थी। नित्य सन्ध्याकाल वह इस ढेरमें पत्थरका एक टुकड़ा और रख देती तो उसे क्षणमात्रके लिये मानसिक सुख प्राप्त होता। इन कङ्कड़ियोंका ढेर अब उसका जीवन-धन था। दिनमें अनेकों बार इन टुकड़ोंको देखती और गिनती। असहाय पक्षी पत्थरके ढेरोंसे आशाके खोंते बनाता था।

यदि किसीको चिन्ता और शोककी मूर्ति देखनी हो तो वह पयस्विनी नदीके तटपर प्रति दिन सायंकालको देख पड़ती है। डूबते हुए सूर्यकी किरणोंकी भांति उसका मुख-मण्डल पीला है। वह अपने दुःखमय विचारोंमें डूबी हुई, तरङ्गोंकी ओर दृष्टि लगाये बैठी रहती है। यह तरंगें इतनी शीघ्रतासे कहां जा रही हैं? मुझे भी अपने साथ क्यों नहीं ले जाती? क्या मेरे लिये वहां भी स्थान नहीं है? कदाचित् शोक-क्रन्दनमें यह भी मेरी सङ्गिनी हैं! तरंगोंकी ओर देखते देखते उसे ऐसा ज्ञात होता है कि मानो वह स्थिर हो गईं और मैं शीघ्रतासे बही जा रही हूं तब वह चौंक पड़ती है और अँधेरी शिलाओंके बीच मार्ग खोजती हुई फिर अपने शोक-स्थलपर आ जाती है।

इसी प्रकार दूजीने अपने दुःखके दिन व्यतीत किये। तीस-तीस ढेलोंके बारह ढेर बन गये; तब उसने उन्हें एक स्थानपर इकट्ठा कर दिया। वह आशाका मन्दिर उसी हार्दिक अनुरागसे बनता रहा जो किसी भक्तको अपने इष्ट-देवके साथ होता है। रात्रिके बारह घण्टे बीत गये। पूर्वकी ओर प्रातःकालका प्रकाश दिखाई देने लगा। मिलापका समय निकट आया। इच्छारूपी अग्निकी लपट बढ़ी। दूजी उन ढेरोंको बार-बार गिनती, महीनों-के दिनोंकी गणना करती। कदाचित् एक दिन भी कम हो जाय। हाय, आजकल उसके मनकी वह दशा थी जो प्रातःकाल सूर्यके सुनहरे प्रकाशमें हलकोरे लेनेवाले सागरकी होती है जिस-में वायुकी तरंगोंसे मुसकराता हुआ कमल झूलता है।

१५

आज दूजी इन पर्वतों और वनोंसे विदा होती है। वह दिन

आ पहुंचा जिसकी राह देखते-देखते एक पूरा युग बीत गया। आज चौदह वर्षके पश्चात् उसकी प्यासी अलकें नदीमें लहरा रही हैं। बरगदकी जटाएं नागिन बन गई हैं।

उस सूनसान वनसे उसका चित्त कितना दुखित था। किन्तु आज उससे पृथक् होते हुए दूजीके नेत्र भर भर आते हैं। जिस पाकरकी छायामें उसने दुःखके दिन बिताये, जिस गुफामें उसने रो-रोकर रातें काटीं उसे छोड़ते आज शोक हो रहा है। यह दुःखके साथी हैं।

सूर्य्यकी किरणें दूजीको आशाओंकी भांति कुहरोंकी घटाओं-को हटाती चली आती थीं। उसने अपने दुःखके मित्रोंको अब पूर्ण नेत्रोंसे देखा। पुनः ढेरोंके पास गई, जो उसके बारह वर्षकी तपस्याके स्मारक चिह्न थे। उन्हें एक-एक कर चूमा, मानों वह देवीजीके चबूतरे हैं। तब वह रोती हुई चली जैसे लड़कियां ससुरालको चलती हैं।

सन्ध्या समय उसने शहरमें प्रवेश किया और पता लगाते हुए कैलाशीके घरपर आई। घर सूना पड़ा था। तब यह विनय-कृष्ण बघेलाका घर पूछते उनके बंगलेपर आई। कुंवर महाशय टहल कर आये ही थे कि उसे खड़ी देखा। पास आये। उसके मुखपर घूंघट था। दूजीने कहा,—"महाराज! मैं एक अनाथ दुखिया हूं।" कुंवर साहबने आश्चर्यसे पूछा—"तुम दूजी हो! तुम इतने वर्षों कहां रही?"

कुंवर साहबके प्रेम भावने घूंघट और बढ़ा दिये। इन्हें मेरा

नाम स्मरण है, यह सोचकर दूजीका कलेजा धड़कने लगा। लज्जासे सिर नीचे झुक गया। लजाती हुई बोली, "जिसका कोई हितू नहीं है उसका वनके सिवाय अन्यत्र कहां ठिकाना है। मैं भी वनोंमें रही। पयस्विनी नदीके किनारे एक गुफामें पड़ी रही।"

कुंवर साहब विस्मित हो गये। चौदह वर्ष! और नदीके किनारे गुफामें! क्या कोई संन्यासी इससे अधिक त्याग कर सकता है? वह आश्चर्यसे कुछ न बोल सके।

दूजी उन्हें चुपचाप देखकर बोली—"मैं कैलाशीके घरसे सीधे पर्वतोंमें चली गई और वहीं इतने दिन व्यतीत किये। चौदह वर्ष पूरे हो गये। जिन भाइयोंकी गर्दनपर छुरी चलाई उनके छूटनेके दिन अब आये हैं। नारायण उन्हें कुशलपूर्वक लावें। मैं चाहती हूं कि उनके दर्शन करूं और उनकी ओरसे मेरे दिलमें जो इच्छायें हैं पूर्ण हो जायं। कुंवर विनयकृष्ण बोले—"तुम्हारा हिसाब बहुत ठीक है। मेरे पास आज कलकत्तेसे सरकारी पत्र आया है कि दोनों भाई चौदह तारीखको कलकत्ता पहुंचेंगे। उनके सम्बन्धियोंको सूचना दी जाय। यहां कदा-चित् दो-तीन दिनमें आ जायंगे। मैं सोच ही रहा था कि सूचना किसे दूं। दूजीने विनयपूर्वक कहा—"मेरा जी चाहता है कि वे जहाजपरसे उतरें तो मैं उनके पैरोंपर माथा नवाऊं, उसके पश्चात् मुझे संसारमें कोई अभिलाषा न रहेगी। इसी लालसाने मुझे इतने दिनोंतक जिलाया है। नहीं तो मैं आपके सम्मुख कदापि न खड़ी होती।"

कुंवर विनयसिंह गम्भीर स्वभावके मनुष्य थे। दूजीके आन्तरिक रहस्य उनके चित्तपर एक गहरा प्रभाव डालते जाते थे। जब सारी अदालत दूजीपर हंसती थी तब उन्हें उसके साथ सहानुभूति थी और आज उसका वृतान्त सुनकर वे इस ग्रामीण स्त्रीके भक्त हो गये। बोले—"यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं स्वयं तुम्हें कलकत्ता पहुंचा दूंगा। तुमने उनसे मिलनेकी जो रीति सोची है उससे उत्तम ध्यानमें नहीं आ सकती। परन्तु तुम खड़ी हो और मैं बैठा हूं, यह अच्छा नहीं लगता। दूजी, मैं बनावट नहीं करता, जिसमें इतना त्याग और संकल्प हो वह यदि पुरुष है तो देवता है, स्त्री है तो देवी है। जब मैंने तुम्हें पहले देखा उसी समय मैंने समझ लिया था कि तुम साधारण स्त्री नहीं हो। जब तुम कैलाशीके घरसे चली गई तो सब लोग यही कहते थे कि तुम जानपर खेल गई। परन्तु मेरा मन कहता था कि तुम जीवित हो। नेत्रोंसे पृथक् होकर भी तुम मेरे ध्यानसे बाहर न हो सकी। मैंने वर्षों तुम्हारी खोज की, मगर तुम ऐसे खोहमें जा छिपी थी कि तुम्हारा कुछ पता न चला।"

इन बातोंमें कितना अनुराग था! दूजीको रोमाञ्च हो गया। हृदय बल्लियों उछलने लगा। उस समय उसका मन चाहता था कि इनके पैरोंपर सिर रख दूं। कैलाशीने एक बार जो बात उससे कही थी, वह बात उसे उस समय स्मरण आई। उसने भोलेपनसे पूछा, "क्या आपहीके कहनेसे कैलाशीने मुझे अपने घरमें रख लिया था?" कुंवर साहब लज्जित होकर बोले, "मैं इसका उत्तर कुछ न दूंगा।"

रातको जब दूजी एक ब्राह्मणीके घरमें नर्म बिछावनपर लेटी हुई थी तो उसके मनकी वह दशा हो रही थी जो आश्विन मासके आकाशकी होती है, एक ओर चन्द्र-प्रकाश, दूसरी ओर घनी घटा और तीसरी ओर झिलमिलाते हुए तारे।

१६

प्रातःकालका समय था। गङ्गा नामी स्टीमर बंगालकी खाड़ीमें साभिमान गर्दन उठाये समुद्रकी लहरोंको पैरोंसे कुचलता हुगलीकी बन्दरगाहकी ओर चला आता था। डेढ़ सहस्रसे अधिक आदमी उसकी गोदमें थे। अधिकतर व्यापारी थे। कुछ वैज्ञानिक तत्वोंके अनुरागी, कुछ भ्रमण करनेवाले और कुछ ऐसे हिन्दुस्तानी मजदूर जिनको अपनी मातृभूमि आकर्षित कर रही थी। उन्हींमें दोनों भाई ज्ञानसिंह और गुमानसिंह एक कोनेमें बैठे निराशाकी दृष्टिसे किनारेकी ओर देख रहे थे। दोनों हड्डियोंके दो ढांचे थे, उन्हें पहचानना कठिन था।

जहाज घाटपर पहुंचा। यात्रियोंके मित्र और परिचितजन किनारेपर स्वागत करनेके लिये अधीर हो रहे थे। जहाजपरसे उतरते ही प्रेमकी बाढ़ आ गई। मित्रगण परस्पर हाथ मिलाते थे। उनके नेत्र प्रेमाश्रुसे परिपूर्ण थे। यह दोनों भाई शनैः शनैः जहाजसे उतरे, मानों किसीने ढकेल कर उतार दिया। उनके लिये जहाज-

के रहते और मातृभूमिमें कुछ अन्तर न था। आये नहीं बल्कि लाये गये। चिरकालके कष्ट और शोकने जीवनका ज्ञान भी शेष न छोड़ा था। साहसका लेशमात्र भी न था। इच्छाओंका अन्त हो चुका था। वह तटपर खड़े विस्मित दृष्टिसे सामने देखते थे। कहां जायं ? उनके लिये इस संसार-क्षेत्रमें कोई स्थान न दिखाई देता था।

तब दूजी उस भीड़मेंसे निकलकर आती दिखाई दी। उसने भाइयोंको खड़े देखा। तब जिस भांति जल खालकी ओर गिरता है उसी प्रकार अधीरताकी उमंगमें रोती हुई वह उनके चरणोंमें चिपट गई। दाहिने हाथमें शानसिंहके चरण थे बांयें हाथमें गुमानसिंहके, और नेत्रोंसे अश्रुधारायें प्रवाहित थीं मानों दो सूखे वृक्षोंकी जड़ोंमें एक मुरझाई हुई बेल चिमटी हुई है या दो संन्यासी माया और मोहकी बेड़ीमें बांधे खड़े हैं। भाइयोंके नेत्रोंसे भी आंसू बहने लगे। उनके मुखमण्डल बादलोंमेंसे निकलनेवाले तारोंकी भांति प्रकाशित हो गये। वह दोनों पृथ्वीपर बैठ गये और तीनों भाई बहिन परस्पर गले मिलाकर बिलख-बिलख रोये। वह गहरी खाड़ी जो भाइयों और बहिनके बीचमें थी अश्रुधाराओंसे परिपूर्ण हो गई। आज चौदह वर्षके पश्चात् भाई और बहिनमें मिलाप हुआ और वह घाव जिसने मांसको मांससे रक्तको रक्तसे बिलग कर दिया था परिपूर्ण हो गया और वह उस मरहमका काम था जिससे अधिक लाभकारी और कोई मरहम नहीं होता, जो मनके मैलको साफ करता है, जो दुःखको भुलानेवाला और हृदयकी दाहको शान्त करनेवाला है, जो व्यंगके विषैले घावोंको भर देता है। वह कालका मरहम है।

दोनों भाई घरको लौटे। पट्टीदारोंके स्वप्न भंग हो गये। हित मित्र इकट्ठे हुए। ब्रह्मभोजका दिन निश्चित हुआ। पूड़ियां पकने लगीं, घीकी सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणोंके लिये, तेलकी पासी चमारोंके लिये। कालेपानीका पाप इसी घीके साथ भस्म हो गया।

दूजी भी कलकत्तेसे भाइयोंके साथ चली। प्रयागतक आई। कुंवर विनयसिंह भी उनके साथ थे। भाइयोंसे कुंवर साहबने दूजीके सम्बन्धमें कुछ बातें कीं। उनकी भनक दूजीके कानोंमें पड़ी। प्रयागमें दोनों भाई बहिन रुक गये, त्रिवेणीमें स्नान करते चले। कुंवर विनयकृष्ण अपने ध्यानमें सब कुछ ठीक करके मन प्रसन्न करनेवाली आशाओंका स्वप्न देखते हुए चले गये, किन्तु फिर वहांसे दूजीका पता न चला। मालूम नहीं क्या हुई, कहां चली गई। कदाचित् गङ्गाजीने उसे अपनी गोदमें लेकर सदाके दुःखसे मुक्त कर दिया। भाई बहुत रोये पीटे किन्तु क्या करते। जिस स्थानपर दूजीने अपने बनवासके चौदह वर्ष व्यतीत किये थे, वहां दोनों भाई प्रति वर्ष जाते हैं और उन पत्थरोंके ढेरोंसे चिमट-चिमट कर रोते हैं।

कुंवर साहबने भी पेंशन ली। अब चित्रकूटमें रहते हैं।

दार्शनिक विचारोंके पुरुष थे, जिस प्रेमकी खोज थी, वह न मिला। एक बार कुछ आशा दिखाई दी थी, जो चौदह वर्ष एक विचारके रूपमें स्थित रही। एकाएक आशाकी धुंधली झलक भी एक बार झिलमिलाते हुए दीपककी भांति खसकर सदाके लिये अदृश्य हो गई।

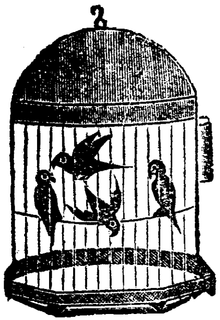

बूढ़ी काकी

बुढ़ापा बहुधा बचपनका पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकीमें जिह्वास्वादके सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टोंकी ओर आकर्षित करनेका रोनेके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा हो। समस्त इन्द्रियां, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वीपर पड़ी रहतीं और जब घरवाले कोई बात उनकी रक्षाके प्रतिकूल करते, या भोजनका समय टल जाता, उसका परिमाण पूर्ण न होता, अथवा बाजारसे कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो ये रोने लगती थीं। उनका रोना-सिसकना साधारण रोना न था, वह गला फाड़-फाड़कर रोती थीं।

उनके पतिदेवको स्वर्ग सिधारे कालान्तर हो चुका था। बेटे तरुण हो-होकर चल बसे थे। अब एक भतीजेके सिवाय और कोई न था। उसी भतीजेके नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी। भतीजेने सम्पत्ति लिखाते समय तो खूब लम्बे-चौड़े वादे किये, परन्तु वे सब वादे केवल कुली डिपोके दलालोंके दिखाये हुए सब्ज बाग थे। यद्यपि उस सम्पत्तिकी वार्षिक आय डेढ़-दो सौ रुपयेसे कम न थी तथापि बूढ़ी काकीको पेटभर भोजन भी कठिनाईसे मिलता था। इसमें उनके भतीजे पण्डित बुद्धिरामका अपराध था, अथवा उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती रूपाका, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभावके सज्जन थे, किन्तु

उसी समयतक जबतक कि उनके कोषपर कोई आंच न आये। रूपा स्वभावसे तीव्र थी सही, पर ईश्वरसे डरती थी। अतएव बूढ़ी काकीको उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिरामकी भलमानसहत।

बुद्धिरामको कभी-कभी अपने अत्याचारका खेद होता था। विचारते कि इसी सम्पत्तिके कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूं। यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूतिसे स्थिति-में सुधार हो सकता तो उन्हें कदाचित कोई आपत्ति न होती, परन्तु विशेष व्ययका भय उनकी सचेष्टाको दबाये रखता था। यहाँतक कि यदि द्वारपर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं तो वह आग हो जाते और घरमें आकर उन्हें जोरसे डांटते। लड़कोंको बुड्ढोंसे स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता-पिताका यह रंग देखते तो बूढ़ी काकीको और भी सताया करते। कोई चुटकी काटकर भागता, कोई उनपर पानीकी कुल्ली कर देता। काकी चीख मारकर रोतीं, परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खानेके लिये रोती हैं; अतएव उनके सन्ताप और आर्त्तनादपर कोई ध्यान नहीं देता था। हां, काकी कभी क्रोधातुर होकर बच्चोंको गालियाँ देने लगतीं तो रूपा घटनास्थलपर अवश्य आ पहुंचती। इस भयसे काकी अपनी जिह्वा-कृपाणका कदाचित् ही प्रयोग करती थीं, यद्यपि उपद्रव-शांतिका यह उपाय रोनेसे कहीं अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवारमें यदि काकीसे किसीको अनुराग था, तो वह बुद्धिरामकी छोटी लड़की लाडली थी। लाडली अपने दोनों भाइयोंके भयसे अपने हिस्सेकी मिठाई चबेना बूढ़ी काकीके पास बैठकर खाया करती थी। यही उसका रक्षागार था और यद्यपि काकीकी शरण उनकी लोलुपताके कारण बहुत महंगी पड़ती थी, तथापि भाइयोंके अन्यायसे कहीं सुलभ थी। इसी स्वार्था-नुकूलताने उन दोनोंमें प्रेम और सहानुभूतिका आरोपण कर दिया था।

रातका समय था। बुद्धिरामके द्वारपर सहनाई बज रही थी और गांवके बच्चोंका झुंड विस्मयपूर्ण नेत्रोंसे गानेका रसा-स्वादन कर रहा था। चारपाइयोंपर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयोंसे मुक्कियां लगवा रहे थे। समीप ही खड़ा हुआ भाट बिरदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानोंके "वाह, वाह" पर ऐसा खुश हो रहा था मानों इस वाह-वाहका यथार्थमें वही अधिकारी है। दो-एक अंगरेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारोंसे उदासीन थे। वे इस गँवार-मंडलीमें बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठाके प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिरामके बड़े लड़के सुखरामका तिलक आया है। यह उसीका उत्सव है। घरके भीतर स्त्रियां गा रही थीं और रूपा मेहमानोंके लिये भोजनके प्रबन्धमें व्यस्त थी। भट्टियोंपर कड़ाह चढ़े थे। एकमें पूड़ियां-कचौरियां निकल रही थीं, दूसरेमें अन्य पकवान बनते थे। एक बड़े हंडेमें मसालेदार तरकारी पक

रही थी। घी और मसालेकी क्षुधावर्द्धक सुगंधि चारों ओर फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरीमें शोकमय विचारकी भांति बैठी हुई थीं। यह स्वाद-मिश्रित सुगंधि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन-ही-मन विचार कर रही थीं, सम्भवतः मुझे पूड़ियां न मिलेंगी। इतनी देर हो गयी, कोई भोजन लेकर नहीं आया, मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके। मेरे लिये कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया; परन्तु अशकुनके भयसे वह रो न सकीं।

"आहा! कैसी सुगंधि है! अब मुझे कौन पूछता है? जब रोटियोंहीके लाले पड़े हैं तब ऐसे भाग्य कहां कि भरपेट पूड़ियां मिलें?"—यह विचार कर उन्हें रोना आया, कलेजेमें एक हूक सी उठने लगी। परन्तु रूपाके भयसे उन्होंने फिर भी मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देरतक इन्हीं दुःखदायक विचारोंमें डूबी रहीं। घी और मसालोंकी सुगंधि रह-रहकर मनको आपेसे बाहर किये देती थी। मुंहमें पानी भर-भर आता था। पूड़ियोंका स्वाद स्मरण करके हृदयमें गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूं; आज लाडली बेटी भी नहीं आयी। दोनों छोकड़े सदा दिक किया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकीकी कल्पनामें पूड़ियोंकी तस्वीर नाचने लगी।

खूब लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम होंगी। रूपाने भली-भांति मोयन दिया होगा। कचौरियोंमें अजवाइन और इलायचीकी महक आ रही होगी। एक पूरी मिलती तो ज़रा हाथमें लेकर देखती। क्यों न चलकर कड़ाहके सामने ही बैठूं। पूड़ियां छन-छनकर तैरती होंगी। कड़ाहसे गरम-गरम निकालकर थालमें रखी जाती होंगी। फूल हम घरमें भी सूंघ सकते हैं; परन्तु वाटिकामें कुछ और बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ू बैठकर हाथोंके बल सरकती हुई बड़ी कठिनाईसे चौखटसे उतरीं और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाहके पास जा बैठीं। यहां आनेपर उन्हें उतना ही धैर्य्य हुआ जितना भूखे कुत्तेको खानेवालेके सम्मुख बैठनेमें होता है।

रूपा उस समय कार्यभारसे उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठेमें जाती, कभी उस कोठेमें, कभी कड़ाहके पास आती, कभी भंडारमें जाती। किसीने बाहरसे आकर कहा,—महाराज ठंडई मांग रहे हैं। ठंडई देने लगी। इतनेमें फिर किसीने आकर कहा—भाट आया है, उसे कुछ दे दो। भाटके लिये सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमीने आकर पूछा—"अभी भोजन तैयार होनेमें कितना विलम्ब है? ज़रा ढोल मजीरा उतार दो।" बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुंझलाती थी, कुढ़ती थी, परन्तु क्रोध प्रकट होनेका अवसर न पाती थी। भय होता, कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतनेमें ही उबल पड़ीं। प्याससे स्वयं उसका कंठ सूख रहा था। गर्मीके

मारे फूंकी जाती थी, परन्तु इतना अवकाश भी नहीं था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। यह भी खटका था कि जरा आंख हटो और चीजोंको लूट मचो। इस अवस्थामें उसने बूढ़ी काकीको कड़ाहके पास बैठा देखा तो जल गयी। क्रोध न रुक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई हैं मनमें क्या कहेंगी, पुरुषोंमें लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेढक केचुयेपर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकीपर झपटी और उन्हें दोनों हाथोंसे झिंझोड़कर बोली—ऐसे पेटमें आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरीमें बैठते हुए क्या दम घुटता था? अभी मेहमानोंने नहीं खाया, भगवानको भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छातीपर सवार हो गयीं। जल जाय ऐसी जीभ। दिनभर खाती न होतीं तो न जाने किसकी हांडीमें मुंह डालतीं? गांव देखेगा तो कहेगा कि बुढ़िया भरपेट खानेको नहीं पाती, तब तो इस तरह मुंह बाये फिरती है। डाइन न मरे न मांचा छोड़े। नाम बेचनेपर लगी है। नाक कटवाकर दम लेगी। इतना ठूंसती है, न जाने कहां भस्म हो जाता है। लो! भला चाहती हो तो जाकर कोठरीमें बैठो, जब घरके लोग खाने लगेंगे तब तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसीके मुंहमें पानी न जाय परन्तु तुम्हारी पूजा पहले हो जाय। बूढ़ी काकीने सिर न उठाया, न रोईं, न बोलीं। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरीमें चली गयीं। आघात ऐसा कठोर था, कि हृदय और मस्तिष्ककी सम्पूर्ण

शक्तियां, सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गये थे। नदीमें जब करारका कोई वृहद् खण्ड कटकर गिरता है तो आस-पासका जलसमूह चारों ओरसे उसी स्थानको पूरा करनेके लिये दौड़ता है।

भोजन तैयार हो गया। आंगनमें पत्तल पड़ गये। मेहमान खाने लगे। स्त्रियोंने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानोंके नाई और सेवकगण भी उसी मंडलीके साथ, किन्तु कुछ हटकर, भोजन करने बैठे थे, परन्तु सभ्यतानुसार जबतक सब-के-सब खा न चुके कोई उठ नहीं सकता था। दो-एक मेहमान जो कुछ पढ़े-लिखे थे सेवकोंके दीर्घाहारपर झुंझला रहे थे। वे इस बन्धनको व्यर्थ और बे-सिर-पैरकी बात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरीमें जाकर पश्चात्ताप कर रही थीं कि मैं कहां-से-कहां गयी। उन्हें रूपापर क्रोध नहीं था। अपनी जल्दबाजीपर दुःख था। सच ही तो है जबतक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे घरवाले कैसे खायेंगे। मुझसे इतनी देर भी नहीं रहा गया। सबके सामने पानी उतर गया। अब जबतक कोई बुलाने न आयेगा न जाऊंगी।

मन-ही-मन इसी प्रकार विचार कर वह बुलावेकी प्रतीक्षा करने लगीं। परन्तु घीका रुचिकर सुबास बड़ा ही धैर्य-परीक्षक प्रतीत हो रहा था। उन्हें एक-एक पल एक-एक युगके समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गये होंगे। अब मेहमान आ गये होंगे। लोग हाथ-पैर धो रहे हैं, नाई पानी दे रहा

है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गये। जेवनार गाया जा रहा है, यह विचार कर वह मनको बहलानेके लिये लेट गयीं। धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गयी। क्या इतनी देरतक लोग भोजन कर ही रहे होंगे। किसीकी आवाज नहीं सुनायी देती। अवश्य ही लोग खा-पीकर चले गये। मुझे कोई बुलाने नहीं आया। रूपा चिढ़ गयी है क्या जाने न बुलाये, सोचती हो कि आप ही आवेंगी, वह कोई मेहमान तो हैं नहीं, जो उन्हें बुलाऊं। बूढ़ी काकी चलनेके लिये तैयार हुईं। यह विश्वास कि एक मिनटमें पूड़ियां और मसालेदार तरकारियां सामने आयेंगी उनकी स्वादेन्द्रियोंको गुदगुदाने लगा। उन्होंने मनमें तरह-तरहके मंसूबे बांधे—पहले तरकारीसे पूड़ियां खाऊंगी, फिर दही और शक्करसे; कचौरियां रायतेके साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला, मैं तो मांग-मांगकर खाऊंगी। यही न लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं? कहा करें, इतने दिनोंके बाद पूड़ियां मिल रही हैं तो मुंह जूठा करके थोड़े ही उठ आऊंगी।

वह उकड़ूं बैठकर हाथोंके बल खसकती आंगनमें आयीं। परन्तु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषाने अपने पुराने स्वभावके अनुसार समयकी मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान-मंडली अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उंगलियां चाटता था, कोई तिर्छे नेत्रोंसे देखता था कि और लोग अभी खा रहे हैं या नहीं? कोई इस चिन्तामें था कि पत्तलपर पूड़ियां छूटी जाती हैं किसी तरह इन्हें भीतर रख लेता। कोई दही खाकर जीभ चटकारता था, परन्तु दूसरा दोना मांगते संकोच करता था कि इतनेमें बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीचमें जा पहुंचीं। कई आदमी चौंककर उठ खड़े हुए। पुकारने लगे—अरे यह कौन बुढ़िया है? यह कहांसे आ गयी? देखो किसीको छू न दे।

पं० बुद्धिराम काकीको देखते ही क्रोधसे तिलमिला गये। पूड़ियोंका थाल लिये खड़े थे। थालको जमीनपर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े असामीको देखते ही झपटकर उसका टेंटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपटकर उन्होंने बूढ़ी काकीके दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अंधेरी कोठरीमें धमसे पटक दिया। आशारूपी वाटिका लूके एक ही झोंकेसे नष्ट-विनष्ट हो गयी।

मेहमानोंने भोजन किया। घरवालोंने भोजन किया। बाजेवाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके, परन्तु बूढ़ी काकीको किसीने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकीको उनकी निर्लज्जताके लिये दण्ड देनेका निश्चय कर चुके थे। उनके बुढ़ापेपर, दीनतापर, हत ज्ञानपर किसीको करुणा न आती थी। अकेली लाडली उनके लिये कुढ़ रही थी।

लाडलीको काकीसे अत्यन्त प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बालविनोद और चंचलताकी उसमें गंधतक न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिताने काकीको निर्दयतासे घसीटा तो लाडलीका हृदय ऐंठकर रह गया। वह झुंझला रही थी कि

यह लोग काकीको क्यों बहुतसी पूड़ियां नहीं दे देते ? क्या मेहमान सब-की-सब खा जायेंगे ? और यदि काकीने मेहमानोंके पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जायेगा ? वह काकीके पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी ; परन्तु माताके भयसे न जाती थी। उसने अपने हिस्सेकी पूड़ियां बिलकुल न खायी थीं। अपनी गुड़ियोंकी पिटारीमें बन्द कर रखी थीं। वह उन पूड़ियोंको काकीके पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी। पूड़ियां देखकर कैसी प्रसन्न होंगी ! मुझे खूब प्यार करेंगी !

रातके ग्यारह बज गये थे। रूपा आंगनमें पड़ी सो रही थी। लाडलीकी आंखोंमें नींद न आती थी। काकीको पूड़ियां खिलानेकी खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियोंकी पिटारी सामने ही रखी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मा सो रही हैं; तो वह चुपकेसे उठी और विचारने लगी, कैसे चलूं। चारों ओर अंधेरा था। केवल चूल्होंमें आग चमक रही थी; और चूल्होंके पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाडलीकी दृष्टि द्वारके सामनेवाली नीमकी ओर गयी। उसे मालूम हुआ कि उसपर हनुमानजी बैठे हुए हैं। उनकी पूंछ, उनकी गदा, सब स्पष्ट दिखलायी दे रही थी। मारे भयके उसने आंखें बन्द कर लीं, इतनेमें कुत्ता उठ बैठा, लाडलीको ढाढ़स हुआ। कई सोये हुए मनुष्योंके बदले एक जागता हुआ कुत्ता उसके लिये

अधिकतर धैर्यका कारण हुआ। उसने पिटारी उठायी और बूढ़ी काकीकी कोठरीकी ओर चली।

बूढ़ी काकीको केवल इतना स्मरण था कि किसीने मेरे हाथ पकड़ कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहाड़पर उड़ाये लिये जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरोंसे टकराये तब किसीने उन्हें पहाड़परसे पटका, वे मूर्च्छित हो गयीं।

जब वे सचेत हुईं तो किसीकी जरा भी आहट न मिलती थी। समझा कि सब लोग खा-पीकर सो गये और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गयी। रात कैसे कटेगी ? राम ! क्या खाऊं पेटमें अग्नि धधक रही है ! हा ! किसीने मेरी सुध न ली ! क्या मेरा ही पेट काटनेसे धन जुट जायगा ? इन लोगोंको इतनी भी दया नहीं आती कि न जाने बूढ़िया कब मर जाय ? उसका जी क्यों दुखावें ? मैं पेटकी रोटियां ही खाती हूं कि और कुछ ? इसपर यह हाल ! मैं अंधी अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूं न बूझूं, यदि आंगनमें चली गयी तो क्या बुद्धिरामसे इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खा रहे हैं, फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्हीं पूड़ियोंके लिये रूपाने सबके सामने गालियां दीं। उन्हीं पूड़ियोंके लिये इतनी दुर्गति करनेपर भी उनका पत्थरका कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया, मेरी बाततक न पूछी। जब तब ही न दीं तब अब क्या देंगी ?

यह विचार कर काकी निराशामय संतोषके साथ लेट गयीं।

ग्लानिसे गला भर-भर आता था, परन्तु मेहमानोंके भयसे रोती न थीं।

सहसा उनके कानोंमें आवाज़ आयी—"काकी उठो, मैं पूड़ियां लायी हूं।"

काकीने लाडलीकी बोली पहचानी। चटपट उठ बैठीं। दोनों हाथोंसे लाडलीको टटोला और उसे गोदमें बैठा लिया।

लाडलीने पूड़ियां निकालकर दीं। काकीने पूछा—"क्या तुम्हारी अम्माने दी हैं?" लाडलीने कहा—"नहीं यह मेरे हिस्सेकी हैं। काकी पूड़ियोंपर टूट पड़ीं। पांच मिनटमें पिटारी खाली हो गयी। लाडलीने पूछा—काकी, पेट भर गया? जैसे थोड़ीसे वर्षा ठंडकके स्थानपर और भी गर्मी पैदा कर देती है उसी भांति इन थोड़ीसी पूड़ियोंने काकीकी क्षुधा और इच्छाको उत्तेजित कर दिया था। बोलीं—"नहीं बेटी, जाकर अम्मासे और मांग लाओ।" लाडलीने कहा—"अम्मा सोती हैं, जगाऊंगी तो मारेंगी।"

काकीने पिटारीको फिर टटोला। उसमें कुछ खुर्चन गिरे थे। उन्हें निकालकर वे खा गयीं। बार-बार होंठ चाटती थीं। चटखारें भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियाँ कैसे पाऊं। सन्तोष-सेतु जब टूट जाता है तब इच्छाका बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालोंको मदका स्मरण करना उन्हें मदान्ध बनाता है। काकीका अधीर मन इच्छाके प्रबल प्रवाहमें बह गया। उचित और अनुचितका विचार जाता रहा। वे कुछ देरतक उस

इच्छाको रोकती रहीं। सहसा लाडलीसे बोलीं—"मेरा हाथ पकड़कर वहां ले चलो जहां मेहमानोंने बैठकर भोजन किया है।"

लाडली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकीका हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठे पत्तलोंके पास बिठला दिया। दीन, क्षुधातुर, हत-ज्ञान बुढ़िया पत्तलोंसे पूड़ियोंके टुकड़े चुन-चुनकर भक्षण करने लगी। ओह! दही कितना स्वादिष्ट था, कचौरियां कितनी सलोनी, खस्ता कितने सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थी कि मैं वह काम कर रही हूं जो मुझे कदापि न करना चाहिये। मैं दूसरोंके जूठे पत्तल चाट रही हूं। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा-रोगका अन्तिम समय है, जब सम्पूर्ण इच्छायें एक ही केन्द्रपर आ लगती हैं। बूढ़ी काकीमें यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपाकी आंखें खुलीं। उसे मालूम हुआ कि लाडली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी, चारपाईके इधर-उधर ताकने लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहां न पाकर वह उठ बैठी तो क्या देखती है कि लाडली जूठे पत्तलोंके पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलोंपरसे पूड़ियोंके टुकड़े उठा-उठाकर खा रही हैं। रूपाका हृदय सन्न हो गया। किसी गायकी गर्दनपर छुरी चलते देखकर जो अवस्था उसकी होती, वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरोंका जूठा पत्तल टटोले; इससे अधिक शोकमय दृश्य असम्भव था। पूड़ियोंके कुछ ग्रासोंके लिये उसकी चचेरी सास ऐसा पतित और

निकृष्ट कर्म कर रही है! यह वह दृश्य था जिसे देखकर देखनेवालोंके हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता मानों ज़मीन रुक गयी, आसमान चक्कर खा रहा है। संसारपर कोई नई विपत्ति आनेवाली है। रूपाको क्रोध न आया। शोकके सम्मुख क्रोध कहां? करुणा और भयसे उसकी आंखें भर आयीं। इस अधर्मके पापका भागी कौन है? उसने सच्चे हृदयसे गगन-मण्डलकी ओर हाथ उठाकर कहा—"परमात्मा, मेरे बच्चोंपर दया करो, इस अधर्मका दंड मुझे मत दो, नहीं तो हमारा सत्यानास हो जायगा।

रूपाको अपनी स्वार्थपरता और अन्याय्य इस प्रकार प्रत्यक्ष-रूपमें कभी न देख पड़ा था। वह सोचने लगी,—हाय! कितनी निर्दय हूं। जिसकी सम्पत्तिसे मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण। हे दयामय भगवन्! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटेका तिलक था। सैकड़ों मनुष्योंने भोजन पाया। मैं उनके इशारोंकी दासी बनी रही। अपने नामके लिये सैकड़ों रुपये व्यय कर दिये; परन्तु जिसकी बदौलत हज़ारों रुपये खाये उसे इस उत्सवमें भी भरपेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा है, असहाय है!

रूपाने दिया जलाया, अपने भण्डारका द्वार खोला और एक थालीमें सम्पूर्ण सामग्रियां सजाकर लिये हुए बूढ़ी काकीकी ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाशपर तारोंके थाल सजे हुए थे और उनपर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परन्तु उनमें किसीको वह परमानन्द प्राप्त न हो सकता था जो बूढ़ी काकीको अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपाने कंठावरुद्ध स्वरमें कहा—"काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मासे प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।"

भोले-भाले बच्चोंकी भांति, जो मिठाइयां पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थीं। उनके एक-एक रोयेंसे सच्ची सदिच्छायें निकल रही थीं और रूपा बैठी इस स्वर्गीय दृश्यका आनन्द लूटनेमें निमग्न थी।

हारकी जीत

केशवसे मेरी पुरानी लागडांट थी। लेख और वाणी, हास्य और विनोद सभी क्षेत्रोंमें वह मुझसे कोसों आगे था। उसके गुणोंकी चन्द्रज्योतिमें मेरे दीपक-का प्रकाश कभी प्रस्फुटित न हुआ। एक बार उसे नीचा दिखाना मेरे जीवनकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी। उस समय मैंने कभी स्वीकार नहीं किया। अपनी त्रुटियोंको कौन स्वीकार करता है—पर वास्तवमें मुझे ईश्वरने उसकी जैसी बुद्धि-शक्ति न प्रदान की थी। अगर मुझे कुछ तस्कीन थी तो यह कि विद्या-क्षेत्रमें चाहे मुझे उससे कंधा मिलाना कभी नसीब न हो पर व्यवहारकी रङ्ग-भूमिमें सेहरा मेरे ही सिर रहेगा। लेकिन दुर्भा-ग्यसे जब प्रणय-सागरमें भी उसने मेरे साथ ही गोता मारा और रत्न उसीके हाथ लगता हुआ नजर आया तो मैं हताश हो गया। हम दोनोंने ही एम० ए० के लिये साम्यवादका विषय लिया था। हम दोनों ही साम्यवादी थे। केशवके विषयमें तो यह एक स्वाभा-विक बात थी। उसका कुल बहुत प्रतिष्ठित न था, न वह समृद्धि ही थी जो इस कमीको पूरा कर देती। मेरी अवस्था इसके प्रति-कूल थी। मैं खानदानका ताल्लुकदार और रईस था। मेरी साम्य-वादितापर लोगोंको कुतूहल होता था। हमारे साम्यवादके प्रोफे-सर बाबू हरिदास भाटिया साम्यवादके सिद्धान्तोंकेकायल थे,

लेकिन शायद धनकी अवहेलना न कर सकते थे। अपनी लज्जावतीके लिये उन्होंने कुशाग्रबुद्धि केशवको नहीं, मुझे पसन्द किया। एक दिन सन्ध्या-समय वह मेरे कमरेमें आये और चिन्तित भावसे बोले—शारदाचरण, मैं महीनोंसे एक बड़ी चिन्तामें पड़ा हुआ हूं! मुझे आशा है कि तुम उसका निवारण कर सकते हो। मेरे कोई पुत्र नहीं है। मैंने तुम्हें और केशव दोनोंहीको पुत्रतुल्य समझा है। यद्यपि केशव तुमसे चतुर है, पर मुझे विश्वास है कि विस्तृत संसारमें तुम्हें जो सफलता मिलेगी, वह उसे नहीं मिल सकती। अतएव मैंने तुम्हींको अपनी लज्जाके लिये वरा है। क्या मैं आशा करूं कि मेरा मनोरथ पूरा होगा?

मैं स्वतन्त्र था। मेरे माता-पिता मुझे लड़कपनहीमें छोड़कर स्वर्ग चले गये थे। मेरे कुटुम्बियोंमें अब ऐसा कोई न था जिसकी अनुमति लेनेको मुझे जरूरत होती। लज्जावती जैसी सुशीला, सुन्दरी, सुशिक्षिता स्त्री पाकर ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने भाग्यको न सराहता। मैं फूला न समाया। लज्जा एक कुसुमित वाटिका थी, जहां गुलाबकी मनोहर सुगन्धि थी, और हरिया-लीकी मनोरम शीतलता, समीरकी शुभ्र तरंगें थीं और पक्षियोंका मधुर संगीत। वह स्वयं साम्यवादपर मोहित थी। स्त्रियोंके प्रतिनिधित्व और ऐसे ही अन्य विषयोंपर उसने मुझसे कितनी ही बार बातें की थीं। लेकिन प्रोफेसर भाटियाकी तरह केवल सिद्धान्तोंकी भक्त न थी, उनको व्यवहारमें भी लाना

चाहती थी। उसने चतुर केशवको अपना स्नेहपात्र बनाया था। यद्यपि मैं जानता था कि प्रोफेसर भाटियाके आदेशको वह कभी नहीं टाल सकती, तथापि उसको इच्छाके विरुद्ध मैं उसे अपनी प्रणयिनी बनानेके लिये तैयार न था। इस विषय-में मैं स्वेच्छाके सिद्धान्तका कायल था। इसलिये मैं केशवकी विरक्ति और क्षोभसे आशातीत आनन्द न उठा सका। हम दोनों ही दुःखी थे, और मुझे पहली बार केशवसे सहानुभूति हुई। मैं लज्जावतीसे केवल इतना पूछना चाहता था कि उसने मुझे क्यों नजरोंसे गिरा दिया। पर उसके सामने ऐसे नाजुक प्रश्नको छेड़ते हुए मुझे संकोच होता था, और यह स्वाभाविक था, क्योंकि कोई रमणी अपने अन्तःकरणके रहस्यों को नहीं खोल सकती। लेकिन शायद लज्जावती इस परिस्थितिको मेरे सामने प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझ रही थी। वह इसका अवसर ढूंढ़ रही थी। संयोगसे उसे शीघ्र ही अवसर मिल भी गया।

सन्ध्याका समय था। केशव राजपूत होस्टलमें साम्यवादपर एक व्याख्यान देने गया हुआ था। प्रोफेसर भाटिया उस जलसे-के प्रधान थे। लज्जा अपने बंगलेमें अकेली बैठी हुई थी। मैं अपने अशान्त हृदयके भावोंको छिपाये हुये, शोक और नैराश्यकी दाह-से जलता हुआ उसके समीप आकर बैठ गया। लज्जाने मेरी ओर एक उड़ती हुई निगाह डाली और सदय भावसे बोली—कुछ चिन्तित जान पड़ते हो?

मैंने कृत्रिम उदासीनतासे कहा—तुम्हारी बलासे।

लज्जा—केशवका व्याख्यान सुनने नहीं गये?

मेरी आंखोंसे ज्वाला-सी निकलने लगी। जब्त करके बोला—आज सिरमें दर्द हो रहा था।

यह कहते-कहते अनायास मेरे नेत्रोंसे आंसूकी कई बूंदें टपक पड़ीं। मैं अपने शोकको प्रदर्शित करके उसका करुणापात्र बनना नहीं चाहता था। मेरे विचारमें रोना स्त्रियोंके ही स्वभावानुकूल था। मैं उसपर क्रोध प्रकट करना चाहता था और निकल पड़े आंसू। मनके भाव इच्छाके अधीन नहीं होते।

मुझे रोते देखकर लज्जाकी आंखोंसे भी आंसू गिरने लगे।

मैं कीना नहीं रखता, मलिनहृदय नहीं हूं, लेकिन न मालूम क्यों लज्जाके रोनेपर मुझे इस समय एक आनंदका अनुभव हुआ। उस शोकावस्थामें भी मैं उसपर व्यंग करनेसे बाज न रह सका, बोला—लज्जा मैं तो अपने भाग्यको रोता हूं। शायद तुम्हारे अन्यायकी दुहाई दे रहा हूं।' लेकिन तुम्हारे आंसू क्यों?

लज्जाने मेरी ओर तिरस्कार-भावसे देखा और बोली—मेरे आंसुओंका रहस्य तुम न समझोगे, क्योंकि तुमने कभी समझने-की चेष्टा नहीं की। तुम मुझे कटु वचन सुनाकर अपने चित्तको शान्त कर लेते हो। मैं किसे जलाऊं? तुम्हें क्या मालूम है कि मैंने कितना आगा-पीछा सोचकर, हृदयको कितना दबाकर, कितनी रातें करवटें बदलकर और कितने आंसू बहाकर यह निश्चय किया है। तुम्हारी कुल-प्रतिष्ठा, तुम्हारी रियासत एक दीवालकी भांति मेरे रास्तेमें खड़ी है। उस दीवारको मैं पार

नहीं कर सकती। मैं जानती हूं कि इस समय तुम्हें कुल-प्रतिष्ठा और रियासतका लेशमात्र भी अभिमान नहीं है। लेकिन यह भी जानती हूं कि तुम्हारा कालेजको शीतल छायामें पला हुआ साम्यवाद बहुत दिनोंतक सांसारिक जीवनकी लू और लपटको न सह सकेगा। उस समय तुम अवश्य अपने फैसलेपर पछताओगे और कुढ़ोगे। मैं तुम्हारे दूधकी मक्खी और हृदयका कांटा बन जाऊंगी।

मैंने आर्द्र होकर कहा—जिन कारणोंसे मेरा साम्यवाद लुप्त हो जायगा, क्या वह तुम्हारे साम्यवादको जीता छोड़ेंगे?

लज्जा—हां, मुझे पूरा विश्वास है कि मुझपर उनका जरा भी असर न होगा। मेरे घरमें कभी रियासत नहीं रही और कुलकी अवस्था तुम भली भांति जानते हो। बाबूजीने केवल अपने अविरल परिश्रम और अध्यवसायसे यह पद प्राप्त किया है। मुझे वह दिन नहीं भूला है जब मेरी माता जीवित थीं और बाबूजी ११ बजे रातको प्राइवेट ट्यूशन करके घर आते थे। मुझे तो रियासत और कुल-गौरवका अभिमान कभी हो ही नहीं सकता, उसी तरह जैसे तुम्हारे हृदयसे यह अभिमान कभी मिट नहीं सकता। यह घमण्ड मुझे उसी दशामें होगा जब मैं स्मृतिहीन हो जाऊंगी।

मैंने उद्दण्डतासे कहा—कुल-प्रतिष्ठाको तो मैं मिटा नहीं सकता, मेरे वशकी बात नहीं है, लेकिन तुम्हारे लिये मैं आज रियासतको तिलांजलि दे सकता हूं। लज्जा कर मुसक्यानसे

बोली—फिर वही भावुकता! अगर यह बात तुम किसी अबोध बालिकासे करते तो कदाचित् वह फूली न समाती। मैं एक ऐसे गहन विषयमें जिसपर दो प्राणियोंके समस्त जीवनका सुख-दुःख निर्भर है, भावुकताका आश्रय नहीं ले सकती। शादी बनावट नहीं है। परमात्मा साक्षी हैं, मैं विवश हूं, मुझे अभीतक स्वयं मालूम नहीं है कि मेरी डोंगी किधर जायगी। लेकिन मैं तुम्हारे जीवनको कण्टकमय नहीं बना सकती।

मैं यहांसे चला तो इतना निराश न था जितना सचिन्त। लज्जाने मेरे सामने एक नयी समस्या उपस्थित कर दी थी।

२

हम दोनों साथ-साथ एम० ए० हुए। केशव प्रथम श्रेणीमें आया, मैं द्वितीय श्रेणीमें। उसे नागपुरके एक कालेजमें अध्यापकका पद मिल गया। मैं घर आकर अपनी रियासतका प्रबन्ध करने लगा। चलते समय हम दोनों गले मिलकर और रोकर बिदा हुए। विरोध और ईर्षाको कालेजमें छोड़ दिया।

मैं अपने प्रान्तका पहला ताल्लुकदार था जिसने एम० ए० पद प्राप्त किया हो। पहले तो राज्याधिकारियोंने मेरी खूब आवभगत की, लेकिन जब मेरे सामाजिक सिद्धान्तोंसे अवगत हुए तो उनकी कृपादृष्टि कुछ शिथिल पड़ गयी। मैंने भी उनसे मिलना-जुलना छोड़ दिया। अपना अधिकांश समय अपने असामियोंके ही बीचमें व्यतीत करता।

पूरा साल भी न गुजरने पाया कि एक ताल्लुकेदारकी पर-

लोक-यात्राने कौंसिलमें एक स्थान खाली कर दिया। मैंने कौन्सिलमें जानेकी अपनी तरफसे कोई कोशिश नहीं की। लेकिन काश्तकारोंने अपने प्रतिनिधित्वका भार मेरे ही सिर रखा। बेचारा केशव तो अपने कालेजमें लेक्चर देता था, किसी को खबर भी न थी कि वह कहां है और क्या कर रहा है और मैं अपनी कुल-मर्यादाकी बदौलत कौंसिलका मेम्बर हो गया। मेरी वक्तृतायें समाचारपत्रोंमें छपने लगीं। मेरे प्रश्नोंकी प्रशंसा होने लगी। कौंसिलमें मेरा विशेष सम्मान होने लगा। कई सज्जन ऐसे निकल आये जो जनतावादके भक्त थे। पहले वह परिस्थितियोंसे कुछ दबे हुए थे। अब वह खुल पड़े। हम लोगोंने लोकवादियोंका अपना एक पृथक दल बना लिया और कृषकोंके अधिकारोंको जोरोंके साथ व्यक्त करना शुरू किया। अधिकांश भूपतियोंने मेरी अवहेलना की। कई सज्जनोंने धमकियां भी दीं। लेकिन मैंने अपने निश्चित पथको न छोड़ा। सेवाके इस सुअवसरको क्योंकर हाथसे जाने देता। दूसरा वर्ष समाप्त होते-होते जातिके प्रधान नेताओंमें मेरी गणना होने लगी। मुझे बहुत परिश्रम करना, बहुत पढ़ना, बहुत लिखना, बहुत बोलना पड़ता, पर जरा भी न घबराता। इस परिश्रमशीलता के लिये मैं केशवका ऋणी था। उसीने मुझे इतना अभ्यस्त बना दिया था।

मेरे पास केशव और प्रोफेसर भाटियाके पत्र बराबर आते रहते थे। कभी-कभी लज्जावती भी लिखती थी। उसके पत्रोंमें

श्रद्धा और प्रेमकी मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। वह मेरी राष्ट्र-सेवाका बड़े उदार, बड़े उत्साहमय शब्दोंमें बखान करती। मेरे विषयमें उसे पहले जो शङ्कायें थीं वह मिटती जाती थीं। मेरी तपस्या, देवीको आकर्षित करने लगी थी। केशवके पत्रोंसे उदासीनता टपकती थी। उसके कालेजमें धनका अभाव था। तीन वर्ष हो गये थे पर उसकी तरक्की न हुई थी। पत्रोंसे ऐसा प्रतीत होता था मानों वह जीवनसे असन्तुष्ट है। कदाचित् इसका मुख्य कारण यह था कि अभीतक उसके जीवनका सुखमय स्वप्न चरितार्थ न हुआ था।

तीसरे वर्ष गर्मियोंकी तातीलमें प्रोफेसर भाटिया मुझसे मिलने आये और बहुत प्रसन्न होकर गये। उसके एक ही सप्ताह पीछे लज्जावतीका पत्र आया। अदालतने तजवीज सुना दी। मेरी डिग्री हो गयी। केशवकी पहली बार मेरे मुकाबलेमें हार हुई। मेरे हर्षोल्लासकी कोई सीमा न थी। प्रो० भाटियाका इरादा भारतवर्षके सब प्रान्तोंमें भ्रमण करनेका था। वह साम्यवादपर एक ग्रन्थ लिख रहे थे जिसके लिये प्रत्येक बड़े नगरमें कुछ अन्वेषण करनेकी जरूरत थी। लज्जाको अपने साथ ले जाना चाहते थे। निश्चय हुआ कि उनके लौट आनेपर आगामी चैत्रके महीनेमें हमारा संयोग हो जाय। मैं यह वियोगके दिन बड़ी बेसब्रीसे काटने लगा। अबतक मैं जानता था कि बाजी केशवके हाथ रहेगी मैं निराश था; पर शान्त था। अब आशा थी और उसीके साथ घोर अशान्ति थी।

३

मार्चका महीना था। प्रतीक्षाकी अवधि पूरी हो चुकी थी। कठिन परिश्रमके दिन गये, फसल काटनेका समय आया। प्रोफेसर साहबने ढाकासे पत्र लिखा था कि कई अनिवार्य कारणोंसे मेरा लौटना मार्चमें नहीं मईमें होगा। इसी बीचमें काश्मीरके दीवान लाला सोमनाथ कपूर नैनीताल आये। बजट पेश था। उसपर व्यवस्थापक सभामें वाद-विवाद हो रहा था। गवर्नरकी ओरसे दीवान साहबको पार्टी दी गयी। सभाके प्रतिनिधियोंको भी निमन्त्रण मिला। कौंसिलकी ओरसे मुझे अभिवादन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरी बकवासको दीवान साहबने बहुत पसन्द किया। चलते समय मुझसे कई मिनटतक बातें कीं और मुझे अपने डेरेपर आनेका आदेश दिया। उनके साथ उनकी पुत्री सुशीला भी थी। वह पीछे सिर झुकाये खड़ी रही। जान पड़ता था भूमिको पढ़ रही है। पर मैं अपनी आंखोंको काबूमें न रख सका। वह उतनी ही देरमें एक बार नहीं, कई बार उठीं और जैसे बच्चा किसी अजनबीकी चुमकारसे उसकी ओर लपकता है पर फिर डरकर मांकी गोदसे चिमट जाता है, वह भी डरकर आधे ही रास्तेसे लौट आयीं। लज्जा अगर कुसुमित वाटिका थी तो सुशीला शीतल सलिल-धारा थी जहां वृक्षोंके कुञ्ज थे, विनोदशील मृगोंके झुण्ड, विहंगावलीकी अनन्त शोभा और तरङ्गोंका मधुर सङ्गीत।

मैं घरपर आया तो ऐसा थका हुआ था जैसे कोई मंजिल

मारकर आया हूं। सौन्दर्य जीवन-सुधा है, मालूम नहीं क्यों इसका असर इतना प्राणघातक होता है।

लेटा तो वही सूरत सामने थी। मैं उसे हटाना चाहता था, मुझे भय था कि एक क्षण भी उस भंवरमें पड़कर मैं अपनेको संभाल न सकूंगा। मैं अब लज्जावतीका हो चुका था, वही अब मेरे हृदयकी स्वामिनी थी। मेरा उसपर कोई अधिकार न था। लेकिन मेरे सारे संयम, सारी दलीलें निष्फल हुईं। जलके उद्वेगमें नौकाको धागेसे कौन रोक सकता है? अन्तमें हताश होकर मैंने अपनेको विचारोंके प्रवाहमें डाल दिया। कुछ दूरतक नौका वेगवती तरंगोंके साथ चली, फिर उसी प्रवाहमें विलीन हो गयी।

दूसरे दिन मैं नियत समयपर दीवान साहबके डेरेपर जा पहुंचा, इस भांति कांपता और हिचकता जैसे कोई बालक दामिनीकी चमकसे चौंक-चौंककर आंखें बन्द कर लेता है कि कहीं वह चमक न जाय, कहीं मैं उसकी चमक देख न लूं, भोला-भाला किसान भी अदालतके सामने इतना सशङ्क न होता होगा। यथार्थ यह था कि मेरी आत्मा परास्त हो चुकी थी। उसमें अब प्रतिकारकी शक्ति न रही थी।

दीवान साहबने मुझसे हाथ मिलाया और कोई घण्टेभरतक आर्थिक और सामाजिक प्रश्नोंपर वार्तालाप करते रहे। मुझे उनकी बहुज्ञतापर आश्चर्य होता था। ऐसा वाक्-चतुर पुरुष मैंने कभी न देखा था। साठ वर्षकी वयस थी पर हास्य औ

विनोदके मानों भाण्डार थे। न जाने कितने श्लोक, कितने कवित्त, कितने शेर उन्हें याद थे। बात-बातपर कोई-न-कोई सुयुक्ति निकाल लाते थे। खेद है उस प्रकृतिके लोग अब गायब होते जाते हैं। वह शिक्षाप्रणाली न जाने कैसी थी जो ऐसे-ऐसे रत्न उत्पन्न करती थी। अब तो सजीविता कहीं दिखायी ही नहीं देती। प्रत्येक प्राणी चिन्ताकी मूर्ति है, उसके होठोंपर कभी हंसी आती ही नहीं। खैर, दीवान साहबने पहले चाय मंगवायी, फिर फल और मेवे मंगवाये। मैं रह-रहकर इधर-उधर उत्सुक नेत्रोंसे देखता था। मेरे कान उसके स्वरका रसपान करनेके लिये मुंह खोले हुए थे, आंखें द्वारकी ओर लगी हुई थीं। भय भी था और लगाव भी, झिझक भी थी और खिंचाव भी। बच्चा झूलेसे डरता है पर उसपर बैठना भी चाहता है।

लेकिन रातके नौ बज गये, मेरे लौटनेका समय आ गया। मनमें लज्जित हो रहा था कि दीवान साहब दिलमें क्या कह रहे होंगे। सोचते होंगे इसे कोई काम नहीं है? जाता क्यों नहीं, बैठे-बैठे दो-ढाई घण्टे तो हो गये।

सारी बातें समाप्त हो गयीं। उनके लतीफे भी खत्म हो गये। वह नीरवता उपस्थित हो गयी जो कहती है कि अब चलिये फिर मुलाकात होगी। यार जिन्दा व सोहबत बाकी। मैंने कई बार उठनेका इरादा किया, लेकिन इन्तजारमें आशिक की जान भी नहीं निकलती, मौतको भी इन्तजारका पास करना पड़ता है। यहांतक कि साढ़े नौ बज गये और अब

मुझे बिदा होनेके सिवाय कोई मार्ग न रहा, जैसे दिल बैठ गया।

जिसे मैंने भय कहा है, वह वास्तवमें भय नहीं था, वह उत्सुकताकी चरमसीमा थी।

यहांसे चला तो ऐसा शिथिल और निर्जीव था मानों प्राण निकल गये हों। अपनेको धिक्कारने लगा। अपनी क्षुद्रतापर लज्जित हुआ। तुम समझते हो कि हम भी कुछ हैं। यहां किसीको तुम्हारी खबर ही नहीं। किसीको तुम्हारे मरने-जीनेकी परवा नहीं। माना उसके लक्षण क्वारियोंकेसे हैं। संसारमें क्वारी लड़कियोंकी कमी नहीं। सौन्दर्य भी ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं। अगर प्रत्येक रूपवती और क्वारी युवतीको देखकर तुम्हारी यही हालत होती रही तो ईश्वर ही मालिक है।

वह भी तो अपने दिलमें यही विचार करती होगी। प्रत्येक रूपवान युवकपर उसकी आंखें क्यों उठें। कुलवती स्त्रियोंके यह ढंग नहीं होते। पुरुषोंके लिये अगर यह रूप-तृष्णा निन्दाजनक है तो स्त्रियोंके लिये विनाशकारक है। द्वैतसे-अद्वैतको भी इतना आघात नहीं पहुंच सकता जितना सौन्दर्यको।

दूसरे दिन शामको मैं अपने बरामदेमें बैठा पत्र देख रहा था। क्लब जानेको जी न चाहता था। चित्त कुछ उदास था। सहसा मैंने दीवान साहबको फिटनपर आते देखा। मोटरसे उन्हें घृणा थी। वह इसे पैशाचिक उड़नखटोला कहा करते थे। उनके बगलमें सुशीला भी थी। मेरा हृदय धक-धक करने लगा।

उसकी निगाह मेरी तरफ उठी हो या न उठी हो, पर मेरी टकटकी उस वक्ततक लगी रही जबतक फिटन अदृश्य न हो गया।

दूसरे दिन मैं फिर बरामदेमें आ बैठा। आंखें सड़ककी ओर लगी हुई थीं। फिटन आया और चला गया। अब यही उसका नित्यप्रतिका नियम हो गया है। मेरा अब यही काम था कि सारे दिन बरामदेमें बैठा रहूं। मालूम नहीं फिटन कब निकल जाय। विशेषतः तीसरे पहर तो मैं अपनी जगहसे हिलनेका नाम भी न लेता था।

इस प्रकार एक मास बीत गया। मुझे अब कौंसिलके कामोंमें कोई उत्साह न था। समाचारपत्रोंमें, उपन्यासोंमें जी न लगता। कहीं सैर करनेका भी जी न चाहता। प्रेमियोंको न जाने जंगल पहाड़में भटकनेकी, कांटोंमें उलझनेकी सनक कैसे सवार होती है। मेरे तो जैसे पैरोंमें बेड़ियांसी पड़ गयी थीं। बस बरामदा था और मैं और फिटनका इन्तजार। मेरी विचार-शक्ति भी शायद अन्तर्धान हो गयी थी। मैं दीवान साहबको, या अङ्गरेजी शिष्टताके अनुसार सुशीलाको ही, अपने यहां निमंत्रित कर सकता था, पर वास्तवमें मैं अभीतक उससे भयभीत था। अब भी लज्जावतीको अपनी प्रणयिनी समझता था, वह अब भी मेरे हृदयकी रानी थी चाहे उसपर किसी दूसरी शक्तिका अधिकार ही क्यों न हो गया हो।

एक महीना और निकल गया, लेकिन मैंने लज्जाको कोई

पत्र न लिखा। मुझमें अब उसे पत्र लिखनेकी भी सामर्थ्य न थी। शायद उससे पत्र-व्यवहार करनेको मैं नैतिक अत्याचार समझता था। मैंने उससे दगा की थी। मुझे अब उसे अपने मलिन अंतःकरणमें भी अपवित्र करनेका कोई अधिकार न था।

इसका अन्त क्या होगा? यही चिन्ता अहर्निश मेरे मनपर कुहिर-मेघकी भांति छायी रहती थी। जीवन मरुस्थलकी भांति शून्य हो गया था। चिन्ता-दाहसे दिनोंदिन घुलता जाता था। मित्रजन अक्सर पूछा करते, आपको क्या मरज है। मुख निस्तेज, कान्तिहीन हो गया था। भोजन औषधके समान लगता। सोने जाता तो जान पड़ता किसीने पिंजरेमें बन्द कर दिया है। कोई मिलने आता तो चित्त उससे कोसों भागता। विचित्र दशा थी।

एक दिन शामको दीवान साहबका फिटन मेरे द्वारपर आकर रुका। उन्होंने अपने व्याख्यानोंका एक संग्रह प्रकाशित कराया था। उसकी एक प्रति मुझे भेंट करनेको आये थे। मैंने उन्हें बैठनेके लिये बहुत आग्रह किया, लेकिन उन्होंने यही कहा, सुशीलाको यहां आनेमें संकोच होगा और फिटनपर अकेले वह घबरायेगी। वह चले तो मैं भी साथ हो लिया और फिटनतक पीछे-पीछे आया। जब वह फिटनपर बैठने लगे तो मैंने सुशीलाको निश्शंक हो, आंख भरकर देखा, जैसे कोई प्यासा पथिक गर्मीके दिनोंमें अफरकर पानी पिये कि न जाने कब उसे जल मिलेगा। मेरी उस एक चितवनमें वह उग्रता, वह

याचना, वह उद्वेग, वह करुणा, वह श्रद्धा, वह आग्रह, वह दीनता थी जो पत्थरकी मूर्त्तिको भी पिघला देती। सुशीला तो फिर भी स्त्री थी। उसने भी मेरी ओर देखा, निर्भीक सरल नेत्रोंसे, ज़रा भी झेंप नहीं, ज़रा भी झिझक नहीं। मेरे परास्त होनेमें जो कसर रह गयी थी वह पूरी हो गयी, इसके साथ ही उसने मुझपर मानों अमृत वर्षा कर दी। मेरे हृदय और आत्मामें एक नयी शक्तिका संचार हो गया। मैं लौटा तो ऐसा प्रसन्नचित्त था मानों कल्पवृक्ष मिल गया हो।

दूसरे दिन मैंने प्रोफेसर भटियाको पत्र लिखा—मैं थोड़े दिनोंसे किसी गुप्त रोगमें ग्रस्त हो गया हूं। सम्भव है तपेदिक (क्षय) का आरम्भ हो, इसलिये मैं इस मईमें विवाह करना उचित नहीं समझता। मैं लज्जावतीसे इस भांति पराङ्मुख होना चाहता था कि उसकी निगाहोंमें मेरी इज्जत कम न हो। मैं कभी-कभी अपनी स्वार्थपरतापर क्रुद्ध होता। लज्जाके साथ यह छल-कपट, यह बेवफाई करते हुए मैं अपनी ही नजरोंमें गिर गया था। लेकिन मनपर कोई बस न था। उस अबलाको कितना दुःख होगा, यह सोचकर मैं कई बार रोया। अभीतक मैं सुशीलाके स्वभाव, विचार, मनोवृत्तियोंसे ज़रा भी परिचित न था। केवल उसके रूप-लावण्यपर अपनी लज्जाकी चिरसञ्चित अभिलाषाओं-का बलिदान कर रहा था। अबोध बालकोंकी भांति मिठाईके नामपर अपने दूध चावलको ठुकराये देता था। मैंने प्रोफेसरको लिखा था लज्जावतीसे मेरी बीमारीका जिक्र न करें। लेकिन

प्रोफेसर साहब इतने गहरे न थे। चौथे ही दिन लज्जाका पत्र आया, जिसमें उसने अपना हृदय खोलकर रख दिया था। वह मेरे लिये सब कुछ यहांतक कि वैधव्यकी यन्त्रणायें भी सहनेके लिये तैयार थी। उसकी इच्छा थी कि अब हमारे संयोगमें एक क्षणका भी विलम्ब न हो, अस्तु। मैं इस पत्रको लिये घण्टों एक संज्ञाहीन दशामें बैठा रहा। इस अलौकिक आत्मोत्सर्गके सामने अपनी क्षुद्रता, अपनी स्वार्थपरता, अपनी दुर्बलता कितनी घृणित थी!

४

लज्जावती

सावित्रीने क्या सब कुछ जानते हुए भी सत्यवानसे विवाह नहीं किया था? फिर मैं क्यों डरूं? अपने कर्त्तव्य-मार्गसे क्यों डिगूं? मैं उनके लिये व्रत रखूंगी, तीर्थ करूंगी, तपस्या करूंगी। भय मुझे उनसे अलग नहीं कर सकता। मुझे उनसे कभी इतना प्रेम न था। कभी इतनी अधीरता न थी। यही मेरी परीक्षाका समय है, और मैंने निश्चय कर लिया है। पिताजी अभी यात्रासे लौटे हैं, हाथ खाली है, कोई तैयारी नहीं कर सके हैं। इसलिये दो-चार महीनोंके विलम्बसे उन्हें तैयारी करनेका अवसर मिल जाता, पर मैं अब विलम्ब न करूंगी। हम और वह इसी महीनेमें एक दूसरेके हो जायंगे, हमारी आत्मायें सदाके लिये संयुक्त हो जायंगी, फिर कोई विपत्ति कोई दुर्घटना मुझे उनसे जुदा न कर सकेगी।

मुझे अब एक दिनकी देर भी असह्य है। मैं रस्म और रिवाज-की लौंडी नहीं हूं। न वही इसके गुलाम हैं। बाबूजी भी रस्मोंके भक्त नहीं। फिर क्यों न तुरत नैनीताल चलूं? उनकी सेवा-सुश्रूषा करूं, उन्हें ढाढ़स दूं। मैं उन्हें सारी चिन्ताओंसे, समस्त विघ्न-बाधाओंसे मुक्त कर दूंगी। इलाकेका सारा प्रबन्ध अपने हाथमें ले लूँगी। कौंसिलके कामोंमें इतना व्यस्त हो जानेके कारण ही उनकी यह दशा हुई है। पत्रोंमें अधिकतर उन्हींके प्रश्न, उन्हींकी आलोचनायें, उन्हींकी वक्तृतायें दिखायी देती हैं। मैं उनसे याचना करूंगी कि कुछ दिनोंके लिये कौंसिलसे इस्तीफा दे दें। वह मेरा गाना कितने चावसे सुनते थे। मैं उन्हें अपने गीत सुनाकर प्रसन्न करूंगी, किस्से पढ़कर सुनाऊंगी, उनको समुचित रीतिसे शान्ति रखूंगी। इस देशमें तो इस रोगकी दवा नहीं हो सकती। मैं उनके पैरोंपर गिरकर प्रार्थना करूंगी कि कुछ दिनोंके लिये यूरोपके किसी सेनिटोरियममें चलें और विधिपूर्वक इलाज करायें। मैं कल ही कालेज-के पुस्तकालयसे इस रोगके सम्बन्धकी पुस्तकें लाऊंगी, और विचारपूर्वक उनका अध्ययन करूंगी। दो-चार दिनमें कालेज बन्द हो जायगा। मैं आज ही बाबूजीसे नैनीताल चलनेकी चर्चा करूंगी।

५

आह! मैंने कल इन्हें देखा तो पहचान न सकी। कितना

सुर्ख चेहरा था, कितना भरा हुआ शरीर, मालूम होता था ईंगुर भरी हुई है! कितना सुन्दर अङ्ग-विन्यास था! कितना सौन्दर्य था! तीन ही वर्षोंमें यह कायापलट हो गयी, मुख पीला पड़ गया है, शरीर घुलकर कांटा हो गया। आहार आधा भी नहीं रहा, हरदम चिन्तामें मग्न रहते हैं। कहीं आते-जाते नहीं देखती। इतने नौकर हैं, इतना सुरम्य स्थान है। विनोदके सभी सामान मौजूद हैं। लेकिन इन्हें अपना जीवन अब अन्धकारमय जान पड़ता है। इस कलमुंहीं बीमारीका सत्यानास हो। अगर इसे ऐसी ही भूख थी तो मेरा शिकार क्यों न किया। मैं बड़े प्रेमसे इसका स्वागत करती। कोई ऐसा उपाय होता कि यह बीमारी इन्हें छोड़कर मुझे पकड़ लेती! मुझे देखकर कैसे खिल जाते थे। और मैं मुस्कुराने लगती थी। एक-एक अङ्ग प्रफुल्लित हो जाता था। पर मुझे यहां दूसरा दिन है। एक बार भी उनके चेहरेपर हँसी न दिखायी दी। जब मैंने बरामदेमें कदम रखा तब जरूर हँसे थे, किन्तु कितनी निराशा थी! बाबूजी अपने आंसुओंको न रोक सके। अलग कमरेमें जाकर देरतक रोते रहे। लोग कहते हैं, कौन्सिलोंमें लोग केवल सम्मान-प्रतिष्ठाके लोभसे आते हैं। उनका लक्ष्य केवल नाम पैदा करना होता है। बेचारे मेम्बरोंपर यह कितना कठोर आक्षेप है, कितनी घोर कृतघ्नता। जातिकी सेवामें शरीरको घुलाना पड़ता है, रक्तको जलाना पड़ता है। यही जातिसेवाका उपहार है!

पर यहांके नौकरोंको ज़रा भी चिन्ता नहीं है। बाबूजीने इनके दो-चार मिलनेवालोंसे बीमारीका ज़िक्र किया, पर उन्होंने भी परवा न की। यह मित्रोंकी सहानुभूतिका हाल है। सभी अपनी-अपनी धुनमें मस्त हैं, किसीको खबर नहीं कि दूसरोंपर क्या गुजरती है। हां, इतना मुझे भी मालूम होता है कि इन्हें क्षयका केवल भ्रम है। उसके कोई लक्षण नहीं देखती। परमात्मा करे, मेरा अनुमान ठीक हो। मुझे तो कोई और ही रोग मालूम होता है। मैंने कई बार टेम्परेचर लिया। उष्णता साधारण थी। उसमें कोई आकस्मिक परिवर्तन भी न हुआ। अगर यही बीमारी है तो अभी आरम्भिक अवस्था है और कोई कारण नहीं कि उचित प्रयत्नसे उसकी जड़ न उखड़ जाय। मैं कलसे ही इन्हें नित्य सैर कराने ले जाया करूंगी। मोटरकी जरूरत नहीं, फिटनपर बैठनेसे ज्यादा लाभ होगा। मुझे यह स्वयं कुछ लापरवाहसे जान पड़ते हैं। इस मरज़के बीमारोंको बड़ी एहतियात करते देखा है। दिनमें बीसों बार तो थरमामेटर देखते हैं, पथ्यापथ्यका बड़ा विचार रखते हैं, वे फल, दूध और अन्य पुष्टिकारक पदार्थोंका सेवन किया करते हैं। यह नहीं कि जो कुछ रसोइयेने अपने मनसे बनाकर सामने रख दिया वही, दो-चार ग्रास खाकर उठ आये। मुझे तो विश्वास होता जाता है कि इन्हें कोई दूसरी ही शिकायत है। ज़रा अवकाश मिले तो इसका पता लगाऊं। कोई चिन्ता तो नहीं है? रियासतपर कर्जका बोझ तो नहीं है? थोड़ा बहुत कर्ज तो अवश्य

ही होगा। यह तो रईसोंकी शान है। अगर कर्ज ही सारी विडम्बनाओंका मूल है तो अवश्य कोई भारी रकम होगी।

६

चित्त विविध चिन्ताओंसे इतना दबा हुआ है कि कुछ लिखनेका जी नहीं चाहता। मेरे समस्त जीवनकी अभिलाषायें मिट्टीमें मिल गयीं। हा हतभाग्य! मैं अपनेको कितनी खुशनसीब समझती थी। अब संसारमें मुझसे ज्यादा बदनसीब और कोई न होगा। वह अमूल्य रत्न जो मुझे चिरकालकी तपस्या और उपासनासे न मिला, वह इस मृगनयनी सुन्दरीको अनायास मिला जाता है। शारदाने अभी उसे हालमें ही देखा है। कदाचित् अभीतक उससे परस्पर बातचीत करनेकी नौबत नहीं आयी। लेकिन उसके कितने अनुरक्त हो रहे हैं। उसके प्रेममें कैसे उन्मत्त हो गये हैं। पुरुषोंको परमात्माने हृदय नहीं दिये, केवल आंखें दी हैं। वह हृदयकी कद्र करना नहीं जानते, केवल रूप-रङ्गपर बिक जाते हैं। अगर मुझे किसी तरह विश्वास हो जाय कि सुशीला उन्हें मुझसे ज्यादा प्रसन्न रख सकेगी, उनके जीवनको अधिक सार्थक बना देगी, तो मुझे उसके लिये जगह खाली करनेमें ज़रा भी आपत्ति न हो। लेकिन मुझे यह इतमीनान नहीं होता। वह इतनी गर्ववती, इतनी निठुर है, कि मुझे भय है कहीं शारदाको पछताना न पड़े।

लेकिन यह मेरी स्वार्थ-कल्पना है। सुशीला गर्ववती सही, निठुर सही, विलासिनी सही, शारदाने अपना प्रेम उसपर अर्पण

कर दिया है। वह बुद्धिमान हैं, चतुर हैं, दूरदर्शी हैं। अपना हानि-लाभ सोच सकते हैं। उन्होंने सब कुछ सोचकर ही यह निश्चय किया होगा। अब उन्होंने मनमें यह बात ठान ली तो मुझे कोई अधिकार नहीं है कि उनके सुख-मार्गका कांटा बनूं। मुझे सब्र करके, अपने मनको समझाकर यहांसे निराश, हताश, भग्नहृदय, विदा हो जाना चाहिये। परमात्मासे यही प्रार्थना है कि उन्हें प्रसन्न रखे। मुझे जरा भी ईर्षा, जरा भी दम्भ नहीं है। मैं तो उनकी इच्छाओंकी चेरी हूं। अगर उन्हें मुझको विष दे देनेसे खुशी होती तो मैं शौकसे विषका प्याला पी लेती। प्रेम ही जीवनका प्राण है। हम इसीके लिये जीना चाहते हैं। अगर इसके लिये मरनेका भी अवसर मिले तो धन्य भाग! यदि केवल मेरे हट जानेसे सब काम संवर सकते हैं तो मुझे कोई इन्कार नहीं। हरि इच्छा। लेकिन मानव-शरीर पाकर कौन माया-मोहसे रहित होता है? जिस प्रेमलताको मुद्दतोंसे पाला था, आंसुओंसे सींचा था उसका पैरों-तले रौंदा जाना नहीं देखा जाता। हृदय विदीर्ण हो जाता है। अब कागज तैरता हुआ जान पड़ता है, आंसू उमड़े चले आते हैं, कैसे मनको खींचूं। हा! जिसे अपना समझती थी, जिसके चरणों-पर अपनेको भेंट कर चुकी थी, जिसके सहारे जीवन-लता पल्लवित हुई थी, जिसे हृदय-मन्दिरमें पूजती थी, जिसके ध्यान-में मग्न हो जाना जीवनका सबसे प्यारा काम था, उससे अब अनन्त कालके लिये वियोग हो रहा है। आह! किससे फरि-

याद करूं? किसके सामने जाकर रोऊं? किससे अपनी दुःख-कथा कहूं? मेरा निर्बल हृदय यह वज्राघात नहीं सह सकता। यह चोट मेरी जान लेकर छोड़ेगी। अच्छा हो होगा। प्रेम-विहीन हृदयके लिये संसार कालकोठरी है, नैराश्य और अन्धकारसे भरी हुई। मैं जानती हूं अगर आज बाबूजी उनसे विवाहके लिये जोर दें तो वह तैयार हो जायंगे, वह मुरौवतके पुतले हैं। केवल मेरा मन रखनेके लिये अपनी जानपर खेल जावेंगे। वह उन शीलवान पुरुषोंमें हैं जिन्होंने 'नहीं' करना ही नहीं सीखा। अभीतक उन्होंने दीवान साहबसे सुशीलाके विषयमें कोई बात-चीत भी नहीं की। शायद मेरा रुख देख रहे हैं। इसी अस-मंजसने उन्हें इस दशाको पहुंचा दिया है। वह मुझे हमेशा प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करेंगे। मेरा दिल कभी न दुखावेंगे, सुशीलाकी चर्चा कभी भूलकर भी न करेंगे। मैं उनके स्वभावको जानती हूं। वह नर-रत्न हैं। लेकिन मैं उनके पैरोंकी बेड़ी नहीं बनना चाहती। जो कुछ बीते अपने ही ऊपर बीते। उन्हें क्यों समेटूं? डूबना ही है तो आप ही क्यों न डूबूं, क्यों डुबाऊं?

यह भी जानती हूं कि यदि इस शोकने घुला-घुलाकर मेरी जान ले ली तो वह अपनेको कभी क्षमा न करेंगे। उनका समस्त जीवन क्षोभ और ग्लानिकी भेंट हो जायगा। उन्हें कभी शान्ति न मिलेगी। कितनी विकट समस्या है। मुझे मरनेकी भी स्वाधीनता नहीं! मुझे उनको प्रसन्न रखनेके लिये

अपनेको प्रसन्न रखना होगा। उनसे निठुरता करनी पड़ेगी। त्रिया-चरित्र खेलना पड़ेगा। दिखाना पड़ेगा कि इस बीमारीके कारण अब विवाहकी बातचीत अनर्गल है। वचनको तोड़नेका अपराध अपने सिर लेना पड़ेगा। इसके सिवाय उद्धारको और कोई व्यवस्था नहीं। परमात्मा! मुझे बल दो कि इस परीक्षा-में सफल हो जाऊं।

७

शारदाचरण

एक ही निगाहने निश्चय कर दिया। लज्जाने मुझे जीत लिया। एक ही निगाहसे सुशीलाने भी मुझे जीता था। उस निगाहमें प्रबल आकर्षण था, एक मनोहर सारल्य, एक आनन्दो-द्गार, जो किसी भांति छिपाये नहीं छिपता था, एक बालोचित उल्लास, मानों उसे कोई खिलौना मिल गया हो। लज्जाकी चितवनमें क्षमा थी और थी करुणा, नैराश्य तथा वेदना। वह अपनेको मेरी इच्छापर बलिदान कर रही थी। आत्म-परिचयमें उसे सिद्धि है। उसने अपनी बुद्धिमानीसे सारी स्थिति ताड़ ली और तुरत फैसला कर लिया वह मेरे सुखमें बाधक नहीं बनना चाहती थी। उसके साथ ही यह भी प्रकट करना चाहती थी कि मुझे तुम्हारी परवा नहीं है। अगर तुम मुझसे जौ भर खिचोगे तो मैं तुमसे गज भर खिच जाऊंगी। लेकिन मनो-वृत्तियां सुगन्धके समान हैं जो छिपानेसे नहीं छुपतीं। उसकी

निठुरतामें नैराश्यमय वेदना थी; उसकी मुसकानमें आंसुओंकी झलक। वह मेरी निगाह बचाकर क्यों रसोईमें चली जाती थी और कोई-न-कोई पाक जिसे वह जानती है मुझे रुचिकर है, बना आती थी? वह मेरे नौकरोंको क्यों आरामसे रखनेकी गुप्त रीतिसे तरकीब किया करती थी? समाचारपत्रोंको क्यों मेरी निगाहसे छुपा दिया करती थी? क्यों संध्या-समय मुझे सैर करने-को मजबूर किया करती थी? उसकी एक-एक बात, उसके हृदयका परदा खोल देती थी। उसे कदाचित् मालूम नहीं है कि आत्म-परिचय रमणियोंका विशेष गुण नहीं। उस दिन जब प्रोफेसर भाटियाने बातों-ही-बातोंमें मुझपर व्यंग किये, मुझे विभव और सम्पत्तिका दास कहा और मेरे साम्यवादकी हंसी उड़ानी चाही तो उसने कितनी चतुरतासे बात टाल दी। पीछेसे मालूम नहीं उसने उनसे क्या कहा, पर मैं बरामदेमें बैठा सुन रहा था कि बाप और बेटी बगीचेमें बैठे हुए किसी विषयपर बहस कर रहे हैं। कौन ऐसा हृदयशून्य प्राणी है जो निष्काम-सेवाके वशीभूत न हो जाय। लज्जावतीको मैं बहुत दिनोंसे जानता हूं। पर मुझे ज्ञात हुआ कि इसी मुलाकातमें मैंने उसका यथार्थ रूप देखा। पहले मैं उसकी रूपराशिका, उसके उदार विचारोंका, उसकी मृदु वाणीका भक्त था। उसकी उज्ज्वल, दिव्य आत्मज्योति मेरी आँखोंसे छुपी हुई थी। मैंने अबकी ही जाना कि उसका प्रेम कितना गहरा, कितना पवित्र, कितना अगाध है। इस अवस्थामें कोई दूसरी स्त्री ईर्षासे

बावली हो जाती, मुझसे नहीं तो सुशीलासे तो अवश्य ही जलने लगती, आप कुढ़ती, उसे व्यंगोंसे छेदती और मुझे धूर्त, कपटी, पाषाण, न जाने क्या-क्या कहती। पर लज्जाने जितने विशुद्ध प्रेम-भावसे सुशीलाका स्वागत किया, वह मुझे कभी न भूलेगा—मालिन्य, संकीर्णता, कटुताका लेशतक न था। इस तरह उसे हाथों-हाथ लिये फिरती थी। मानों छोटी बहिन उसके यहां मेहमान है। सुशीला इस व्यवहारपर मनोमुग्ध हो गयी। आह! वह दृश्य भी चिरस्मरणीय है जब लज्जावती मुझसे विदा होने लगी। प्रोफेसर भाटिया मोटरपर बैठे हुए थे। वह मुझसे कुछ खिन्न हो गये थे और जल्द-से-जल्द भाग जाना चाहते थे। लज्जा एक उज्ज्वल साड़ी पहने हुए मेरे सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। वह एक तपस्विनी थी जिसने प्रेमपर अपना जीवन अर्पण कर दिया हो, श्वेत पुष्पोंकी माला थी जो किसी देवमूर्त्ति-के चरणोंपर पड़ी हुई हो! उसने मुसकुराकर मुझसे कहा—कभी-कभी पत्र लिखते रहना, इतनी कृपाकी मैं अपनेको अधिकारिणी समझती हूं।

मैंने जोशसे कहा—हां अवश्य। लज्जावतीने फिर कहा—शायद यह हमारी अंतिम भेंट हो। न जाने मैं कहां रहूंगी, कहां जाऊंगी फिर कभी आ सकूंगी या नहीं। मुझे बिलकुल भूल न जाना। अगर मेरे मुंहसे कोई ऐसी बात निकल आयी हो जिससे तुम्हें दुःख हुआ हो तो क्षमा करना और···अपने स्वास्थ्यका बहुत ध्यान रखना।

यह कहते हुए उसने मेरी तरफ हाथ बढ़ाये। हाथ कांप रहे थे। कदाचित् आंखोंमें आंसुओंका आवेग हो रहा था। वह जल्दी-से कमरेके बाहर निकल जाना चाहती थी। अपने ऊपर अब उसे भरोसा न था। उसने मेरी ओर दबी हुई आंखोंसे देखा। मगर इस अर्द्ध चितवनमें दबे हुए पानीका वेग और प्रवाह था। इस प्रवाहमें मैं स्थिर न रह सका। इस निगाहने हारी हुई बाजी जीत ली। मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और गद्गद्-स्वरसे बोला—नहीं लज्जा, अब हममें और तुममें भी वियोग न होगा।

* * * * *

सहसा चपरासीने सुशीलाका पत्र लाकर सामने रख दिया। लिखा था—

प्रिय श्री शारदाचरणजी,

हम लोग कल यहांसे चले जायंगे। मुझे आज बहुत काम करना है, इसलिये मिल न सकूंगी। मैंने आज रातको अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया। मैं लज्जावती बहनके बने-बनाये घरको उजाड़ना नहीं चाहती। मुझे पहले यह बात न मालूम थी नहीं तो हममें इतनी घनिष्ठता न होती। मेरा आपसे यही अनुरोध है कि लज्जाको हाथसे न जाने दीजिये। वह नारि रत्न है। मैं जानती हूं कि मेरा रूप रंग उससे कुछ अच्छा है और कदाचित् आप इसी प्रलोभनमें पड़ गये लेकिन मुझमें वह त्याग, वह सेवाभाव, वह आत्मोत्सर्ग नहीं है। मैं आपको प्रसन्न रख सकती हूं, पर आपके जीवनको उन्नत नहीं कर सकती, उसे

पवित्र और यशस्वी नहीं बना सकती। लज्जा देवी है, वह आपको देवता बना देगी। मैं अपनेको इस योग्य नहीं समझती। कल मुझसे भेंट करनेका विचार न कीजिये। रोने-रुलानेसे क्या लाभ। क्षमा कीजियेगा।

मैंने यह पत्र लज्जाके हाथमें रख दिया। वह पढ़कर बोली—मैं उससे आज ही मिलने जाऊंगी।

मैंने उसका आशय समझकर कहा—क्षमा करो। तुम्हारी उदारताकी दूसरी बार परीक्षा नहीं लेना चाहता।

यह कहकर मैं प्रोफेसर भाटियाके पास गया। वह मोटरपर मुंह फुलाये बैठे थे। मेरे बदले लज्जावती आयी होती तो उसपर जरूर ही बरस पड़ते।

मैंने उनके पद स्पर्श किये और सिर झुकाकर बोला—आपने मुझे सदैव अपना पुत्र समझा है। अब इस नातेको और भी सुदृढ़ कर दीजिये।

मि० भाटियाने पहले तो मेरी ओर अविश्वासपूर्ण नेत्रोंसे देखा। तब मुस्कुराकर बोले—यह तो मेरे जीवनकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

लोकमतका सम्मान

बेचू धोबीको अपने गांव और घरसे उतना ही प्रेम था जितना प्रत्येक मनुष्यको होता है। उसे रूखी-सूखा और आधे पेट खाकर भी अपना गांव समग्र संसारसे प्यारा था। यदि उसे वृद्धा किसान स्त्रियोंकी गालियां खानी पड़ती थीं तो बहुओंसे 'बेचू दादा' कहकर पुकारे जानेका गौरव भी प्राप्त होता था। आनन्द और शोकके प्रत्येक अवसरपर उसका बुलावा होता था, विशेषतः विवाहोंमें तो उसकी उपस्थिति वर और वधूसे कम आवश्यक न थी। उसकी स्त्री घरमें पूजी जाती थी, द्वारपर बेचूका स्वागत होता था। वह पेशवाज पहने, कमरमें घण्टियां बांधे, साजिन्दोंको साथ लिये, एक हाथ मृदङ्ग और दूसरा अपने कानपर रखकर जब तत्कालरचित बिरहे और बोल कहने लगता तो आत्मसम्मानसे उसकी आंखें उन्मत्त हो जाती थीं। हां, घेलेपर कपड़े धोकर भी वह अपनी दशासे सन्तुष्ट रह सकता था; किन्तु जमींदारके नौकरोंकी क्रूरता और अत्याचार कभी-कभी इतने असह्य हो जाते थे कि उसका जी गांव छोड़कर भाग जानेको चाहने लगता था। गांवमें कारिन्दा साहब-के अतिरिक्त पांच-छः चपरासी थे। उनके सहवासियोंकी संख्या भी कम न थी। बेचूको इन सब सज्जनोंके कपड़े मुफ्त

धोने पड़ते थे। उसके पास इस्तरी न थी। उनके कपड़ोंपर इस्तरी करनेके लिये उसे दूसरे गांवके धोबियोंकी चिरौरी करनी पड़ती थी। अगर कभी बिना इस्तरी किये हो कपड़े ले जाता तो उसकी शामत आ जाती थी। मार पड़ती, घण्टों चौपालके सामने खड़ा रहना पड़ता, गालियोंकी वह बौछार पड़ती कि सुननेवाले कानोंपर हाथ रख लेते, उधरसे गुजरनेवाली स्त्रियां लज्जासे सिर झुका लेतीं।

जेठका महीना था। आसपासके ताल-तलैया सब सूख गये थे। बेचूको पहर रात रहे दूरके एक तालमें जाना पड़ता था। यहां भी धोबियोंकी ओसरी बंधी हुई थी। बेचूकी ओसरी पांचवें दिन पड़ती थी। पहर रात रहे लादी लादकर ले जाता। मगर जेठकी धूपमें ९-१० बजेके बाद खड़ा न हो सकता। आधी लादी भी न धुल पाती, बिन धुले कपड़े समेट कर घर चला आता। गांवके सरल जजमान उसकी विपत्ति-कथा सुनकर शान्त हो जाते थे; न कोई गालियां देता, न मारने दौड़ता। जेठकी धूपमें उन्हें भी पुर चलाना और खेत गोड़ना पड़ता था। अपने पैरोंमें बिवाय फटी थी, उसकी पीर जानते थे। परन्तु कारिन्दा महाशयको प्रसन्न करना इतना सहज न था। उनके आदमी नित्य बेचूके सिरपर सवार रहते थे। वह बड़ी गम्भीरता-से कहते—तू एक-एक अठवारेतक कपड़े नहीं लाता, क्या यह भी कोई जाड़ेके दिन हैं? आजकल पसीनेसे दूसरे दिन कपड़े मैले हो जाते हैं, कपड़ोंसे बू आने लगती है और तुझे कुछ

परवा ही नहीं रहती। बेचू हाथ-पैर जोड़कर किसी तरह उन्हें मनाता रहता था, यहांतक कि एक बार उसे वादे करते ९ दिन हो गये और कपड़े न तैयार हो सके। धुल तो गये थे पर इस्तरी न हुई थी। अन्तमें विवश होकर बेचू दसवें दिन कपड़े लेकर चौपाल पहुंचा। मारे डरके पैर आगे न उठते थे। कारिन्दा साहब उसे देखते ही क्रोधसे लाल हो गये। बोले—"क्यों बे पाजी, तुझे गांवमें रहना है कि नहीं?"

बेचूने कपड़ोंकी गठरी तख्तपर रख दी और बोला—"क्या करूं सरकार, कहीं पानी तो है नहीं, न अपने पास इस्तरी ही है।"

कारिन्दा—"पानी तुझमें नहीं है और सारी दुनियांमें है। अब तेरा इलाज इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि गांवसे निकाल दूं। शैतान, दाईसे पेट छिपाने चला है, कपड़े दूसरोंको बरात करनेके लिये दे देता है, उसपर बहाने बताता है, पानी नहीं इस्तरी नहीं।"

बेचू—मालिक, गांव आपका है चाहे रहने दें चाहे निकाल दें, लेकिन यह कलंक न लगायें। इतनी उमिर आपही लोगोंकी खिदमत करते हो गई, पर चाहे कितनी ही भूल चूक हुई हो कभी नीयत बद नहीं हुई। अगर गांवमें कोई कह दे कि मैंने कभी गाहकोंके साथ ऐसी चाल चली है तो उसकी टांगकी राह निकल जाऊं। यह दस्तूर शहरके धोबियोंका है।

निरंकुशताका तर्कसे विरोध है। कारिन्दा साहबने कुछ और

अपशब्द कहे। बेचूने भी न्याय और दयाकी दुहाई दी। फल यह हुआ कि उसे आठ दिन हल्दी और गुड़ पीना पड़ा। नवें दिन उसने सब गाहकोंके पकड़े जैसे तैसे करके धो दिये, अपना बोरिया बधना संभाला और बिना किसीसे कुछ कहे सुने रातको पटनेकी राह ली। अपने पुराने गाहकोंसे विदा होनेके लिये जितने धैर्यकी जरूरत थी उससे वह वंचित था।

२

बेचू शहरमें आया तो उसे ऐसा जान पड़ा कि मेरे लिये पहलेसे ही जगह खाली थी। उसे केवल एक कोठरी किरायेपर लेनी पड़ी और काम चल निकला। पहले तो वह किराया सुनकर चकराया। देहातमें तो उसे महीनेभरमें इतनी धुलाई भी न मिलती थी, पर जब धुलाईकी दर मालूम हुई तो किरायेकी अखर मिट गयी। एक ही महीनेमें ग्राहकोंकी संख्या उसकी गणना-शक्तिसे अधिक हो गयी। यहां पानीकी कमी न थी। वह वादेका पक्का था। अभी नागरिक-जीवनके कुसंस्कारोंसे मुक्त था। कभी-कभी उसको एक दिनकी मजूरी देहातकी वार्षिक आयसे बढ़ जाती थी।

लेकिन तीन ही चार महीनेमें उसे शहरकी हवा लगने लगी। पहले नारियल पीता था; अब एक गुड़गुड़ा लाया। नंगे पांव जूतेसे वेष्टित हो गये और मोटे अनाजसे पाचन-क्रियामें विघ्न पड़ने लगा। पहले कभी-कभी तीज त्योहारके दिन शराब पी लिया करता था, अब थकन मिटानेके लिये नित्य उसका

सेवन होने लगा। स्त्रीको आभूषणोंकी चाट पड़ी, और धोबिन बन-ठनकर निकलती है मैं किससे कम हूं। लड़के खोंचेपर लट्टू हुए, हलवे और मूंगफलीकी आवाज सुनकर अधीर हो जाते। उधर मकानके मालिकने किराया बढ़ा दिया; भूसा और खली भी मोतियोंके मोल बिकती थी, लादीके दोनों बैलोंका पेट भरनेमें एक खासी रकम निकल जाती थी। अतएव पहले कई महीनोंमें जो बचत हो जाती थी वह अब गायब हो गयी। कभी-कभी खर्चेका पलड़ा भारी हो जाता। लेकिन किफायत करनेकी कोई विधि समझमें न आती थी। निदान स्त्रीने बेचूकी नजर बचाकर गाहकोंके कपड़े पछाई देने शुरू किये। बेचूको यह बात मालूम हुई तो बिगड़कर बोला—"अगर मैंने फिर यह शिकायत सुनी तो मुझसे बुरा कोई न होगा। इसी इलजामपर तो मैंने बाप दादेका गांव छोड़ दिया। यहांसे भी निकलवाना चाहती है क्या?"

स्त्रीने उत्तर दिया—तुम्हींसे तो एक दिन भी दारूके बिना नहीं रहा जाता। मैं क्या पैसे लाकर लुटाती हूं। जो खर्च लगे वह देते जाओ। मुझे इसमें कुछ मिठाई थोड़े ही मिलती है?

पर शनैः-शनैः नैतिक ज्ञानने आवश्यकताके सामने सिर झुकाना शुरू किया। एक बार उसे कई दिनतक ज्वर आया। स्त्री उसे डोलीपर बिठाकर वैद्यके यहां ले गयी। वैद्यजीने नुसखा लिख दिया। घरमें पैसे न थे। बेचू स्त्रीको कातर नेत्रोंसे देखकर बोला—तो क्या होगा? दवा तो बनानी ही है?

स्त्री—जो कहो वह करूं ।

बेचू—किसीसे उधार न मिलेगा ?

स्त्री—सबसे तो उधार ले चुकी । महल्लेमें राह चलना मुश्किल है । अब किससे लूं । अकेले जितना काम हो सकता है करती हूं । अब छाती फाड़के मर थोड़े ही जाऊंगी ? कुछ पैसे ऊपरसे मिल जाते थे लेकिन तुमने उसकी मनाही कर दी है । तो अब मेरा क्या बस है ? दो दिनसे बैल भूखे खड़े हैं । दो रुपये हों तो इनका पेट भरे ।

बेचू—अच्छा जो तेरे जीमें आये कर, किसी तरह काम तो चला । मुझे मालूम हो गया कि शहरमें अच्छी नीयतवाले आदमीका निबाह नहीं हो सकता ।

उस दिनसे यहां भी अन्य धोबियोंकी नीतिका व्यवहार होने लगा ।

३

बेचूके पड़ोसमें एक वकीलके मुहर्रिर मुंशी दाताराम रहा करते थे । बेचू कभी-कभी अवकाशके समय उनके पास जा बैठता । पड़ोसकी बात थी, धुलाईका कोई हिसाब-किताब न था । मुंशीजी बेचूकी खातिर करते, अपनी चिलम उतारकर उसकी तरफ बढ़ा देते, कभी घरमें कोई अच्छी चीज पकती तो बेचूके लड़कोंके लिये भेजवा देते । हां, इसका विचार रखते थे कि इन सत्कारोंका मूल्य धुलाईके पैसोंसे बढ़ने न पाये ।

गर्मियोंके दिन थे, बरातोंकी धूम थी । मुंशी दातारामको एक बरातमें शरीक होना था । गुड़गुड़ीके लिये पेचवान बनवाया, रोगनी चोलम लाये, सलेमशाही जूते खरीदे, अपने वकील साहबके घरसे एक कालीन मंगनी लाये, एक मित्रसे सोनेकी अंगूठी और बटन लिये । इन सामग्रियोंके एकत्रित करनेमें ज्यादा कठिनाई न पड़ी, किन्तु कपड़े मंगनी लेते हुए शर्म आती थी । बारातके योग्य कपड़े बनवानेकी गुंजाइश न थी । तनजेबके कुरते, रेशमी अचकन, नैनसुखका चुन्ननदार पायजामा, बनारसी साफा बनवाना आसान न था । खासी रकम लगती थी । रेशमी किनारेकी धोतियां और काशी-सिल्ककी चादर खरीदनी भी कठिन समस्या थी । कई दिनोंतक बेचारे इसी चिन्तामें पड़े रहे । अन्तमें बेचूके सिवाय और कोई इस चिन्ताका निवारण करनेवाला न दिखायी दिया । संध्या-समय जब बेचू उनके पास आकर बैठा तो बड़ी नम्रतासे बोले—"बेचू एक बरातमें जाना था और सब सामान तो मैंने जमा कर लिये हैं मगर कपड़े बनवानेमें झंझट है । रुपयोंकी तो कोई चिन्ता नहीं, तुम्हारी दयासे हाथ कभी खाली नहीं रहता । पेशा भी ऐसा है कि जो कुछ मिल जाय वह थोड़ा है । एक-न-एक आंख अन्धा गांठका पूरा नित्य फंसा ही रहता है । पर जानते हो आजकल लगनकी तेजी है, दरजियोंको सिर उठानेका फुरसत नहीं है, दूनी सिलाई लेते हैं तिसपर भी महीनों दौड़ाते हैं । अगर तुम्हारे यहां मेरे लायक कपड़े हों तो दो-तीन दिनोंके

लिये दे दो, किसी तरह सिरसे यह बला टले। नेवता दे देनेमें किसीका क्या खर्च होता है, बहुत किया तो पत्र छपवा लिये, लेकिन लोग यह नहीं सोचते कि बरातियोंको कितनी तैयारियां करनी पड़ती हैं, क्या-क्या कठिनाइयां पड़ती हैं। अगर बिरादरीमें यह रिवाज हो जाता कि जो महाशय निमन्त्रण भेजें वही उसके लिये सब सामान भी जुटायें तो लोग इतनी बेपरवाईसे नेवते न दिया करते। तो बोलो इतनी मदद करोगे न?

बेचूने मुरौवतमें पड़कर कहा—मुंशीजी, आपके लिये किसी बातसे इन्कार थोड़े ही है। लेकिन बात यह है कि आजकल लगन-की तेजीसे सभी गाहक अपने-अपने कपड़ोंकी जल्दी मचा रहे हैं, दिनमें तीन-तीन बेर आदमी भेजते हैं। ऐसा न हो, इधर आपको कपड़े दे दूं उधर कोई जल्दी मचाने लगे।

दाताराम—अजी, दो-तीन दिनके लिये टालना कौन बड़ा काम है। तुम चाहो तो हफ्तों टाल सकते हो, अभी भट्ठी नहीं दी, अभी इस्तरी नहीं हुई, घाट बन्द है। तुम्हारे पास बहानोंकी क्या कमी है? पड़ोसमें रहकर मेरी खातिरसे इतना भी न करोगे?

बेचू—नहीं मुंशीजी, आपके लिये जान हाजिर है। चलिये कपड़े पसन्द कर लीजिये तो मैं उनपर और एक बेर इस्तरी करके ठीक कर दूं। यही न होगा गाहकोंकी घुड़कियां खानी पड़ेंगी। दो-चार गाहक टूट भी जायँगे तो कौन गम है।

४

मुंशी दाताराम ठाटसे बरातमें पहुंचे। वहां उनके बना-रसी साफे, रेशमी अचकन और रेशमी चादरने ऐसा रंग जमाया कि लोग समझने लगे यह कोई बड़े रईस हैं। बेचू भी उनके साथ हो लिया था। मुंशीजी उसको बड़ी खातिर कर रहे थे। उसे एक बोतल शराब दिला दी, भोजन करने गये तो एक पत्तल उसके वास्ते भी लेते आये। बेचूके बदले उसे चौधरी कहकर पुकारते थे। यह सारा ठाटबाट उसीकी बदौलत तो था।

आधी रात गुजर चुकी थी। महफिल उठ गयी थी। लोग सोनेकी तैयारियां कर रहे थे। बेचू मुंशीजीकी चारपाईके पास एक चादर ओढ़े पड़ा था। मुंशीजीने कपड़े उतारे और बड़ी सावधानीसे अलगनीपर लटका दिये। हुक्का तैयार था। लेट-कर पीने लगे कि अकस्मात् साजिन्दोंमेंसे एक अताई आकर सामने खड़ा हो गया और बोला—"कहिये हजरत, यह अचकन और साफा आपने कहां पाया?"

मुंशीजीने उसकी ओर सशंक नेत्रोंसे देखकर कहा—इसका क्या मतलब?

अताई—इसका मतलब यह है कि यह दोनों चीजें मेरी हैं।

मुंशीजीने दुस्साहसपूर्ण भावसे कहा—क्या तुम्हारे ख्यालमें रेशमी अचकन और साफा तुम्हारे सिवाय और किसीके पास हो ही नहीं सकता?

अताई—हो क्यों नहीं सकता। अल्लाहने जिसे दिया है वह

पहनता है। एक-से-एक पड़े हुए हैं। मैं किस गिनतीमें हूं। लेकिन यह दोनों चीजें मेरी हैं। अगर ऐसी अचकन शहरमें किसीके पास निकल आये तो जो जरीबाना कहिये दूं। मैंने इसकी सिलाईके दस रुपये दिये हैं। ऐसा कोई कारीगर ही शहरमें नहीं। ऐसी तराश करता है कि हाथ चूम ले। साफेपर भी मेरा निशान बना हुआ है, लाइये दिखा दूं। मैं आपसे महज इतना पूछना चाहता हूं कि आपने यह चीजें कहां पायीं।

मुंशीजी समझ गये कि अब अधिक तर्क-वितर्कका स्थान नहीं है। कहीं बात बढ़ जाय तो बेइज्जती हो। कूटनीतिसे काम न चलेगा। नम्रतासे बोले—"भाई, यह न पूछो, यहां इन बातोंके कहनेका मौका नहीं है। हमारी और तुम्हारी इज्जत एक है। बस, इतना ही समझ लो कि इसी तरह दुनियाका काम चलता है। अगर ऐसे कपड़े बनवाने बैठता तो इस वक्त सैकड़ोंके माथे जाती। यहाँ तो किसी तरह नवेदमें शरीक होना था। तुम्हारे कपड़े खराब न होंगे इसका जिम्मा मेरा। मैं इनकी एहतियात अपने कपड़ोंसे भी ज्यादा करता हूं।"

अताई—कपड़ेकी मुझे फिकर नहीं, आपकी दुआसे अल्लाहने बहुत दिया है। रईसोंको खुदा सलामत रखे, उनकी बदौलत पांचो अंगुली घीमें हैं। न मैं आपको बदनाम करना चाहता हूं। आपकी जूतियोंका गुलाम हूं। मैं सिर्फ इतना जानना चाहता था कि कपड़े यह आपने किससे पाये। मैंने बेचू धोबीको धोनेके लिये दिये थे। ऐसा तो नहीं हुआ कि कोई चोर बेचूके घरसे उड़ा

लाया हो, या किसी धोबीहीने बेचूके घरसे चुराकर आपको दे दिये हों, क्योंकि बेचूने अपने हाथसे आपको हरगिज कपड़े न दिये होंगे। वह ऐसा छिछोरापन नहीं करता। मैंने खुद उससे इस तरहका मुआमला करना चाहा था, हाथोंपर रुपये रखे देता था पर उसने कभी परवा नहीं की। साहब, रुपये उठाकर फेंक दिये और ऐसी डाँट बतायी कि मेरे होश उड़ गये। इधरका हाल मैं नहीं जानता क्योंकि अब मैं उससे कभी ऐसी बातचीत ही नहीं करता। पर मुझे यकीन नहीं आता कि वह इतना बद-दियानत हो गया होगा। इसीलिये आपसे बार-बार पूछता हूं कि आपने यह कपड़े कहां पाये।

मुंशी बेचूकी निस्बत तुम्हारा जो खयाल है वह बिलकुल ठीक है। वह ऐसा ही बेगरज आदमी है, लेकिन भाई पड़ोसका भी तो कुछ हक होता है। मेरे पड़ोसमें रहता है, आठों पहरका साथ है। इधरसे भी कुछ-न-कुछ सलूक होता ही रहता है। मेरी जरूरत देखी, पसीज गया। बस और कोई बात नहीं।

अताईने बेचूकी निस्पृहताके विषयमें बड़ी अतिशयोक्तिसे काम लिया था। न उसने बेचूके हाथपर रुपये रखे थे और न बेचूने कभी उसे डाँट बतायी थी। पर इस अतिशयोक्तिका प्रभाव बेचूपर उससे कहीं ज्यादा पड़ा जितना केवल बातको यथार्थ कह देनेसे पड़ सकता था। बेचू नींदसे न सोया था। अताईकी एक-एक बात उसने सुनी थी। उसे ऐसा जान पड़ता था कि मेरी आत्मा किसी गहरी नींदसे जाग रही है। दुनिया मुझे

कितना ईमानदार, कितना सच्चा, कितना निष्कपट समझती है और मैं कितना बेईमान, कितना दगाबाज हूं। इसी झूठे इलजाम-पर मैंने वह गाँव छोड़ा जहां बाप-दादोंसे रहता आया था। लेकिन यहां आकर दारू, शराब, घी, चीनीके पीछे तबाह हो गया।

बेचू यहांसे लौटा तो दूसरा ही मनुष्य हो गया था। या यों कहिये कि वह फिर अपनी खोई हुई आत्माको पा गया था।

५

छः महीने बीत गये। सन्ध्याका समय था। बेचूके बड़े लड़के मलखानके ब्याहकी बातचीत करनेके लिये मेहमान लोग आये हुए थे। बेचू स्त्रीसे कुछ सलाह करनेके लिये घरमें आया तो वह बोली—"दारू कहांसे आयगी ? तुम्हारे पास कुछ है ?"

बेचू—मेरे पास जो कुछ था वह तुम्हें पहले ही नहीं दे दिया था ?

स्त्री—उससे तो मैं चावल, दाल, घी, यह सब सामान लायी। सात आदमियोंका खाना बनाना है। सब उठ गये।

बेचू—तो फिर मैं क्या करूं ?

स्त्री—बिना दारू लिये वह लोग भला खाने उठेंगे ? कितनी-नामूसी होगी।

बेचू—नामूसी हो चाहे बदनामी हो, दारू लाना मेरे बसकी बात नहीं। यही न होगा ब्याह न ठीक होगा, न सही।

स्त्री—यह दुशाला धुननेके लिये नहीं आया है ? न हो किसी बनियेके यहां गिरो रखकर चार पांच रुपये ले आओ। दो-तीन-

दिनमें छुड़ा लेना। किसी तरह मरजाद तो निभानी चाहिये ? सब कहेंगे, "नाम बड़े दरसन थोड़े।" दारूतक न दे सका।

बेचू—कैसी बात करती है ?" वह दुशाला मेरा है ?

स्त्री—किसीका हो, इस बखत काम निकाल लो। कौन किसीसे कहने जाता है।

बेचू—न, यह मुझसे न होगा, चाहे दारू मिले या न मिले।

बेचू यह कहकर बाहर चला आया। दोबारा भीतर गया तो देखा स्त्री जमीनसे खोदकर कुछ निकाल रही है। उसे देखते ही गड्डू को आंचलसे छुपा लिया।

बेचू मुस्कुराता हुआ बाहर चला आया।

दफ्तरी

रफाकत हुसेन मेरे दफ्तरका दफ्तरी था। १०) मासिक वेतन पाता था। दो-तीन रुपये फुटकर जिल्दबंदियोंसे मिल जाते थे। यही उसकी जीविका थी पर वह अपनी दशापर सन्तुष्ट था। उसकी आन्तरिक अवस्था तो ज्ञात नहीं, पर वह सदैव साफ सुथरे कपड़े पहनता और प्रसन्न चित्त रहता। कर्ज इस श्रेणीके मनुष्योंका आभूषण है। रफाकतपर उसका जादू न चलता था। उसकी बातोंमें कृत्रिम शिष्टाचारकी झलक भी न होती थी। बेलाग और खरी कहता था। अमलोंमें जो बुराइयां देखता साफ कह देता। इसी साफगोईके कारण लोग उसका सम्मान उसकी हैसियतसे ज्यादा करते थे। उसे पशुओंसे विशेष प्रेम था। एक घोड़ी पाल रखी थी, एक गाय, कई बकरियां, एक बिल्ली, एक कुत्ता और कुछ मुर्गियां। इन पशुओंपर जान देता था। बकरियोंके लिये पत्तियां तोड़ लाता, घोड़ीके लिये घास छीलता। यद्यपि उसे आये दिन मवेशीखानेके दर्शन करने पड़ते थे और बहुधा लोग उसके पशुप्रेमकी हंसी उड़ाते थे, पर वह किसीकी न सुनता था। और उसका यह निःस्वार्थ प्रेम था। किसीने उसे मुर्गियोंके अण्डे बेचते नहीं देखा, उसकी बकरियोंके बच्चे कभी बूचड़को छुरीके नीचे नहीं गये और उसकी घोड़ीने कभी लगामका मुंह नहीं देखा। गायका

दूध कुत्ता पीता था। बकरीका दूध बिल्लीके हिस्सेमें जाता था। जो कुछ बच रहता वह आप पीता था।

सौभाग्यसे उसकी पत्नी भी साध्वी थी। यद्यपि उसका घर बहुत छोटा था, पर किसीने द्वारपर उसकी आवाज नहीं सुनी। किसीने उसे द्वारपर झांकते नहीं देखा। वह गहने कपड़ोंके तगादोंसे पतिकी नींद हराम न करती थी। दफ्तरी उसकी पूजा करता था। वह गायका गोबर उठाती, घोड़ीको घास डालती, बिल्लीको अपने साथ बिठाकर खिलाती, यहांतक कि कुत्तेको नहलानेसे भी उसे घृणा न होती थी।

२

बरसात थी, नदियोंमें बाढ़ आयी हुई थी। दफ्तरके कर्मचारी मछलियोंका शिकार खेलने चले। शामतका मारा रफाकत भी उनके साथ हो लिया। दिनभर लोग शिकार खेला किये, शामको मूसलधार पानी बरसने लगा। कर्मचारियोंने तो एक गांवमें रात काटी, दफ्तरी घर चला। पर अन्धेरी रात, राह भूल गया और सारी रात भटकता फिरा। प्रातःकाल घर पहुंचा तो अभी अन्धेरा ही था, लेकिन दोनों द्वार-पट खुले हुए थे। उसका कुत्ता पूंछ दबाये करुण-स्वरसे कराहता हुआ आकर उसके पैरोंपर लोट गया। द्वार खुले देखकर दफ्तरीका कलेजा सन्नसे हो गया। घरमें कदम रखे तो बिलकुल सन्नाटा था। दो-तीन बार स्त्रीको पुकारा, किन्तु कोई उत्तर न मिला। घर भायं-भायं कर रहा था। उसने दोनों कोठरियोंमें जाकर देखा।

जब वहां भी उसका पता न मिला तो पशुशालामें गया। भीतर जाते हुए उसे वही अज्ञात भय हो रहा था जो किसी अन्धेरे खोहमें जाते हुए होता है। उसकी स्त्री वहीं भूमिपर चित पड़ी हुई थी। मुंहपर मक्खियां बैठी हुई थीं, होंठ नीले पड़ गये थे, आंखें पथरा गयी थीं। लक्षणोंसे अनुमान होता था कि उसे सांपने डस लिया है।

दूसरे दिन रफाकत आया तो उसे पहचानना मुश्किल था। मालूम होता था बरसोंका रोगी है, बिलकुल खोया हुआ, सुमगुम बैठा रहा, मानों किसी दूसरी ही दुनियामें है। सन्ध्या होते ही वह उठा और स्त्रीको कब्रपर आकर बैठ गया। अन्धेरा हो गया। तीन चार घड़ी रात बीत गयी पर वह दीपकके टिमटिमाते हुए प्रकाशमें उसी कब्रपर नैराश्य और दुखकी मूर्त्ति बना बैठा रहा, मानों मृत्युकी राह देख रहा हो। मालूम नहीं, कब घर आया। अब यही उसका नित्यका नियम हो गया। प्रातःकाल उठकर मजारपर जाता, झाड़ू लगाता, फूलोंके हार चढ़ाता, लोबान जलाता और नौ बजेतक कुरानका पाठ करता। सन्ध्यासमय फिर यही क्रम शुरू होता। अब यही उसके जीवनका नियमित कर्म था। अब वह अंतर्गतमें बसता था। वाह्य जगत्से उसने मुंह मोड़ लिया था। शोकने जीवनसे विरत कर दिया था

३

कई महीनोंतक यही हाल रहा। कर्मचारियोंको दफ्तरीसे सहानुभूति हो गयी थी। उसके काम खुद कर लेते, उसे कष्ट न देते। उसकी पतिभक्तिपर लोगोंको विस्मय होता था।

लेकिन मनुष्य सर्वदा प्राणलोकमें नहीं रह सकता। वहांका जलवायु उसके अनुकूल नहीं। वहां वह रूपमय, रसमय भावनायें कहां? विरागमें वह चिन्तामय उल्लास कहां? वह आशामय आनन्द कहां? दफ्तरीको आधी राततक ध्यानमें डूबे रहनेके बाद चूल्हा जलाना पड़ता, प्रातःकाल पशुओंको देख-भाल करनी पड़ती। यह बोझ उसके लिये असह्य था। अवस्थाने भावुकतापर विजय पायी। मरुभूमिके प्यासे पथिककी भांति दफ्तरी फिर दाम्पत्य सुख जलस्रोतकी ओर दौड़ा। वह फिर जीवनका वही सुखद अभिनय देखना चाहता था। पत्नीकी स्मृति दाम्पत्यसुखके रूपमें विलीन होने लगी। यहांतक कि छः महीनोंमें उस स्मृतिका चिह्न भी शेष न रहा।

इस मुहल्लेके दूसरे सिरेपर बड़े साहबका एक अरदली रहता था। उसके यहांसे विवाहकी बातचीत होने लगी। मियां रफाकत फूले न समाये। अरदली साहबका सम्मान मुहल्लेमें किसी वकीलसे कम न था। उनकी आमदनीपर अनेक कल्पनायें की जाती थीं। साधारण बोलचालमें कहा जाता था—"जो कुछ मिल जाय वह थोड़ा है।" वह स्वयं कहा करते थे कि तकावीके दिनोंमें मुझे जेबकी जगह थैली रखनी पड़ती थी। दफ्तरीने समझा भाग्य उदय हुआ। इस तरह टूटे जैसे बच्चे खिलौनेपर टूटते हैं। एकही सप्ताहमें सारा विधान पूरा हो गया और नववधू

घरमें आ गयी। जो मनुष्य अभी एक सप्ताह पहले संसारसे विरक्त, जीवनसे निराश बैठा हो उसे मुंहपर सेहरा डाले घोड़ेपर सवार नवकुसुमकी भांति विकसित देखना मानव-प्रकृतिकी एक विलक्षण विवेचना थी।

४

किन्तु एक ही अठवारेमें नववधूके जौहर खुलने लगे। विधाताने उसे रूपेन्द्रियसे वञ्चित रखा था, पर उसकी कसर पूरी करनेके लिये अति तीक्ष्ण वाक्येन्द्रिय प्रदान की थी। इसका सबूत उसकी वह वाक्पटुता थी जो अब बहुधा पड़ोसियोंको विनोदित और दफ्तरीको अपमानित किया करती थी। उसने आठ दिनतक दफ्तरीके चरित्रका तात्विक दृष्टिसे अध्ययन किया और तब एक दिन उससे बोली—"तुम तो विचित्र जीव हो। आदमी पशु पालता है अपने आरामके लिये न कि जंजालके लिये। यह क्या कि गायका दूध कुत्ते पियें, बकरियोंका दूध बिल्ली चट कर जाय और घरके प्राणियोंके कंठके नीचे एक बूँद भी न जाय। आजसे सब दूध घरमें लाया करो।"

दफ्तरी निरुत्तर हो गया। दूसरे दिनसे घोड़ोंका रातिब बन्द हो गया। वह चने अब भाड़में भुनने और नमक मिर्चसे खाये जाने लगे। प्रातःकाल ताजे दूधका नाश्ता होता, आये दिन तस्मई बनती। बड़े घरकी बेटी, पान बिना क्योंकर रहती? घी, मसालेका खर्च भी बढ़ा। पहले ही महीनेमें दफ्तरीको विदित हो गया कि मेरी आमदनी गुजरके लिये काफी नहीं है। उसकी

दशा उस मनुष्यकी-सी थी जो शक्करके धोखेमें कुनैन फांक गया हो।

दफ्तरी बड़ा धैर्यपरायण मनुष्य था। दो-तीन महीनेतक यह विषम वेदना सहता रहा। पर उसकी सूरत उसकी अवस्थाको शब्दोंसे भी अधिक व्यक्त कर देती थी। वह दफ्तरी जो अभावमें भी सन्तोषका आनन्द उठाता था, अब चिन्ताकी सजीव मूर्त्ति था, कपड़े मैले, सिरके बाल बिखरे हुए, चेहरेपर उदासी छाई हुई, अहर्निश हाय-हाय किया करता था। उसकी करुण दशा देखकर आंखोंसे आंसू निकल पड़ते थे। उसकी गाय अब हड्डियोंकी ढांचा थी, घोड़ोंको जगहसे हिलना कठिन था, बिल्ली पड़ोसियोंके छीकोंपर उचकती और कुत्ता घूरोंपर हड्डियां नोचता फिरता था। पर अब भी वह हिम्मतका धनी इन पुराने मित्रोंको अलग न करता था। सबसे बड़ी विपत्ति पत्नीकी वह वाक्प्रचुरता थी जिसके सामने कभी उसका धैर्य, उसकी कर्मनिष्ठा, उसकी उत्साहशीलता प्रस्थान कर जाती और वह अपनी अन्धेरी कोठरीके एक कोनेमें बैठकर खूब फूट-फूटकर रोता। सन्तोषके आनन्दको दुर्लभ पाकर रफाकतका पीड़ित हृदय उच्छृङ्खलताकी ओर प्रवृत्त हुआ। आत्माभिमान जो सन्तोषका प्रसाद है उसके चित्तसे लुप्त हो गया। उसने फाके-मस्तीका पथ ग्रहण किया। अब उसके पास पानी रखनेके लिये कोई बरतन न था, वह उस कुएंसे खींचकर उसी दम पी जाना चाहता था जिसमें वह जमीनपर बह न जाय। वेतन पाकर अब

वह महीनेभरका सामान न जुटाता, ठण्डे पानी और रूखी रोटियोंसे अब उसे तस्कीन न होती। बाजारसे बिस्कुट लाता, मलाईके दोनों और कलमी आमोंकी ओर लपकता। दस रुपयेकी भुगुत ही क्या? एक सप्ताहमें सब रुपये उड़ जाते, तब जिल्दबन्दियोंकी पेशगीपर हाथ बढ़ाता, फिर दो-एक दिन उपवास होता, अन्तमें उधार मांगने लगता। शनैः शनैः यह दशा हो गई कि वेतन देनदारोंहीके हाथोंमें चला जाता और महीनेके पहले ही दिनसे वह कर्ज लेना शुरू करता। वह पहले दूसरोंको मितव्ययिताका उपदेश दिया करता था, अब लोग उसे समझाते, पर वह लापरवाईसे कहता था, साहब, आज मिलता है खाते हैं कलका खुदा मालिक है, मिलेगा खायेंगे, नहीं पड़कर सो रहेंगे। उसकी अवस्था अब उस रोगीको-सी हो गई जो आरोग्यलाभसे निराश होकर पथ्यापथ्यका विचार त्याग दे, जिसमें मृत्युके आनेतक वह भोज्य-पदार्थोंसे भली-भांति तृप्त हो जाय।

लेकिन अभीतक उसने घोड़ी और गाय न बेची, यहांतक कि एक दिन दोनों मवेशीखानेमें दाखिल हो गईं। दफ्तरी कई दिन रुपयेकी चिन्तामें दौड़ता रहा, खुराकका खर्च बढ़ता गया, अन्तमें नियमानुसार दोनों ही नीलाम हो गईं। बकरियां भी तृष्णा-व्याघ्रके पंजेमें फंस गईं। पोलाव और जरदेके चस्केने नानबाईका ऋणी बना दिया था। जब उसे मालूम हो गया कि नगद रुपये वसूल न होंगे तो एक दिन सभी बकरियां हांक ले गया। दफ्तरी मुंह ताकता रह गया। बिल्लीने भी स्वामिभक्तिसे

मुंह मोड़ा, गाय और बकरियोंके जानेके बाद अब उसे दूधके बर्तनोंको चाटनेकी भी आशा न रही जो उसके स्नेह-बन्धनका अन्तिम सूत्र था। हां, कुत्ता पुराने सद्व्यवहारोंकी याद करके अभीतक आत्मीयताका पालन करता जाता था, किन्तु उसकी सजीविता विदा हो गई थी। यह वह कुत्ता न था जिसके सामने द्वारपरसे किसी अपरिचित मनुष्य या कुत्तेका निकल जाना असम्भव था। वह अब भी भूकता था लेकिन लेटे-लेटे और प्रायः छातीमें सिर छिपाये हुए, मानों अपनी वर्तमान स्थितिपर रो रहा हो। या तो उसमें अब उठनेकी शक्ति ही न थी, या वह चिरकालीन कृपाओंके लिये इतना कीर्तिगान पर्याप्त समझता था।

५

सन्ध्याका समय था। मैं द्वारपर बैठा हुआ पत्र पढ़ रहा था कि अकस्मात् दफ्तरीको आते देखा। कदाचित् कोई किसान सम्मन लानेवाले चपरासीसे भी इतना भयभीत न होता होगा, बालवृन्द टीका लगानेवालेसे भी इतना न डरते होंगे। मैं अव्यवस्थित होकर उठा और चाहा कि अन्दर जाकर द्वार बन्द कर लूं, कि इतनेमें दफ्तरी लपककर सामने आ पहुंचा। अब कैसे भागता? कुर्सीपर बैठ गया, पर नाक-भौं चढ़ाये हुए। दफ्तरी किसलिये आ रहा था इसमें मुझे लेशमात्र भी शङ्का न थी। ऋणेच्छुओंकी हृदय-चेष्टा उनके मुखाकृतिपर, उनके आचार-

व्यवहारपर उज्ज्वल रंगोंसे अङ्कित होती है। वह एक विशेष प्रकारकी नम्रता, संकोचमय परवशता होती है जिसे एक बार देखकर फिर नहीं भुलाया जा सकता।

दफ्तरीने आते ही बिना किसी प्रस्तावनाके अभिप्राय कह सुनाया जो मुझे पहले ही ज्ञात हो चुका था।

मैंने रुखाईसे उत्तर दिया, मेरे पास रुपये नहीं हैं।

दफ्तरीने सलाम किया और उल्टे पांव लौटा। उसके चेहरे-पर ऐसी दीनता और बेकसी छाई हुई थी कि मुझे उसपर दया आ गई। उसका इस भांति बिना कुछ कहे सुने लौटना कितना सारपूर्ण था। इसमें लज्जा थी, सन्तोष था, पछतावा था। उसके मुंहसे एक शब्द भी न निकला लेकिन, उसका चेहरा कह रहा था, मुझे विश्वास था कि आप यही उत्तर देंगे। इसमें मुझे जरा भी सन्देह न था। लेकिन यह जानते हुए भी मैं यहांतक आया, मालूम नहीं क्यों? मेरी समझमें स्वयं नहीं आता। कदाचित् आपकी दयाशीलता, आपकी वात्सल्याशा मुझे यहांतक लाई। अब जाता हूं। वह मुंह ही नहीं रहा कि अपनी कुछ कथा सुनाऊं।

मैंने दफ्तरीको आवाज दी—जरा सुनो तो, क्या काम है?

दफ्तरीको कुछ उम्मेद हुई। बोला,—आपसे क्या अर्ज करूं, दो दिनसे उपवास हो रहा है।

मैंने बड़ी नम्रतासे समझाया—इस तरह कर्ज लेकर के दिन तुम्हारा काम चलेगा। तुम समझदार आदमी हो, जानते हो कि आजकल सभीको अपनी फिक्र सवार रहती है। किसीके पास

फालतू रुपये नहीं रहते और यदि हों भी तो वह ऋण देकर रार क्यों लेने लगा। तुम अपनी दशा सुधारते क्यों नहीं?

दफ्तरीने विरक्त भावसे कहा—यह सब दिनोंका फेर है और क्या कहूं। जो चीज महीने भरके लिये लाता हूं, वह एक दिनमें उड़ जाती है। मैं घरवालीके चटोरेपनसे लाचार हूं। अगर एक दिन दूध न मिले तो महनामथ मचा दे, बाजारसे नाश्तेके लिये मिठाइयां न लाऊं तो घरमें रहना मुश्किल हो जाय, एक दिन गोश्त न पके तो मेरी बोटियां नोच खाय। खानदानका शरीफ हूं। यह बेइज्जती नहीं सही जाती कि खानेके पीछे स्त्रीसे झगड़ा-तकरार करूं। जो कुछ कहती है सिरके बल पूरा करता हूं, अब खुदासे यही दुआ है कि मुझे दुनियासे उठा ले। इसके सिवाय मुझे दूसरी कोई सूरत नहीं नजर आती, सब कुछ करके हार गया।

मैंने संदूकसे ५) निकाले और उसे देकर बोला—यह लो, यह तुम्हारे पुरुषार्थका इनाम है। मैं नहीं जानता था कि तुम्हारा हृदय इतना उदार, इतना वीररसपूर्ण है।

गृहदाहमें जलनेवाले वीर, रणक्षेत्रके वीरोंसे कम महत्वशाली नहीं होते।

विध्वंस

१

जिला बनारसमें बीरा नामका एक गांव है। वहां एक विधवा, वृद्धा, सन्तानहीन गोंडिन रहती थी जिसका भुनगी नाम था। उसके पास एक धुर भी जमीन न थी और न रहनेको घरही था। उसके जीवनका सहारा केवल एक भाड़ था। गांवके लोग प्रायः एक बेला चबैना या सत्तूपर निर्वाह करते ही हैं इसलिये भुनगीके भाड़पर नित्य भीड़ लगी रहती थी। वह जो कुछ भुनाई पाती वही भून या पीसकर खा लेती और भाड़हीकी झोंपड़ीके एक कोनेमें पड़ रहती। वह प्रातःकाल उठती और चारों ओरसे भाड़ झोंकनेके लिये सूखी पत्तियां बटोर लाती। भाड़के पास ही पत्तियोंका एक बड़ा ढेर लगा रहता था। दोपहरके बाद उसका भाड़ जलता था। लेकिन जब एकादशी या पूर्णमासीके दिन प्रथानुसार भाड़ न जलता, या गांवके जमींदार पण्डित उदयभानु पाण्डेके दाने भुनने पड़ते उस दिन उसे भूखे ही सो रहना पड़ता था। पण्डितजी उससे बेगारमें दाने ही न भुनवाते थे, उसे उनके घरका पानी भी भरना पड़ता था और कभी कभी इस हेतुसे भी भाड़ बन्द रहता था। वह पण्डितजीके गांवमें रहती थी, इसलिये उन्हें उससे सभी प्रकारकी बेगार लेनेका पूरा अधिकार था। इसे अन्याय नहीं कहा जा सकता।

अन्याय केवल इतना था कि वह सूखी बेगार लेते थे। उनकी धारणा थी कि जब खानेहीको दिया गया तो बेगार कैसी। किसानको पूरा अधिकार है कि बैलोंको दिन भर जोतनेके बाद शामको खूंटेसे भूखा बांध दे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो यह उसकी दयालुता नहीं है, केवल अपनी हितचिन्ता है। पण्डितजीको इसकी बहुत चिन्ता न थी क्योंकि एक तो भुनगी दो-एक दिन भूखे रहनेसे मर नहीं सकती थी और यदि दैवयोगसे मर भी जाती तो उसकी जगह दूसरा गोंड़ बड़ी आसानीसे बसाया जा सकता था। पण्डितजीकी यही क्या कम कृपा थी कि वह भुनगीको अपने गांवमें बसाये हुए थे।

२

चैतका महीना था और संक्रान्तिका पर्व। आजके दिन नये अन्नका सत्तू खाया और दान दिया जाता है। घरोंमें आग नहीं जलती। भुनगीका भाड़ आज बड़े जोरोंपर था। उसके सामने एक मेलासा लगा हुआ था। सांस लेनेका भी अवकाश न था। गाहकोंकी जल्दबाजीपर कभी-कभी झुंझला पड़ती थी, कि इतनेमें जमींदार साहबके यहांसे दो बड़े-बड़े टोकरे अनाजसे भरे हुए आ पहुंचे और हुक्म हुआ कि अभी भून दे। भुनगी दोनों टोकरे देखकर सहम उठी। अभी दोपहर था पर सूर्यास्तसे पहले इतना अनाज भूनना असंभव था। घड़ी दो घड़ी और मिल जाते तो एक अठवारेके खाने भरको अनाज हाथ आता। दैवसे इतना भी न देखा गया, इन यमदूतोंको भेज दिया। अब पहर राततक

सेंतमेंतमें भाड़में जलना पड़ेगा; एक नैराश्य भावसे दोनों टोकरे ले लिये।

चपरासीने डांटकर कहा—देर न लगे, नहीं तो तुम जानोगी।

भुनगी—यहीं बैठे रहो, जब भुन जाय तो लेकर जाना। किसी दूसरेके दाने छुऊं तो हाथ काट लेना।

चपरासी—बैठनेकी हमें छुट्टी नहीं है लेकिन तीसरे पहरतक दाना भुन जाय।

चपरासी तो यह ताकीद करके चलते बने और भुनगी अनाज भूनने लगी। लेकिन मनभर अनाज भुनना कोई हंसी तो थी नहीं, उसपर बीच-बीचमें भुनाई बन्द करके भाड़ भी झोंकना पड़ता था। अतएव तीसरा पहर हो गया और आधा काम भी न हुआ। उसे भय हुआ कि जमींदारके आदमी आते होंगे। आते-ही-आते गालियां देंगे, मारेंगे। उसने और वेगसे हाथ चलाना शुरू किया। रास्तेकी ओर ताकती और बालू नांदमें छोड़ती जाती थी। यहां-तक कि बालू ठंडा हो गया, दाने सेवड़े निकलने लगे। उसकी समझमें न आता था क्या करे। न भूनते बनता था न छोड़ते बनता था। सोचने लगी कैसी विपत्ति है। पण्डितजी कौन मेरी रोटियां चला देते हैं, कौन मेरे आंसू पोंछ देते हैं। अपना रक्त जलाती हूं तब कहीं दाना मिलता है। लेकिन जब देखो खोपड़ी-पर सवार रहते हैं। इसीलिये न कि उनकी चार अंगुल धर्तीसे मेरा निस्तार हो रहा है। क्या इतनीसी जमीनका इतना मोल है। ऐसे कितने ही टुकड़े गांवमें बेकाम पड़े हैं, कितने ही बख-

रियां उजाड़ पड़ी हुई हैं। वहां तो केसर नहीं उपजती फिर मुझीपर क्यों यह आठों पहर धौंस रहती है। कोई बात हुई और यही धमकी मिली कि भाड़ खोदकर फेंक दूंगा, उजाड़ दूंगा, मेरे सिरपर भी कोई होता तो क्यों बौछारें सहनी पड़तीं।

वह इन्हीं कुत्सित विचारोंमें पड़ी हुई थी कि दोनों चपरा-सियोंने आकर कर्कश स्वरमें कहा, क्यों रे, दाने भुन गये?

भुनगीने निडर होकर कहा—भून तो रही हूं। देखते नहीं हो?

चपरासी—सारा दिन बीत गया और तुझसे इतना अनाज न भूना गया? यह तू दाना भून रही है कि उसे चौपट कर रही है। यह तो बिलकुल सेवड़े हैं, इनका सत्तू कैसे बनेगा। मारा सत्यानास कर दिया। देख तो आज महाराज तेरी क्या गति करते हैं।

परिणाम यह हुआ कि उसी रातको भाड़ खोद डाला गया और वह अभागिनी विधवा निरावलम्ब हो गयी।

२

भुनगीको अब रोटियोंका कोई सहारा न रहा। गांववालोंको भी भाड़के विध्वंस हो जानेसे बहुत कष्ट होने लगा। कितने ही घरोंमें तो दोपहरको दाना ही न मयस्सर होता। लोगोंने जाकर पण्डितजीसे कहा कि बुढ़ियाको भाड़ जलानेकी आज्ञा दे दीजिये, लेकिन पण्डितजीने कुछ ध्यान न दिया। वह अपना रोब न घटा सकते थे। बुढ़ियासे उसके कुछ शुभचिन्तकोंने अनुरोध किया कि जाकर किसी दूसरे गांवमें क्यों नहीं बस जाती

लेकिन उसका हृदय इस प्रस्तावको स्वीकार न करता था। इस गांवमें उसने अपने अदिनके पचास वर्ष काटे थे। यहांके एक-एक पेड़-पत्तेसे उसे प्रेम हो गया था। जीवनके सुख-दुःख इसी गांवमें भोगे थे। अब अन्तिम समय वह इसे कैसे त्याग दे! यह कल्पना ही उसे संकटमय जान पड़ती थी। दूसरे गांवके सुखसे यहांका दुःख भी प्यारा था।

इस प्रकार एक पूरा महीना गुजर गया। प्रातःकाल था। पण्डित उदयभान अपने दो-तीन चपरासियोंको लिये लगान वसूल करने जा रहे थे। कारिन्दोंपर उन्हें विश्वास न था। नजर-नजरानेमें, डांड़-बांधमें, रसूममें, वह किसी अन्य व्यक्तिको शरीक न करते थे। बुढ़ियाके भाड़की ओर ताका तो बदनमें आगसी लग गयी। उसका पुनरुद्धार हो रहा था। बुढ़िया बड़े वेगसे उसपर मिट्टीके लोंदे रख रही थी। कदाचित् उसने कुछ रात रहते ही काममें हाथ लगा दिया था और सूर्योदयसे पहले ही उसे समाप्त कर देना चाहती थी। उसे लेशमात्र भी शङ्का न थी कि मैं जमींदारके विरुद्ध कोई काम कर रही हूं। क्रोध इतना चिर-जीवी हो सकता है इसकी संभावना भी उसके मनमें न थी। एक प्रतिभाशाली पुरुष किसी दीन अबलासे इतना कीना रख सकता है उसे इसका ध्यान भी न था। वह स्वभावतः मानव-चरित्रको इससे कहीं ऊंचा समझती थी। लेकिन हा! हतभागिनी! तूने धूपमें ही बाल सफेद किये।

सहसा पण्डितजीने गरजकर कहा, किसके हुक्मसे?

भुनगीने हकबकाकर देखा तो सामने जमींदार महोदय खड़े हैं।

पण्डितजीने फिर पूछा—किसके हुक्मसे बना रही है?

भुनगी डरते हुए बोली—सब लोग कहने लगे बना लो, तो बना रही हूं।

उदयभान—मैं अभी इसे फिर खुदवा डालूंगा। यह कह उन्होंने भाड़में एक ठोकर मारी। गीली मिट्टी सब कुछ लिये दिये बैठ गयी। दूसरी ठोकर नांदपर चलायी लेकिन बुढ़िया सामने आ गयी और ठोकर उसकी कमरपर पड़ी। अब उसे क्रोध आया। कमर सुहलाते हुए बोली—महाराज, तुम्हें आदमीका डर नहीं है तो भगवानका डर तो होना चाहिये। मुझे इस तरह उजाड़कर क्या पाओगे? क्या इस चार अंगुल धरतीमें सोना निकल आयेगा। मैं तुम्हारे ही भलेको कहती हूं, दीनकी हाय मत लो, मेरा रोयां दुखी मत करो।

उदयभान—अब तो यहां फिर भाड़ न बनायेगी।

भुनगी—भाड़ न जलाऊंगी तो खाऊंगी क्या?

उदयभान—तेरे पेटका हमने ठेका नहीं लिया है।

भुनगी—टहल तो तुम्हारी करती हूं खाने कहां जाऊं?

उदयभान—गांवमें रहेगी तो टहल करनी पड़ेगी।

भुनगी—टहल जभी करूंगी जब भाड़ जलाऊंगी। गांवमें रहनेके नाते टहल नहीं कर सकती।

उदयभान—तो छोड़कर निकल जा।

भुनगी—क्यों छोड़कर निकल जाऊं ? १२ साल खेत जोतनेसे असामी काश्तकार हो जाता है। मैं तो इस झोंपड़ेमें बूढ़ी हो गयी। मेरे सास-ससुर और उनके बाप-दादे इसी झोंपड़ेमें रहे। अब इसे जमराजको छोड़कर और कोई मुझसे नहीं ले सकता।

उदयभान—अच्छा तो अब तू कानून भी बघारने लगी। हाथ-पैर पड़ती तो चाहे मैं रहने भी देता, लेकिन अब तुझे निकालकर तभी दम लूंगा। (चपरासियोंसे) अभी जाकर इसके पत्तियोंके ढेरमें आग लगा दो, देखें अब कैसे भाड़ जलता है।

४

एक क्षणमें हाहाकार मच गया। ज्वालाशिखर आकाशसे बातें करने लगा। उसकी लपटें किसी उन्मत्तकी भांति इधर-उधर दौड़ने लगीं। सारे गांवके लोग उस अग्नि-पर्वतके चारों ओर जमा हो गये। भुनगी अपने भाड़के पास उदासीन भावसे खड़ी यह लङ्का-दहन देखती रही। अकस्मात् वह वेगसे आकर उसी अग्निकुण्डमें कूद पड़ी। लोग चारों ओरसे दौड़े, लेकिन किसीकी हिम्मत न पड़ी कि आगके मुंहमें जाय। क्षणमात्रमें उसका सूखा हुआ शरीर अग्निमें समाविष्ट हो गया।

उसी दम पवन भी वेगसे चलने लगा। ऊर्द्धगामी लपटें पूर्व दिशाकी ओर दौड़ने लगीं। भाड़के समीप ही किसानोंकी कई झोपड़ियां थीं, वह सब उन्मत्त ज्वालाओंका ग्रास बन गयीं। इस भांति प्रोत्साहित होकर लपटें और आगे बढ़ीं। सामने पण्डित उदयभानकी बखार थी। उसपर झपटीं। अब गांवमें हलचल पड़ी।

आग बुझानेकी तैयारियां होने लगीं। लेकिन पानीके छींटोंने आगपर तेलका काम किया। ज्वालाएं और भी भड़कीं और पण्डितजीके विशाल भवनको दबोच बैठीं। देखते-ही-देखते वह भवन उस नौकाकी भांति जो उन्मत्त तरंगोंके बीचमें झकोरे खा रही हो अग्नि-सागरमें विलीन हो गया। और वह क्रन्दन-ध्वनि जो उसके भस्मावशेषसे प्रस्फुटित होने लगी भुनगीके शोकमय विलापसे भी अधिक करुणाकारी थी।

प्रारब्ध

१

लाला जीवनदासको मृत्युशय्यापर पड़े ६ मास हो गये हैं। अवस्था दिनोंदिन शोचनीय होती जाती है। चिकित्सापर उन्हें अब जरा भी विश्वास नहीं रहा। केवल प्रारब्धका ही भरोसा है। कोई हितैषी वैद्य या डाक्टरका नाम लेता है तो वे मुंह फेर लेते हैं। उन्हें जीवनकी अब कोई आशा नहीं है। यहांतक कि अब उन्हें अपनी बीमारीकी जिक्रसे भी घृणा होती है। एक क्षणके लिये भूल जाना चाहते हैं कि मैं कालके मुखमें हूं। एक क्षणके लिये इस दुस्साध्य चिन्ता-भारको सिरसे फेंककर स्वाधीनतासे सांस लेनेके लिये उनका चित्त लालायित हो जाता है। उन्हें राजनीतिसे कभी रुचि नहीं रही। अपनी व्यक्तिगत चिन्ताओंहीमें लीन रहते थे। लेकिन अब उन्हें राजनीतिक विषयोंसे विशेष प्रेम हो गया है। अपनी बीमारीकी चर्चाके अतिरिक्त वह प्रत्येक विषयको शौकसे सुनते हैं किन्तु ज्योंही किसीने सहानुभूतिभावसे किसी औषधिका नाम लिया कि उनकी त्योरी बदल जाती है। अन्धकारमें विलाप-ध्वनि इतनी आशाजनक नहीं होती जितनी प्रकाशकी एक झलक।

वह यथार्थवादी पुरुष थे। धर्म-अधर्म, स्वर्ग-नरककी व्यवस्थाएं उनकी विचार-परिधिसे बाहर थीं। यहांतक कि अज्ञात-

भयसे भी वे शङ्कित न होते थे। लेकिन उसका कारण उनकी मानसिक शिथिलता न थी बल्कि लोकचिन्ताने परलोक चिन्ताका स्थान ही शेष न रखा था। उनका परिवार बहुत छोटा था। पत्नी थी और एक बालक। लेकिन स्वभाव उदार था, ऋण धनसे बढ़ा रहता था। उसपर इस असाध्य और चिरकालीन रोगने ऋणपर कई दर्जेकी वृद्धि कर दी थी। मेरे पीछे इन निःसहायोंका क्या हाल होगा यह ध्यान आते ही उनका चित्त विह्वल हो जाता था। इनका निर्वाह कैसे होगा? ये किसके सामने हाथ फैलायेंगे? कौन इनकी खबर लेगा? हाय! मैंने विवाह क्यों किया? पारिवारिक बन्धनमें क्यों फंसा? क्या इसलिये कि ये संसारके हिम-तुल्य दयाके पात्र बनें। क्या अपने कुलकी प्रतिष्ठा और सम्मानको यों विनष्ट होने दूं? जिस दुर्गादासने सारे नगरको अपनी अनुग्रह-वृष्टिसे प्लावित कर दिया था उसीके पोते और बहू द्वार-द्वार ठोकरें खाते फिरें?

हाय क्या होगा? कोई अपना नहीं, चारों ओर भयावह वन है! कहीं मार्गका पता नहीं! यह सरला रमणी, यह अबोध बालक इन्हें किसपर छोड़ूं?

हम अपनी आनपर जान देते थे। हमने किसीके सामने सिर नहीं झुकाया। किसीके ऋणी नहीं हुए। सदैव गर्दन उठाकर चले और अब यह नौबत है कि कफनका भी ठिकाना नहीं!

२

आधी रात गुजर चुकी थी। जीवनदासकी हालत आज

बहुत नाजुक थी। बार-बार मूर्च्छा आ जाती। बार-बार हृदयकी गति रुक जाती। उन्हें ज्ञात होता था कि अब अन्त निकट है। कमरेमें एक लैम्प जल रहा था। उनकी चारपाईके समीप ही प्रभावती और उसका बालक साथ सोये हुए थे। जीवनदासने कमरेकी दीवारोंको निराशापूर्ण नेत्रोंसे देखा जैसे कोई भटका हुआ पथिक निवासस्थानकी खोजमें हो। चारों ओरसे घूमकर उनकी आंखें प्रभावतीके चेहरेपर जम गयीं। हा! यह सुन्दरी एक क्षणमें विधवा हो जायगी। यह बालक पितृहीन हो जायगा? यही दोनों व्यक्ति मेरी जीवन-आशाओंके केन्द्र थे। मैंने जो कुछ किया इन्हींके लिये किया। मैंने अपना जीवन इन्हींपर समर्पण कर दिया था और अब इन्हें मझधारमें छोड़ जाता हूं। इसीलिये कि वे विपत्ति-भंवरके कौर बन जायं। इन विचारोंने उनके हृदय-को मसोस दिया। आंखोंसे आंसू बहने लगे।

अचानक उनके विचार-प्रवाहमें एक विचित्र परिवर्तन हुआ। निराशाकी जगह मुखपर एक दृढ़ संकल्पकी आभा दिखायी दी जैसे किसी गृहस्वामिनीकी झिड़कियां सुनकर एक दीन भिक्षुक-के तिवर बदल जाते हैं। "नहीं कदापि नहीं! मैं अपने प्रिय पुत्र अपनी प्राणप्रिया पत्नीपर प्रारब्धका अत्याचार न होने दूंगा। अपने कुलकी मर्यादाको यों भ्रष्ट न होने दूंगा। एक अबलाको जीवनकी कठिन परीक्षामें न डालूंगा। मैं मर रहा हूं लेकिन प्रारब्धके सामने सिर न झुकाऊंगा। उसका दास नहीं स्वामी बनूंगा। अपनी नौकाको निर्दय तरङ्गोंकी आश्रित न बनने दूंगा।

"निस्सन्देह संसार मुंह बनायेगा। मुझे दुरात्मा, घातक, नराधम कहेगा। इसलिये कि उसके पाशविक आमोदमें, उसकी पैशाचिक क्रीड़ाओंमें एक व्यवस्था कम हो जायगी। कोई चिंता नहीं, मुझे यह सन्तोष तो रहेगा कि उसका अत्याचार मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकता, उसकी अनर्थ लीलासे मैं सुरक्षित हूं।

जीवनदासके मुखपर वर्णहीन सङ्कल्प अंकित था। वह सङ्कल्प जो आत्महत्याका सूचक है। वह बिछौनेसे उठे मगर हाथ-पांव थरथर कांप रहे थे। कमरेकी प्रत्येक वस्तु उन्हें आंखें फाड़-फाड़कर देखती हुई जान पड़ती थी। आलमारीके शीशेमें अपनी परछाईं दिखायी दी। चौंक पड़े, वह कौन? ख्याल आ गया यह तो अपनी छाया है। उन्होंने आलमारीसे एक चमचा और एक प्याला निकाला। प्यालेमें वह जहरीली दवा थी जो डाक्टरने उनकी छातीपर मलनेके लिये दी थी। प्यालेको हाथमें लिये चारों ओर सहमी हुई दृष्टिसे ताकते हुए वह प्रभावतीके सिरहाने आकर खड़े हो गये। हृदयपर करुणाका आवेग हुआ। "आह! इन प्यारोंको क्या मेरे ही हाथों मरना लिखा था? मैं ही इनका यमदूत बनूंगा। यह अपने ही कर्मोंका फल है। मैं आंखें बन्द करके वैवाहित बन्धनमें फंसा। इन भावी आपदाओंकी ओर क्यों मेरा ध्यान न गया? मैं उस समय ऐसा हर्षित और प्रफुल्लित था मानों जीवन एक अनादि सुख-स्वर है, एक सुधा-मय आनन्द सरोवर। यह इसी अदूरदर्शिताका परिणाम है कि आज मैं यह दुर्दिन देख रहा हूं।"

हठात् उनके पैरोंमें कम्पन हुआ आंखोंमें अन्धेरा छा गया, नाड़ीकी गति बन्द होने लगी। वे करुणामयी भावनायें मिट गयीं। शंका हुई, कौन जाने वही दौरा जीवनका अन्त न हो। वह संभलकर उठे और प्यालेसे दवाका एक चम्मच निकालकर प्रभावतीके मुंहमें डाल दिया। उसने नींदमें दो-एक बार मुंह डुलाकर करवट बदल ली। तब उन्होंने लखनदासका मुंह खोलकर उसमें भी एक चम्मच भर दवा डाल दी और प्यालेको जमीन-पर पटक दिया। पर, हा! मानव-परवशता! हा प्रबल भावी! भाग्यकी विषम क्रीड़ा अब भी उनसे चाल चल रही थी। प्याले-में विष न था। वह टानिक था जो डाक्टरने उनका बल बढ़ानेके लिये दिया था।

प्यालेको रखते ही उनके कांपते हुए पैर स्थिर हो गये, मूर्च्छाके सब लक्षण जाते रहे। चित्तपर भयका प्रकोप हुआ। वह कमरेमें एक क्षण भी न ठहर सके। हत्याप्रकाशका भय हत्याकर्मसे भी कहीं दारुण था। उन्हें दण्डकी चिन्ता न थी; पर निन्दा और तिरस्कारसे बचना चाहते थे। वह घरसे इस तरह बाहर निकले जैसे किसीने उन्हें ढकेल दिया हो। उनके अंगोंमें कभी इतनी स्फूर्ति न थी। घर सड़कपर था, द्वारपर एक तांगा मिला। उसपर जा बैठे। नाड़ियोंमें विद्युत्शक्ति दौड़ रही थी।

ताँगेवालेने पूछा—कहाँ चलूं?

"जहाँ चाहो।"

"स्टेशन चलूं?"

"वहीं सही।"

"छोटी लैन चलूं या बड़ी लैन?"

"जहां गाड़ी जल्द मिल जाय।"

तांगेवालेने उन्हें कौतूहलसे देखा। परिचित था, बोला—"आपकी तबीयत अच्छी नहीं है, क्या और कोई साथ न जायगा?"

"नहीं, मैं अकेला ही जाऊंगा।"

"आप कहां जाना चाहते हैं?"

"बहुत बातें न करो, यहांसे जल्द चलो।"

तांगेवालेने घोड़ेको चाबुक लगाया और स्टेशनकी ओर चला। जीवनदास वहां पहुंचते ही तांगेसे कूद पड़े और स्टेशनके अन्दर चले। तांगेवालेने कहा—"पैसे?"

जीवनदासको अब ज्ञात हुआ कि मैं घरसे कुछ नहीं लेकर चला, यहांतक कि शरीरपर वस्त्र भी न थे। बोले, पैसे फिर मिलेंगे।

"आप न जाने कब लौटेंगे।"

"मेरा जूता नया है, ले लो।"

तांगेवालेका आश्चर्य और भी बढ़ा, समझा इन्होंने शराब पी है, अपने आपेमें नहीं हैं। चुपकेसे जूते लिये और चलता हुआ।

गाड़ीके आनेमें अभी घंटोंकी देर थी। जीवनदास प्लेट-फार्मपर जाकर टहलने लगे। धीरे-धीरे उनकी गति तीव्र होने

लगी, मानों कोई उनका पीछा कर रहा है। उन्हें इसकी बिलकुल चिन्ता न थी कि मैं खाली हाथ हूं। जाड़ेके दिन थे। लोग सरदीके मारे अकड़े जाते थे, किन्तु उन्हें ओढ़ने-बिछौनेकी भी सुधि न थी। उनकी चैतन्य-शक्ति नष्ट हो गयी थी; केवल अपने दुष्कर्मका ज्ञान जीवित था। ऐसी शंका होती थी कि प्रभावती मेरे पीछे दौड़ी चली आती है, कभी भ्रम होता कि लखनदास भागता हुआ आ रहा है, कभी पड़ोसियोंके धर-पकड़की आवाज कानोंमें आती थी, उनकी कल्पना प्रतिक्षण उत्तेजित होती जाती थी, यहांतक कि वह प्राणभयसे मालके बोरोंके बीचमें जा छिपे। एक-एक मिनटपर चौंक पड़ते थे और सशंक नेत्रोंसे इधर-उधर देखकर फिर छिप जाते थे। उन्हें अब यह भी स्मरण न रहा कि मैं यहां क्या करने आया हूं, केवल अपनी प्राणरक्षाका ज्ञान शेष था। घंटियां बजीं, मुसाफिरोंके झुण्ड-के-झुण्ड आने लगे, कुलियोंकी बक-झक, मुसाफिरोंकी चीख और पुकार, आने-जानेवाले एञ्जिनोंकी धकधकसे हाहाकार मचा हुआ था; किन्तु जीवनदास उन जड़ बोरोंके बीचमें इस तरह पैंतरे बदल रहे थे मानों वे चैतन्य होकर उन्हें घेरना चाहते हैं।

निदान गाड़ी स्टेशनपर आकर खड़ी हो गयी। जीवनदास संभल गये। स्मृति जाग्रत हो गयी। लपककर बोरोंमेंसे निकले और एक कमरेमें जा बैठे।

इतनेमें गाड़ीके द्वारपर 'खट खट' की ध्वनि सुनायी दी। जीवनदासने चौंककर देखा, टिकटका निरीक्षक खड़ा था। उनकी

अचेतावस्था भंग हो गयी। वह कौन-सा नशा है जो मारके आगे भाग न जाय। व्याधिकी शंका संज्ञाको जाग्रत कर देती है। उन्होंने शीघ्रतासे जलगृह खोला और उसमें घुस गये। निरीक्षकने पूछा—"और कोई नहीं?" मुसाफिरोंने एक स्वरसे कहा—"अब कोई नहीं है।" जनताको अधिकारिवर्गसे एक नैसर्गिक द्वेष होता है। गाड़ी चली तो जीवनदास बाहर निकले। यात्रियोंने एक प्रचण्ड हास्यध्वनिसे उनका स्वागत किया। यह देहरादून मेल था।

३

रास्तेभर जीवनदास कल्पनाओंमें मग्न रहे। हरद्वार पहुंचे तो उनकी मानसिक अशांति बहुत कुछ कम हो गयी थी। एक क्षेत्रसे कम्बल लाये, भोजन किया और वहीं पड़ रहे। अनुग्रहके कच्चे धागेको वह लोहेकी बेड़ी समझते थे; पर दुरवस्थाने आत्म-गौरवका नाश कर दिया था।

इस भांति कई दिन बीत गये; किन्तु मौतका तो कहना ही क्या, वह व्याधि भी शांत होने लगी जिसने उन्हें जीवनसे निराश कर दिया था। उनकी शक्ति दिनोंदिन बढ़ने लगी। मुखकी कान्ति प्रदीप्त होने लगी। वायुका प्रकोप शांत हो गया, मानो दो प्रिय प्राणियोंके बलिदानने मृत्युको तृप्त कर दिया था।

जीवनदासका यह रोग-निवृत्ति उस दारुण रोगसे भी अधिक दुखदायी प्रतीत होती थी। वे अब मृत्युका आह्वान करते, ईश्वरसे प्रार्थना करते कि फिर उसी जीर्णावस्थाका दुरागमन हो, नाना

प्रकारके कुपथ्य करते; किन्तु कोई प्रयत्न सफल न होता था। उन बलिदानोंने वास्तवमें यमराजको संतुष्ट कर दिया था।

अब उन्हें चिन्ता होने लगी, क्या मैं वास्तवमें जिन्दा रहूंगा। लक्षण ऐसे ही दीख पड़ते थे। नित्यप्रति यह शङ्का प्रबल होती जाती थी। उन्होंने प्रारब्धको अपने पैरोंपर झुकाना चाहा था; पर अब स्वयं उसके पैरोंकी रज चाट रहे थे। उन्हें बारंबार अपने ऊपर क्रोध आता, कभी व्यग्र होकर उठते कि जीवनका अन्त कर दूं, तकदीरको दिखा दूं कि मैं अब भी उसे कुचल सकता हूं; किन्तु उसके हाथों इतनी विकट यन्त्रणा भोगनेके बाद उन्हें भय होता था कि कहीं इससे भी जटिल समस्या न उपस्थित हो जाय; क्योंकि उन्हें उसकी शक्तिका कुछ-कुछ अनुमान हो गया था।

इन विचारोंने उनके मनमें नास्तिकताके भाव उत्पन्न किये। वर्तमान भौतिक शिक्षाने उन्हें पहले ही अनात्मवादी बना दिया था। अब उन्हें समस्त प्रकृति अनर्थ और अधर्मके रंगमें डूबी हुई मालूम होने लगी। यहां न्याय नहीं, दया नहीं, सत्य नहीं, असम्भव है कि यह सृष्टि किसी कृपालु शक्तिके अधीन हो और उसके ज्ञानमें नित्य ऐसे वीभत्स, ऐसे भीषण अभिनय होते रहें। वह न दयालु है, न वत्सल है। वह सर्वज्ञानी और अन्तर्यामी भी नहीं; निस्सन्देह वह एक विनाशिनी, वक्र और विकारमय शक्ति है। सांसारिक प्राणियोंने उसकी अनिष्ट क्रीड़ासे भयभीत होकर उसे सत्यका सागर, दया और धर्मका भाण्डार, प्रकाश

और ज्ञानका स्रोत बना दिया है। यह हमारा दीन विलाप है अपनी दुर्बलताका करुण अश्रुपात। इसी शक्तिहीनताको, इसी निस्सहायताको हम उपासना और आराधना कहते हैं और उसपर गर्व करते हैं। दार्शनिकोंका कथन है कि यह प्रकृति अटल नियमोंके अधीन है, यह भी उनकी श्रद्धालुता है। नियम जड़, अचैतन्य होते हैं, उनमें कपटके भाव कहां? इन नियमोंका संचालक, इस इन्द्रजालका मदारी अवश्य है; यह स्पष्ट है; किन्तु वह प्राणी देवता नहीं, पिशाच है।

इन भावोंने शनैः शनैः क्रियात्मक रूप धारण किया। सद्भक्ति हमें ऊपर ले जाती है, असद्भक्ति हमें नीचे गिराती है। जीवनदासकी नौकाका लंगर उखड़ गया। अब उसका न कोई लक्ष्य था और न कोई आधार; तरंगोंमें डांवाडोल होती रहती थी।

४

पन्द्रह वर्ष बीत गये। जीवनदासका जीवन आनन्द और विलासमें कटता था। रमणीक निवास-स्थान था, सवारियां थीं, नौकर-चाकर थे। नित्य राग-रंग होता रहता था। अब इन्द्रिय-लिप्सा उनका धर्म था, वासना-तृप्ति उनका जीवन-तत्व। वे विचार और विवेकके बन्धनोंसे मुक्त हो गये थे। नीति और अनीतिका ज्ञान लुप्त हो गया था। साधनोंकी भी कमी न थी। बंधे बैल और छूटे सांड़में बड़ा अन्तर है। एक रातिब पाकर भी दुर्बल है, दूसरा घासपात ही खाकर मस्त हो रहा है। स्वाधीनता बड़ी पोषक वस्तु है।

जीवनदासको अब अपनी स्त्री और बालककी याद न सताती थी। भूत और भविष्यका उनके हृदयपर कोई चिह्न न था। उनकी निगाह केवल वर्तमानपर रहती थी। वह धर्मको अधर्म समझते थे और अधर्मको धर्म। उन्हें सृष्टिका यह मूलतत्व प्रतीत होता था। उनका जीवन स्वयं इसी दुर्नीतिका उज्ज्वल प्रमाण था। आत्मबन्धनको तोड़कर वे जितने उत्थित हुए, वहांतक उन बंधनोंमें पड़े हुए उनकी दृष्टि भी न पहुंच सकती थी। जिधर आंख उठती अधर्मका साम्राज्य दीख पड़ता था। यही सफल जीवनका मन्त्र था। स्वेच्छाचारी हवामें उड़ते हैं, धर्मके सेवक एड़ियां रगड़ते हैं। वे व्यापार और राजनीतिके भवन, ज्ञान और भक्तिके मन्दिर, साहित्य और काव्यकी रंगशाला, प्रेम और अनुरागकी मण्डलियां सब इसी दीपकसे आलोकित हो रही हैं। ऐसी विराट ज्योतिकी आराधना क्यों न की जाय?

गरमीके दिन थे, सन्ध्याका समय; हरिद्वारके रेलवे स्टेशनपर यात्रियोंकी भीड़ थी। जीवनदास एक गेरुए रङ्गकी रेशमी चादर गलेमें डाले, सुनहरी चश्मा लगाये, दिव्य ज्ञानकी मूर्ति बने हुए अपने सहचरोंके साथ प्लेटफामपर टहल रहे थे। उनकी भेदक-दृष्टि यात्रियोंपर लगी हुई थी। अचानक उन्हें दूसरे दर्जेके कमरेमें एक शिकार दिखायी दिया। यह एक रूपवान युवक था। चेहरेसे प्रतिभा झलक रही थी। उसकी घड़ीकी जञ्जीर सुनहरी थी, तंजेबकी अचकनके बटन भी सोनेके थे। जिस प्रकार वधिककी दृष्टि पशुके मांस और चर्मपर रहती है, उसी प्रकार जीवन-

दासकी दृष्टिमें मनुष्य एक भोग्य पदार्थ था। उनके अनुमानने आश्चर्यजनक कुशलता प्राप्त कर ली थी और उसमें कभी भूल न होती थी। यह युवक अवश्य कोई रईस है। सरल और गौरवशील भी है, अतएव सुगमतासे जालमें फंस जायगा। उसपर अपनी सिद्धताका सिक्का बिठाना चाहिए। उसकी सरलहृदयतापर निशाना मारना चाहिए। मैं गुरु बनूं, यह दोनों मेरे शिष्य बन जायं, छलकी घातें चलें, मेरी अपार विद्वत्ता, अलौकिक कीर्ति और अगाध वैराग्यका मधुर गान हो, शब्दाडम्बरोंके दाने बिखेर दिये जायं और मृगपर फंदा डाल दिया जाय।

यह निश्चय करके जीवनदास कमरेमें दाखिल हुए। युवकने उनकी ओर गौरसे देखा जैसे अपने भूले हुए मित्रको पहचाननेकी चेष्टा कर रहा हो। तब अधीर होकर बोला—"महात्माजी, आपका स्थान कहां है?"

जीवनदास प्रसन्न होकर बोले—"बाबा, सन्तोंका स्थान कहां? समस्त संसार हमारा स्थान है।"

युवकने फिर पूछा—"आप लाला जीवनदास तो नहीं हैं।"

जीवनदास चौंक पड़े। छाती बल्लियों उछलने लगी। चेहरेपर हवाइयां उड़ने लगीं। कहीं यह खुफिया पुलिसका कर्मचारी तो नहीं है, कुछ निश्चय न कर सके, क्या उत्तर दूं। गुम-सुम हो गये।

युवकने उन्हें असमंजसमें पड़े देखकर कहा—मेरी यह धृष्टता क्षमा कीजियेगा। मैंने यह बात इसलिये पूछी कि आपका श्रीमुख

मेरे पिताजीसे बहुत मिलता है। वे बहुत दिनोंसे गायब है। लोग कहते हैं संन्यासी हो गये। बरसोंसे उन्हींकी तलाशमें मारा-मारा फिर रहा हूं।

जिस प्रकार क्षितिजपर मेघराशि चढ़ती है और क्षणमात्रमें सम्पूर्ण वायुमण्डलको घेर लेती है उसी प्रकार जीवनदासको अपने हृदयमें पूर्व स्मृतियोंकी एक लहर सी उठती हुई मालूम हुई। गला फंस गया और आंखोंके सामने प्रत्येक वस्तु तैरती हुई जान पड़ने लगी। युवककी ओर सचेष्ट नेत्रोंसे देखा, स्मृति सजग हो गयी। उसके गलेसे लपटकर बोले—"लक्खू?"

लखनदास उनके पैरोंपर गिर पड़ा।

"मैंने बिलकुल नहीं पहचाना।"

"एक युग हो गया।"

८

आधी रात गुजर चुकी थी। लखनदास सो रहा था और जीवनदास खिड़कीसे सिर निकाले विचारोंमें मग्न थे। प्रारब्धका एक नया अभिनय उनके नेत्रोंके सामने था। वह धारणा जो अतीत कालसे उनकी पथप्रदर्शक बनी हुई थी, हिल गयी। मुझे अहङ्कारने कितना विवेकहीन बना दिया था! समझता था, मैं ही सृष्टिका संचालक हूं, मेरे मरनेपर परिवारका अधःपतन हो जायगा; पर मेरी यह दुश्चिन्ता कितनी मिथ्या निकली। जिन्हें मैंने विष दिया वे आज जीवित हैं, सुखी हैं और सम्पत्तिशाली हैं। असम्भव था कि मैं लक्खूको ऐसी उच्च शिक्षा दे सकता। माताके पुत्र-प्रेम और

अध्यवसायने कठिन मार्ग कितना सुगम कर दिया। मैं उसे इतना सच्चरित्र, इतना दृढ़ सङ्कल्प, इतना कर्त्तव्यशील कभी न बना सकता। यह स्वावलम्बनका फल है। मेरा विष उसके लिये अमृत हो गया। कितना विनयशील हँसमुख, निस्पृह, और चतुर युवक है! मुझे तो अब उसके साथ बैठते भी संकोच होता है। मेरा सौभाग्य कैसा उदय हुआ है। मैं विराट् जगत्को किसी पैशाचिक शक्तिके अधीन समझता था जो दीन प्राणियोंके साथ बिल्ली और चूहेका खेल खेलती है। हा मूर्खता, हा अज्ञान! आज मुझ जैसा पापी मनुष्य इतना सुखी है। इसमें सन्देह नहीं, इस जगत्का स्वामी दया और कृपाका महासागर है। प्रातःकाल मुझे उस देवीसे साक्षात् होगा जिसके साथ जीवनके क्या क्या सुख नहीं भोगे! मेरे पोते और पोतियां मेरी गोदमें खेलेंगी। मित्रगण मेरा स्वागत करेंगे। ऐसे दयामय भगवानको म मङ्गलका मूल समझता था।

इन विचारोंमें पड़े हुए जीवनदासको नीन्द आ गयी। जब आंखें खुलीं तो "लखनऊ" की प्रिय और चिरपरिचित ध्वनि कानोंमें आयी। वे चौंककर उठ बैठे। लखनदास असबाब उतरवा रहे थे। स्टेशनके बाहर उनकी फिटन खड़ी थी। दोनों आदमी उसपर बैठे। जीवनदासका हृदय आह्लादसे भर रहा था। वे मौन रूप बैठे हुए थे मानों समाधिमें हों।

फिटन चली। जीवनदासको प्रायः सभी चीजें नयी मालूम होती थीं। न वे बाजार न वे गली-कूचे, न वे प्राणी थे। एक युगा-

न्तरसा हो गया था। निदान उन्हें एक रमणीक बङ्गलासा दिखाई पड़ा, जिसके द्वारपर मोटे अक्षरोंमें अङ्कित था।

"जीवनदास पाठशाला"

जीवनदासने विस्मित होकर पूछा—"यह क्या है ?"

लखनदासने कहा—"माताजीने आपके स्मृतिरूप यह पाठ-शाला खोली हैं। कई लड़के छात्रवृत्ति पाते हैं।"

जीवनदासका दिल और भी बैठ गया। मुंहसे एक ठण्डी सांस निकल आयी।

थोड़ी देरके बाद फिटन रुकी, लखनदास उतर पड़े। नौकरोंने असबाब उतारना शुरू किया। जीवनदासने देखा तो एक पक्का दोमंजिला मकान था। उनके पुराने खपरैलवाले घरका कोई चिह्न न था। केवल एक नीमका वृक्ष बाकी था। दो कोमल बालक 'बाबूजी' कहते हुए दौड़े और लखनदासके पैरोंसे लिपट गये। घरमें एक हलचलसी मच गयी। दीवानखाना खुल गया जो खूब सजा हुआ था। दीवानखानेके पीछे एक सुन्दर पुष्पवाटिका थी। जीवनदास ऐसे चकित हो रहे थे मानों कोई तिलिस्म देख रहे हो!

६

रात्रिका समय था। बारह बज चुके थे। जीवनदासको किसी करवट नींद न आती थी। अपने जीवनका चित्र उनके साम-ने था। इन पन्द्रह वर्षोंमें उन्होंने जो कांटे बोये थे वे इस समय

उनके हृदयमें चुभ रहे थे। जो गढ़े खोदे थे वे उन्हें निगलनेके लिये मुंह खोले हुए थे। उनकी दशामें एक ही दिनमें घोर परि-वर्तन हो गया था। अभक्ति और अविश्वासकी जगह विश्वास-का अभ्युदय हो गया था; और यह विश्वास केवल मानसिक न था, वरन् प्रत्यक्ष था। ईश्वरीय न्यायका भय एक भयंकर मूर्तिके सदृश उनके सामने खड़ा था। उससे बचनेकी अब उन्हें कोई युक्ति नजर न आती थी। अबतक उनकी स्थिति उस आगकी चिनगारीके समान थी जो किसी मरुभूमिपर पड़ी हुई हो। उससे हानिकी कोई शङ्का न थी लेकिन आज वह चिनगारी एक खलिहानके पास पड़ी हुई थी। मालूम नहीं कब वह प्रज्ज्वलित होकर खलिहानको भस्मीभूत कर दे।

ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, यह भय ग्लानिका रूप धारण करता जाता था। "हा शोक! मैं इस योग्य भी नहीं कि इस साक्षात् क्षमा और दयाको अपना कलुषित मुंह दिखाऊं। उसने मुझपर सदैव करुणा और वात्सल्यकी दृष्टि रखी और यह शुभ दिन दिखाया। मेरी कालिमा उसकी उज्ज्वल कीर्तिपर एक काला दाग है। मेरी कलुषता क्या इस मङ्गल चित्रको कलुषित न कर देगी। मेरी पापाग्निके स्पर्शसे क्या यह हराभरा उद्यान मटियामेट न हो जायगा? मेरी अपकीर्ति कभी-न-कभी प्रगट होकर इस कुलकी मर्यादा और सम्मानको नष्ट न कर देगी? मेरे जीवनसे अब किसको सुख है? कदाचित् भगवान्ने मुझे लज्जित करनेके लिये, मुझे अपनी तुच्छताको अवगत करनेके लिये, मेरे गलेमें

अनुतापकी फांसी डालनेके लिये यह अद्भुत लीला दिखायी है। हा! इसी कुलकी मर्यादा-रक्षाके लिये भीषण हत्याएं की थीं? क्या अब जीवित रहकर इसकी वह दुर्दशा कर दूं जो मरकर भी न कर सका? मेरे हाथ खूनसे लाल हो रहे हैं। परमात्मन्! वह खून रंग न लागे। यह हृदय पापोंके कीटाणुसे जर्जर हो रहा है। भगवन्, यह कुल उसके छूतसे बचा रहे।"

इन विचारोंने जीवनदासमें ग्लानि और भयके भावोंको इतना उत्तेजित किया कि वह विकल हो गये। जैसे परती भूमिमें बीजका असाधारण विकास और प्रसार होता है, उसी तरह विश्वासहीन हृदयमें जब विश्वासका बीज पड़ता है तो उसमें सजीवता और विकासका प्रादुर्भाव होता है। उसमें विचारके बदले व्यवहारका प्राधान्य होता है। आत्म-समर्पण उसका विशेष लक्ष्य होता है। जीवनदासको अपने चारों तरफ एक सर्वव्यापी शक्ति, एक विराट् आत्माका अनुभव हो रहा था। प्रतिक्षण उनकी कल्पना सजग और प्रदीप्त होती जाती थी। अपने जीवनकी घटनाएं ज्वाला शिखा बन-बनकर उस घरकी ओर, उस मंगल और आनन्दके निवास-भवनकी ओर दौड़ती हुई जान पड़ती थी मानों उसे निगल जायंगी।

पूर्वकी ओर आकाश अरुण वर्ण हो रहा था। जीवनदासकी आंखें भी अरुण थीं। वे घरसे निकले। हाथमें केवल एक धोती थी। उन्होंने अपने अनिष्टमय अस्तित्वको मिटा देनेका निश्चय कर लिया था। अपनी पापाग्निकी आंचसे अपने परिवारको

बचानेका सङ्कल्प कर चुके थे। प्राणपणसे अपने आत्मशोक और हृदयदाहको शान्त करनेपर उद्यत हो गये थे।

सूर्योदय हो रहा था। उसी समय जीवनदास गोमतीकी लहरोंमें समा गये।

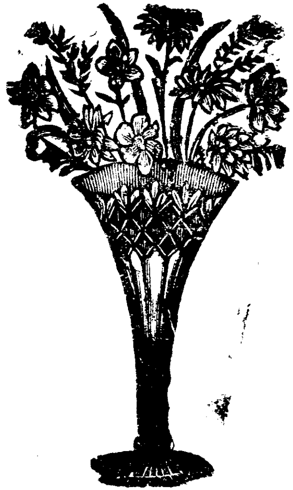

बैरका अन्त

१

रामेश्वर राय अपने बड़े भाईके शवको खाटसे नीचे उतारते हुए छोटे भाईसे बोले—तुम्हारे पास कुछ रुपये हों तो लाओ, दाह-क्रियाकी फिक्र करें, मैं तो बिलकुल खाली हाथ हूं।

छोटे भाईका नाम विश्वेश्वर राय था। वह एक जमींदारका कारिन्दा था, आमदनी अच्छी थी। बोले—आधे रुपये मुझसे ले लो। आधे तुम निकालो।

रामेश्वर—मेरे पास रुपये नहीं हैं।

विश्वेश्वर—तो फिर इनके हिस्सेके खेत रेहन रख दो।

रामे०—तो जाओ, कोई महाजन ठीक करो। देर न लगे।

विश्वेश्वर रायने अपने एक मित्रसे कुछ रुपये उधार लिये, उस वक्तका काम चला। पीछे फिर कुछ रुपये लिये, खेतकी लिखा-पढ़ी कर दी। कुल पांच बीघे जमीन थी। ३००) मिले। गांवके लोगोंका तो अनुमान है कि क्रिया-कर्ममें मुश्किलसे १००) उठे होंगे, पर विश्वेश्वर रायने षोडशीके दिन ३०१) का लेखा भाईके सामने रख दिया। रामेश्वर रायने चकित होकर पूछा—सब रुपये उठ गये?

विश्वे०—क्या मैं इतना नीच हूं कि मरनेके रुपयोंमें भी कुछ उठा रखूंगा। किसको यह धन पचेगा?

रामेश्वर-नहीं, मैं तुम्हें बेईमान नहीं बनाता, खाली पूछता था।

विश्वे०—कुछ शक हो तो जिस बनियेसे चीजें ली गई हैं उससे पूछ लो।

२

साल भरके बाद एक दिन विश्वेश्वर रायने भाईसे कहा—रुपये हों तो लाओ, खेत छुड़ा लें।

रामे०—मेरे पास रुपये कहांसे आये। घरका हाल तुमसे छिपा थोड़े ही है।

विश्वे०—तो मैं सब रुपये देकर जमीन छोड़ाये लेता हूं। जब तुम्हारे पास रुपये हों, आधा देकर अपनी आधी जमीन मुझसे ले लेना।

रामे०—अच्छी बात है, छोड़ा लो।

३० साल गुजर गये। विश्वेश्वर राय जमीनको भोगते रहे, उसे खाद-गोबरसे खूब सजाया।

उन्होंने निश्चय कर लिया था कि अब यह जमीन न छोड़ूंगा। मेरा तो इसपर मौरूसी हक हो गया। अदालतसे भी कोई नहीं ले सकता। रामेश्वर रायने कई बार यत्न किया कि रुपये देकर अपना हिस्सा ले लें—पर ३० सालमें वे कभी १५०) जमा न कर सके।

मगर अब रामेश्वर रायका बड़ा लड़का जागेश्वर कुछ

संभल गया था। वह गाड़ी लादनेका काम करने लगा था और इस काममें उसे अच्छा नफा भी होता था। उसे अपने हिस्से-की रात-दिन चिन्ता लगी रहती थी। अन्तमें उसने रात-दिन श्रम करके यथेष्ट धन बटोर लिया और एक दिन चचासे बोला—काका, अपने रुपये ले लीजिये। मैं अपना नाम चढ़वा लूँ।

विश्वेश्वर—अपने बापके तुम्हीं चतुर बेटे नहीं हो। इतने दिनोंतक कान न हिलाये, जब मैंने जमीनको सोना बना लिया तब हिस्सा बटाने चले हो।

रामे०—तुमने जमीनको सोना बना दिया तो उसका नफा भी तो उठाया। मैं तुमसे मांगने तो नहीं गया था।

विश्वे०—तो अब जमीन न मिलेगी।

रामे०—भाईका हक मारकर कोई सुखी नहीं रहता।

विश्वे०—जमीन हमारी है। भाईकी नहीं है।

जागे०—तो आप सीधेसे न दीजियेगा ?

विश्वे०—न सीधेसे दूंगा, न टेढ़ेसे दूंगा। अदालत करो।

जागे०—अदालत करनेका मुझे सामर्थ्य नहीं है, पर इतना कहे देता हूं कि जमीन चाहे मुझे न मिले, पर आपके पास भी न रहेगी।

विश्वे०—यह धमकी जाकर किसी औरको दो।

जागे०—फिर यह न कहियेगा कि भाई होकर बैरी हो गया।

विश्वे०—एक हजार गांठमें रखकर तब जो कुछ जीमें आये करना।

जागे०—मैं गरीब आदमी हजार रुपये कहांसे लाऊंगा, पर कभी-कभी भगवान दीनोंपर दयालु हो जाते हैं।

विश्वे०—मैं इस डरसे बिल नहीं खोद रहा हूं।

रामेश्वर राय तो चुपका हो रहा, पर जागेश्वर इतना क्षमा-शील न था। वकीलोंसे बात-चीत की। वह अब आधी नहीं, सब जमीनपर दांत लगाये हुए था।

मृत सिद्धेश्वर रायके एक लड़की तपेश्वरी थी। अपने जीवन-कालमें वे उसका विवाह कर चुके थे। उसे कुछ मालूम ही न था कि बापने क्या छोड़ा और किसने लिया। क्रिया-कर्म अच्छी तरह हो गया; वह इसीमें खुश थी। षोडशीमें आई थी। फिर ससुराल चली गई। ३० वर्ष हो गये। न किसीने बुलाया, न वह मैके आई। ससुरालकी दशा भी अच्छी न थी। पतिका देहान्त हो चुका था। लड़के भी अल्प वेतनपर नौकर थे। जागे-श्वरने अपनी फूफीको उभारना शुरू किया। वह उसीको मुद्दई बनाना चाहता था।

तपेश्वरीने कहा—बेटा, मुझे भगवानने जो दिया है उसीमें मगन हूं। मुझे जगह-जमीन न चाहिये। मेरे पास अदालत करने-को धन नहीं है।

जागे०—रुपये मैं लगाऊंगा, तुम खाली दावा कर दो।

तपेश्वरी—भैया तुम्हें लड़ाकर किसी कामका न रखेंगे।

जागे०—यह नहीं देखा जाता कि वे जायदाद लेकर मजे उड़ावें और हम मुंह ताकें। मैं अदालतका खर्च दे दूंगा। इस

जमीनके पीछे बिक जाऊंगा, पर उनका गला न छोड़ूंगा।

तपेश्वरी—अगर जमीन मिल भी गयी तो तुम अपने रुपयोंके एवजमें ले लोगे, मेरे हाथ क्या लगेगा। मैं भाईसे क्यों बुरी बनूं।

जागे०—जमीन आप ले लीजियेगा। मैं केवल चचा साहबका घमण्ड तोड़ना चाहता हूं।

तपेश्वरी—अच्छा जाओ, मेरी तरफसे दावा कर दो।

जागेश्वरने सोचा, जब चचा साहेबकी मुट्ठीसे जमीन निकल जायेगी तब मैं दस-पांच रुपये सालपर इनसे ले लूंगा। इन्हें अभी कौड़ी नहीं मिलती। जो कुछ मिलेगा उसीको बहुत समझेंगी। दूसरे दिन दावा कर दिया। मुंसिफके इजलासमें मुकद्दमा पेश हुआ। विश्वेश्वर रायने सिद्ध किया कि तपेश्वरी सिद्धेश्वर रायकी कन्या ही नहीं है। गांवके आदमियोंपर विश्वेश्वरका दबाव था। सब लोग उनसे रुपये-पैसे उधार ले जाते थे। मामले-मुकद्दमेमें उनसे सलाह लेते थे। सबने अदालतमें बयान किया कि हम लोगोंने कभी तपेश्वरीको नहीं देखा। सिद्धेश्वरके कोई लड़की ही न थी। जागेश्वरने बड़े बड़े वकीलोंसे पैरवी करायी, बहुत धन खर्च किया लेकिन मुंसिफने उसके विरुद्ध फैसला सुनाया। बेचारा हताश हो गया। विश्वेश्वरकी अदालतमें सबसे जान पहचान थी। जागेश्वरको जिस कामके लिये मुट्ठियों रुपये खर्च करने पड़ते थे वह विश्वेश्वर मुरौवतमें करा लेता था।

जागेश्वरने अपील करनेका निश्चय किया। रुपये न थे। गाड़ी बैल बेच डाले। अपील हुई। महीनों मुकद्दमा चला। बेचारा सुबहसे शामतक कचहरीके अमलों और वकीलोंकी खुशामद किया करता, रुपये भी उठ गये, महाजनोंसे ऋण लिया। बारे अबकी उसकी डिग्री हो गयी। पांच सौका बोझ सिरपर हो गया था, पर जीतने आंसू पोंछ दिये।

विश्वेश्वर रायने हाईकोर्टमें अपील की। जागेश्वरको अब कहींसे रुपये न मिले। विवश होकर अपने हिस्सेकी जमीन रेहन रखी। फिर घर बेचनेकी नौबत आयी। यहांतक कि स्त्रियोंके गहने भी बिक गये। अन्तमें हाईकोर्टसे भी उसकी जीत हो गयी। आनन्दोत्सवमें बची-खुची पूंजी भी निकल गयी। एक हजारपर पानी फिर गया। हां, सन्तोष यही था कि ये पांचों बीघे मिल गये। तपेश्वरी क्या इतनी निर्दय हो जायगी कि थाली मेरे सामनेसे खींच ले।

लेकिन खेतोंपर अपना नाम चढ़ते ही तपेश्वरीकी नीयत बदली। उसने एक दिन गांवमें आकर पूछ-ताछ की तो मालूम हुआ कि पांचों बीघे १००) में उठ सकते हैं। लगान केवल २५) था। ७५) सालका नफा था। इस रकमने उसे विचलित कर दिया। उसने असामियोंको बुलाकर उनके साथ जमीनका बन्दोबस्त कर दिया। जागेश्वर राय हाथ मलता रह गया। आखिर उससे न रहा गया। बोला—फूफीजी, आपने जमीन तो दूसरोंको दे दी, अब मैं कहां जाऊं?

तपेश्वरी—बेटा, पहले अपने घरमें दिया जलाकर तब मस-जिदमें जलाते हैं। इतनी जगह मिल गयी तो मैकेसे नाता हो गया, नहीं तो कौन पूछता?

जागेश्वर—मैं तो उजड़ गया!

तपेश्वरी—जिस लगानपर और लोग ले रहे हैं उसमें दो-चार रुपये कम करके तुम्हीं क्यों नहीं ले लेते।

जागे०—मैं ऐसा समझता तो इस झगड़ेमें ही न पड़ता।

तपेश्वरी तो दो-चार दिनमें बिदा हो गयी। रामेश्वर रायपर बज्रपात-सा हो गया। बुढ़ापेमें मजदूरी करनी पड़ी। मान-मर्यादा-से हाथ धोया। रोटियोंके लाले पड़ गये। बाप-बेटे दोनों प्रातः-कालसे सन्ध्यातक मजदूरी करते तब कहीं आग जलती। दोनोंमें बहुधा तकरार हो जाती। रामेश्वर राय सारा अपराध बेटेके सिर रखता। बेटा कहता, आपने मुझे रोका होता तो मैं क्यों इस विपत्तिमें फँसता। उधर विश्वेश्वर रायने महाजनोंको उकसा दिया। साल भी न गुजरने पाया था कि बेचारे निराधार हो गये—जमीन निकल गयी, घर नीलाम हो गया, दस-बीस पेड़ थे वे भी नीलाम हो गये। चौबेजी दूबे बनने चले, दरिद्र हो गये। इस-पर विश्वेश्वर रायके ताने और भी गजब ढाते। यह विपत्तिका सबसे नोकदार काँटा था, आतङ्कका सबसे निर्दय आघात था।

५

दो सालतक इस दुखी परिवारने जितनी मुसीबतें झेलीं, यह उन्हींका दिल जानता है। कभी पेटभर भोजन न मिला। हाँ,

इतनी आन थी कि नीयत नहीं बदली। दरिद्रताने सब कुछ किया, पर आत्माका पतन न कर सकी। कुल-मार्यादामें आत्मरक्षाकी बड़ी शक्ति होती है।

एक दिन सन्ध्या-समय दोनों आदमी बैठे आग ताप रहे थे कि सहसा एक आदमीने आकर कहा—ठाकुर चलो, विश्वेश्वर राय तुम्हें बुलाते हैं।

रामेश्वर रायने उदासीन भावसे कहा—मुझे क्यों बुलायेंगे। मैं उनका कौन होता हूँ। क्या कोई और उपद्रव खड़ा करना चाहते हैं?

इतनेमें दूसरा आदमी दौड़ा हुआ आकर बोला—ठाकुर जल्दी चलो, विश्वेश्वर रायकी दशा अच्छी नहीं है।

विश्वेश्वर रायको इधर कई दिनोंसे खाँसी बुखारकी शिका-यत थी, लेकिन शत्रुओंके विषयमें हमें किसी अनिष्टकी शङ्का नहीं होती। रामेश्वर और जागेश्वर कभी कुशल-समाचार पूछने भी न गये। कहते, उन्हें हुआ क्या है, अमीरोंको धनका रोग होता है, जब आराम करनेको जी चाहा, पलंगपर लेट रहे, दूधमें साबूदाना उबालकर मिश्री मिलाकर खाया और फिर उठ बैठे। विश्वेश्वर रायकी दशा अच्छी नहीं है, यह सुनकर भी दोनों जगहसे न हिले। रामेश्वर रायने कहा—दशाको क्या हुआ है। आराममें पड़े बातें तो कर रहे हैं।

जागे०—किसी बैद-हकीमको बुलाने भेजना चाहते होंगे। शायद बुखार तेज हो गया हो।

रामे०—यहाँ किसे इतनी फुरसत है। सारा गांव तो उनका हितू है, जिसे चाहें भेज दूं।

जागे०—हर्ज ही क्या है। ज़रा जाकर सुन आऊं।

रामे०—जाकर थोड़े उपले बटोर लाओ, चूल्हा जले, फिर जाना। ठकुरसोहाती करनी आती तो आज यह दशा न होती।

जागेश्वरने टोकरी उठाई और हारको तरफ चला कि इतनेमें विश्वेश्वर रायके घरसे रोनेकी आवाजें आने लगीं। उसने टोकरी फेंक दी और दौड़ा हुआ चचाके घरमें जा पहुंचा। देखा तो उन्हें लोग चारपाईसे नीचे उतार रहे थे। जागेश्वरको ऐसा ज्ञात पड़ा, मेरे मुँहमें कालिख लगी हुई है। वह आंगनसे दालानमें चला आया और दीवारसे मुंह छिपाकर रोने लगा। युवावस्था आवेशमय होती है, क्रोधसे आग हो जाती है तो करुणासे पानी भी हो जाती है।

६

विश्वेश्वर रायके तीन बेटियां थीं। उनके विवाह हो चुके थे। तीन पुत्र थे, वे अभी छोटे थे। सबसे बड़ेकी उम्र १० वर्षसे अधिक न थी। माता भी जीवित थी। खानेवाले तो चार थे, कमानेवाला कोई न था। देहातमें जिसके घरमें दोनों जून चूल्हा जले वह धनी समझा जाता है। उसके धनका अनुमान करनेमें भी अत्युक्तिसे काम लिया जाता है। लोगोंका विचार था कि विश्वेश्वर रायने हज़ारों रुपये जमा कर लिये हैं। पर वास्तवमें वहां कुछ न था। आमदनीपर सबकी निगाह रहती है, खर्चको

कोई नहीं देखता। उन्होंने लड़कियोंके विवाह खूब दिल खोलकर किये थे। भोजन-वस्त्रमें, मेहमानों और नातेदारोंके आदर-सत्कारमें उनकी सारी आमदनी गायब हो जाती थी। अगर गांवमें अपना रोब जमानेके लिये दो-चार सौ रुपयोंका लेनदेन कर लिया था तो कई महाजनोंका कर्ज भी था। यहांतक कि छोटी लड़कीके विवाहमें अपनी जमीन भी गिरो रख दी थी।

सालभरतक तो विधवाने ज्यों-त्यों करके बच्चोंका भरण-पोषण किया—गहने बेचकर काम चलाती रही, पर जब यह आधार भी न रहा तब कष्ट होने लगा। निश्चय किया कि तीनों लड़कोंको तीनों कन्याओंके पास भेज दूं। रही अपनी जान, उसकी क्या चिन्ता। तीसरे जून भी पावभर आटा मिल जायगा तो दिन कट जायंगे। लड़कियोंने पहले तो भाइयोंको प्रेमसे रखा, किन्तु तीन महीनोंसे ज्यादा कोई न रख सकी। उनके घरवाले चिढ़ते थे और अनाथोंको मारते थे। लाचार होकर माताने लड़कोंको बुला लिया।

छोटे-छोटे लड़के दिन दिनभर भूखे रह जाते। किसीको कुछ खाते देखते तो घरमें जाकर मासे मांगते। फिर मासे मांगना छोड़ दिया। खानेवालोंहीके सामने जाकर खड़े हो जाते और क्षुधित नेत्रोंसे देखते। कोई तो मुट्ठीभर चबेना निकालकर दे देता पर प्रायः लोग दुत्कार देते थे।

जाड़ोंके दिन थे। खेतोंमें मटरकी फलियां लगी हुई थीं। एक दिन तीनों लड़के एक खेतमें घुसकर मटर उखाड़ने लगे। किसानने

देख लिया, दयावान आदमी था। खुद एक बोझ मटर उखाड़कर विश्वेश्वर रायके घरपर लाया और ठकुराइनसे बोला—काकी, लड़कोंको डांट दो, किसीके खेतमें न जाया करें। जागेश्वर राय उसी समय अपने द्वारपर बैठा चिलम पी रहा था, किसानको मटर लाते देखा—तीनों बालक पिल्लोंकी भांति पीछे-पीछे दौड़े चले आते थे। उसकी आंखें सजल हो गयीं। घरमें जाकर पितासे बोला—चाचीके पास अब कुछ नहीं रहा, लड़के भूखों मर रहे हैं।

रामेश्वर—तुम त्रिया-चरित्र नहीं जानते। यह सब दिखावा है। जन्मभरकी कमाई कहां उड़ गयी?

जागे०—अपना काबू चलते हुए कोई लड़कोंको भूखों नहीं मार सकता।

रामे०—तुम क्या जानो। बड़ी चतुर औरत है।

जागे०—लोग हमीं लोगोंको हंसते होंगे।

रामे०—हंसीकी लाज है तो जाकर छांह कर लो, खिलाओ पिलाओ। है दम?

जागे०—न भर पेट खायेंगे, आधे ही पेट सही। बदनामी तो न होगी। चचासे लड़ाई थी। लड़कोंने हमारा क्या बिगाड़ा है?

रामे०—वह चुड़ैल तो अभी जीती है न?

जागेश्वर चला आया। उसके मनमें कई बार यह बात आयी थी कि चाचीकी कुछ सहायता दिया करूं। पर उनकी जली-कटी बातोंसे डरता था। आजसे उसने एक नया ढङ्ग निकाला

है। लड़कोंको खेलते देखता तो बुला लेता, कुछ खानेको दे देता। मजूरोंको दोपहरकी छुट्टी मिलती है। अब वह इस अवकाशके समय काम करके मजूरीके पैसे कुछ ज्यादा पा जाता। घर चलते समय खानेकी कोई-न-कोई चीज लेता आता और अपने घरवालोंकी आंख बचाकर उन अनाथोंको दे देता। धीरे धीरे लड़के उससे इतने हिल-मिल गये कि उसे देखते ही 'भैया, भैया' कहकर दौड़ते, दिनभर उसकी राह देखा करते। पहले माता डरती थी कि कहीं मेरे लड़कोंको बहलाकर ये महाशय पुरानी अदावत तो नहीं निकालना चाहते। वह लड़कोंको जागेश्वरके पास जाने और उससे कुछ लेकर खानेसे रोकती, पर लड़के शत्रु और मित्रको बूढ़ोंसे ज्यादा पहचानते हैं। लड़के मांके मना करनेकी परवा न करते, यहांतक कि शनैः शनैः माताको भी जागेश्वरकी सहृदयतापर विश्वास आ गया।

एक दिन रामेश्वर रायने बेटेसे कहा—तुम्हारे पास रुपये बढ़ गये हैं तो चार पैसे जमा क्यों नहीं करते। लुटाते क्यों हो?

जागेश्वर—मैं तो एक-एक कौड़ीकी किफायत करता हूं।

रामे०—जिन्हें अपना समझ रहे हो वे एक दिन तुम्हारे शत्रु होंगे।

जागे०—आदमीका धर्म भी तो कोई चीज है। पुराने वैरपर एक परिवारकी भेंट नहीं कर सकता। मेरा बिगड़ता ही क्या है, यही न, रोज घन्टे दो घन्टे और मिहनत करनी पड़ती है।

रामेश्वरने मुंह फेर लिया। जागेश्वर घरमें गया तो उसकी

स्त्रीने कहा—अपने मनकी ही करते हो। चाहे कोई कितना ही समझाये। पहले घरमें आदमी दिया जलाता है।

जागे०—लेकिन यह तो उचित नहीं कि अपने घरमें दियाकी जगह मोमबत्तियां जलायें और मसजिदको अंधेरा ही छोड़ दें।

स्त्री—मैं तुम्हारे साथ क्या पड़ी, मानों कुएँमें गिर पड़ी। कौन सुख देते हो? गहने उतार लिये, अब सांस भी नहीं लेते।

जागे०-मुझे तुम्हारे गहनोंसे भाइयोंकी जान ज्यादा प्यारी है।

स्त्रीने मुंह फेर लिया और बोली—वैरीकी सन्तान कभी अपनी नहीं होती।

जागेश्वरने बाहर जाते हुए उत्तर दिया—वैरका अन्त वैरीके जीवनके साथ हो जाता है।

नाग-पूजा

[१]

प्रातःकाल था। आषाढ़का पहला दौंगड़ा निकल गया था। कीट-पतंग चारों तरफ रेंगते दिखायी देते थे। तिलोत्तमाने वाटिकाकी ओर देखा तो वृक्ष और पौधे ऐसे निखर गये थे जैसे साबुनसे मैले कपड़े निखर जाते हैं। उनपर एक विचित्र आध्यात्मिक शोभा छायी हुई थी मानों योगीवर आनन्दमें मग्न खड़े हों। चिड़ियोंमें भी असाधारण चंचलता थी। डाल-डाल, पात-पात चहकती फिरती थीं। तिलोत्तमा बागमें निकल आयी। वह भी उन्हीं पक्षियोंकी भांति चंचल हो गयी थी। कभी किसी पौधेको देखती, कभी किसी फूलपर पड़ी हुई जलकी बूंदोंको हिलाकर अपने मुंहपर उनके शीतल छींटे डालती। लाल वीरबहूटियां रेंग रही थीं। वह उन्हें चुनकर हथेलीपर रखने लगी। सहसा उसे एक काला वृहत्काय साँप रेंगता हुआ दिखायी दिया। उसने चिल्लाकर कहा—अम्मा, अम्मा, नागजी जा रहे हैं। लाओ थोड़ा-सा दूध उनके लिये कटोरेमें रख दूं।

अम्माने कहा—जाने दो बेटी, हवा खाने निकले होंगे।

तिलोत्तमा—गरमियोंमें कहां चले जाते हैं? दिखायी नहीं देते।

मा—कहीं जाते नहीं बेटा, अपनी बांबीमें पड़े रहते हैं।

तिलोत्तमा—और कहीं नहीं जाते ?

मा—बेटी, हमारे देवता हैं और कहीं क्यों जायंगे ? तुम्हारे जन्मके सालसे ये बराबर यहीं दिखायी देते हैं। किसीसे नहीं बोलते। बच्चा पाससे निकल जाय, पर ज़रा भी नहीं ताकते। आजतक कोई चुहिया भी नहीं पकड़ी।

तिलोत्तमा—तो खाते क्या होंगे ?

मा—बेटी, ये लोग हवापर रहते हैं। इसीसे इनकी आत्मा दिव्य हो जाती है। अपने पूर्वजन्मकी बातें इन्हें याद रहती हैं। आनेवाली बातोंको भी जानते हैं। कोई बड़ा योगी जब अहंकार करने लगता है तो उसे दण्डस्वरूप इस योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जबतक प्रायश्चित्त पूरा नहीं होता, तबतक वह इसी योनिमें रहता है। कोई-कोई तो सौ-सौ दो-दो सौ वर्षतक जीते रहते हैं।

तिलोत्तमा—इनकी पूजा न करो तो क्या करें ?

मा—बेटी, कैसी बच्चोंकीसी बातें करती हो। नाराज़ हो जायँ तो सिरपर न जाने क्या विपत्ति आ पड़े। तेरे जन्मके साल पहले-पहल दिखायी दिये थे। तबसे सालमें दस-पांच बार अवश्य दर्शन दे जाते हैं। इनका ऐसा प्रभाव है कि आजतक किसीके सिरमें दर्दतक नहीं हुआ।

२

कई वर्ष हो गये। तिलोत्तमा बालिकासे युवती हुई, विवाह-

का शुभ अवसर आ पहुंचा। बरात आयी, विवाह हुआ, तिलोत्तमाके पति-गृह जानेका मुहूर्त्त आ पहुंचा।

नई वधूका श्रृङ्गार हो रहा था। भीतर-बाहर हलचल मची हुई थी। ऐसा जान पड़ता था भगदर पड़ी हुई है। तिलोत्तमाके हृदयमें वियोग-दुःखकी तरंगें उठ रही हैं। वह एकान्तमें बैठकर रोना चाहती है। आज माता-पिता, भाई-बन्द, सखियां-सहेलियां सब छूट जायंगी। फिर मालूम नहीं, कब मिलनेका संयोग हो। न जाने अब कैसे आदमियोंसे पाला पड़ेगा। न जाने उनका स्वभाव कैसा होगा। न जाने कैसा बर्ताव करेंगे। अम्माकी आंखें एक क्षण भी न थमेंगी। मैं एक दिनके लिये कहीं चली जाती थी तो वे रो-रोकर व्यथित हो जाती थीं। अब यह जीवन-पर्यन्तका वियोग कैसे सहेंगी ? उनके सिरमें दर्द होता था तो जबतक मैं धीरे-धीरे न मलूँ, उन्हें किसी तरह कल चैन ही न पड़ती थी। बाबूजीको पान बनाकर कौन देगा ? मैं जबतक भोजन न बनाऊं उन्हें कोई चीज़ रुचती ही न थी। अब उनका भोजन कौन बनायेगा ? मुझसे इनको देखे बिना कैसे रहा जायगा ? यहां ज़रा सिरमें दर्द भी होता था तो अम्मा और बाबूजी घबरा जाते थे। तुरंत वैद्य-हकीम आ जाते थे। वहां न जाने क्या हाल होगा। भगवन्, बन्द घरमें कैसे रहा जायगा ? न जाने वहां खुली छत है या नहीं। होगी भी तो मुझे कौन सोने देगा ? भीतर घुट-घुटकर मरूंगी। सोनेमें ज़रा देर हो जायगी तो ताने मिलेंगे। यहां सुबहको कोई जगाता था तो अम्मा कहती थीं सोने दो, कच्ची

नींद जाग जायगी तो सिरमें पीड़ा होने लगेगी। वहां व्यंग सुनने पड़ेंगे, बहू आलसी है। दिनभर खाटपर पड़ी रहती है। वे (पति) तो बहुत सुशील मालूम होते हैं। हां कुछ अभिमानी अवश्य हैं। कहीं उनका स्वभाव निठुर हुआ तो……

सहसा उसकी माताने आकर कहा—बेटी, तुमसे एक बात कहनेकी याद न रही। वहां नाग-पूजा अवश्य करती रहना। घरके और लोग चाहे मना करें; पर तुम इसे अपना कर्त्तव्य समझना। अभी मेरी आंखें ज़रा-ज़रा झपक गयी थीं। नाग बाबाने स्वप्नमें दर्शन दिये।

तिलोत्तमा—अम्मा, मुझे भी उनके दर्शन हुए हैं, पर मुझे तो उन्होंने बड़ा विकराल रूप दिखाया। बड़ा भयङ्कर स्वप्न था।

मा—देखना तुम्हारे घरमें कोई सांप न मारने पाये। यह मन्त्र नित्य अपने पास रखना।

तिलोत्तमा अभी कुछ जवाब न देने पायी थी कि अचानक बरातकी ओरसे रोनेके शब्द सुनाई दिये, एक क्षणमें हाहाकार मच गया। भयङ्कर शोक-घटना हो गयी। वरको सांपने काट लिया। वह बहूको बिदा कराने आ रहा था। पालकीमें मसनदके नीचे एक काला सांप छिपा हुआ था। वर ज्योंही पालकीमें बैठा, सांपने काट लिया।

चारों ओर कुहराम मच गया। तिलोत्तमापर तो मानों वज्रपात हो गया। उसकी मा सिर पीट-पीट रोने लगी। उसके पिता बाबू जगदीशचन्द्र मूर्च्छित होकर गिर पड़े। हृद्रोगमें पहले-

होसे ग्रस्त थे। झाड़ फूंक करनेवाले आये, डाक्टर बुलाये गये, पर विष घातक था। ज़रा देरमें वरके होंठ नीले पड़ गये, नख काले हो गये, मूर्च्छायें आने लगीं। देखते-देखते शरीर ठण्डा पड़ गया। इधर ऊषाकी लालिमाने प्रकृतिको आलोकित किया, उधर टिमटिमाता हुआ दीपक बुझ गया।

जैसे कोई मनुष्य बोरोंसे लदी हुई नावपर बैठा हुआ मनमें झुंझलाता है कि यह और तेज़ क्यों नहीं चलती, कहीं आरामसे बैठनेकी जगह नहीं, यह इतनी हिल क्यों रही है, मैं व्यर्थ ही इसमें बैठा, पर अकस्मात् नावको भँवरमें पड़ते देखकर उसके मस्तूलसे चिपट जाता है, वही दशा तिलोत्तमाकी हुई। अभीतक वह वियोग-दुःखोंमें ही मग्न थी, ससुरालके कष्टों और दुर्व्यवस्थाओंकी चिन्तामें पड़ी हुई थी। पर, अब उसे होश आया कि इस नावके साथ मैं भी डूब रही हूं। एक क्षण पहले वह कदाचित् जिस पुरुषपर झुंझला रही थी, जिसे लुटेरा और डाकू समझ रही थी, वह अब कितना प्यारा था। उसके बिना अब जीवन एक दीपक था; बुझा हुआ। एक वृक्ष था; फल-फूल-विहीन। अभी एक क्षण पहले वह दूसरोंकी ईर्ष्याका कारण थी, अब दया और करुणाका।

थोड़े ही दिनोंमें उसे ज्ञात हो गया कि मैं पति-विहीन होकर संसारके सब सुखोंसे वंचित हो गयी।

३

एक वर्ष बीत गया। जगदीशचन्द्र एक धर्म्मावलम्बी आदमी

थे, पर तिलोत्तमाका वैधव्य उनसे न सहा गया। उन्होंने तिलोत्तमाके पुनर्विवाहका निश्चय कर लिया। हंसनेवालोंने तालियां बजायीं; पर जगदीश बाबूने दृढ़तासे काम लिया। तिलोत्तमापर सारा घर जान देता थे। उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई बात न होने पाती, यहांतक कि वह घरकी मालकिन बना दी गयी थी। सभी ध्यान रखते कि उसका रंज ताजा न होने पाये। लेकिन उसके चेहरेपर उदासी छायी रहती थी जिसे देखकर लोगोंको दुःख होता था। पहले तो मा भी इस सामाजिक अत्याचारपर सहमत न हुई; लेकिन बिरादरीवालोंका विरोध ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, उसका विरोध ढीला पड़ता गया। सिद्धान्त-रूपसे तो प्रायः किसीको भी आपत्ति न थी, किन्तु उसे व्यवहारमें लानेका साहस किसीमें न था। कई महीनोंके लगातार प्रयासके बाद एक कुलीन सिद्धान्तवादी, सुशिक्षित वर मिला। उसके घरवाले भी राजी हो गये। तिलोत्तमाको समाजमें अपना नाम बिकते देखकर दुःख होता था। वह मनमें कुढ़ती थी कि पिताजी नाहक मेरे लिये समाजमें नक्कू बन रहे हैं। अगर मेरे भाग्यमें सुहाग लिखा होता तो यह वज्र ही क्यों गिरता। उसे कभी-कभी ऐसी शङ्का होती थी कि मैं फिर विधवा हो जाऊंगी। जब विवाह निश्चित हो गया और वरकी तस्वीर उसके सामने आयी तो उसकी आंखोंमें आंसू भर आये। चेहरेसे कितनी सज्जनता, कितनी दृढ़ता, कितनी विचारशीलता टपकती थी। वह चित्रको लिये हुए माताके पास गयी और शर्मसे सिर झुकाकर बोली, अम्मा मुझे मुंह तो न

खोलना चाहिये पर अवस्था ऐसी आ पड़ी है कि बिना मुंह खोले रहा नहीं जाता। आप बाबूजीको मना कर दें। मैं जिस दशामें हूं सन्तुष्ट हूं। मुझे ऐसा भय हो रहा है कि अबकी फिर वही शोक-घटना……

माने सहमी हुई आंखोंसे देखकर कहा—बेटी कैसे असगुनकी बात मुंहसे निकाल रही हो। तुम्हारे मनमें भय समा गया है, इसीसे यह भ्रम होता है। जो होनी थी वह हो चुकी। अब क्या ईश्वर तुम्हारे पीछे पड़े ही रहेंगे?

तिलोत्तमा—हां, मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है।

मा—क्यों, तुम्हें ऐसी शङ्का क्यों होती है?

तिलोत्तमा—क्या जाने क्यों? कोई मेरे मनमें बैठा हुआ कह रहा है कि फिर अनिष्ट होगा। मैं प्रायः नित्य डरावने स्वप्न देखा करती हूं। रातको मुझे ऐसा जान पड़ता है कि कोई प्राणी जिसकी सूरत सांपसे बहुत मिलती जुलती है, मेरी चारपाईके चारों ओर घूमता है। मैं भयके मारे चुप्पी साध लेती हूं। किसीसे कुछ कहती नहीं।

माने समझा यह सब भ्रम है। विवाहकी तिथि नियत हो गयी। यह केवल तिलोत्तमाका पुनर्संस्कार न था बल्कि समाज-सुधारका एक क्रियात्मक उदाहरण था। समाज-सुधारकोंके दल दूर-दूरसे विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये आने लगे, विवाह वैदिक रीतिसे हुआ। मेहमानोंने खूब व्याख्यान दिया। पत्रोंने खूब आलोचनायें कीं। बाबू जगदीशचन्द्रके नैतिक साहसकी

सराहना होने लगी। तीसरे दिन वधूके बिदा होनेका मूहूर्त्त था।

जनवासेमें यथासाध्य रक्षाके सभी साधनोंसे काम लिया गया था। बिजलीकी रोशनीसे सारा जनवासा दिन-सा हो गया था। भूमिपर रेंगती हुई चींटी भी दिखायी देती थी। फर्शोंमें न कहीं शिकन थी न सिलवट और न झोल। शामियानेके चारों तरफ कनातें खड़ी कर दी गई थीं। किसी तरफसे कीड़ों-मकोड़ों-के आनेकी सम्भावना न थी। पर भावी प्रबल होती है। प्रातः-कालके चार बजे थे। तारगणोंकी बरात बिदा हो रही थी। बहूकी बिदाईकी तैयारियां हो रही थीं। एक तरफ शहनाइयां बज रही थीं। दूसरी तरफसे विलापकी आर्त्तध्वनि उठ रही थी। पर तिलोत्तमाकी आंखोंमें आंसू न थे। समय नाजुक था। वह किसी तरह घरसे बाहर निकल जाना चाहती थी। उसके सिर-पर तलवार लटक रही थी। रोने और सहेलियोंसे गले मिलनेमें कोई आनन्द न था। जिस प्राणीका फोड़ा बिलक रहा हो उसे जर्राहका घर बागमें सैर करनेसे ज्यादा अच्छा लगे तो क्या आश्चर्य है।

वरको लोगोंने जगाया। बाजा बजने लगे। वह पालकीमें बठनेको चला कि वधूकी बिदा करा लाये। पर जूतेमें पैर डाला ही था कि चीख मारकर पैर खींच लिया। मालूम हुआ पाँव चिंगारियोंपर पड़ गया। देखा तो एक काला साँप जूतेमेंसे निकलकर रेंगता चला जाता था। देखते-देखते गायब हो

गया। वरने एक सर्द आह भरी और बैठ गया। आँखोंमें अँधेर छा गया।

एक क्षणमें सारे जनवासेमें खबर फैल गयी। लोग दौड़ पड़े, औषधियां पहलेसे ही रख ली गयी थीं। साँपका मन्त्र जाननेवाले कई आदमी बुला लिये गये थे। सभोंने दवाइयाँ दीं। झाड़-फूँक शुरू हुई। औषधियां भी दी गयीं। पर कालके सामने किसीका वश न चला। शायद मौत सांपका भेष धरकर आयी थी। तिलोत्तमाने सुना तो सिर पीट लिया। वह विकल होकर जनवासेको तरफ दौड़ी। चादर ओढ़नेकी भी सुधि न रही। वह अपने पतिके चरणोंको माथेसे लगाकर अपना जन्म सफल करना चाहती थी। घरकी स्त्रियोंने रोका। माता भी रो-रोकर समझाने लगी। लेकिन बाबू जगदीशचन्द्रने कहा—कोई हरज नहीं, जाने दो। पतिका दर्शन तो कर ले। यह अभिलाषा क्यों रह जाय। उस शोकान्वित दशामें तिलोत्तमा जनवासेमें पहुंची पर वहां उसकी तस्कीनके लिये केवल मरनेवालेकी उलटी सांसें थीं। उन अधखुले नेत्रोंमें असह्य आत्मवेदना थी और दारुण नैराश्य।

४

इस अद्भुत घटनाका समाचार दूर दूरतक फैल गया। जड़-वादीगण चकित थे कि यह क्या माजरा है। आत्मवादके भक्त ज्ञातभावसे सिर हिलाते थे मानों वे त्रिकालदर्शी हैं। जगदीश-चन्द्रने नसीब ठोंक लिया। निश्चय हो गया कि कन्याके भाग्यमें

विधवा रहना ही लिखा है। नागकी पूजा सालमें दो बार होने लगी। तिलोत्तमाके चरित्रमें भी एक विशेष अन्तर दीखने लगा। भोग और विहारके दिन भक्ति और देवाराधनामें कटने लगे। निराश प्राणियोंका यही अवलम्ब है।

तीन साल बीते थे कि ढाका विश्वविद्यालयके अध्यापक दयारामने इस किस्सेको फिर ताज़ा किया। वे पशु-शास्त्रके ज्ञाता थे। उन्होंने सांपोंके आचार-व्यवहारका विशेष रीतिसे अध्ययन किया था। वे इस रहस्यको खोलना चाहते थे। जगदीशचन्द्रको विवाहका संदेशा भेजा। उन्होंने टाल-मटोल किया। दयारामने और भी आग्रह किया। लिखा, मैंने वैज्ञानिक अन्वेषणके लिये यह निश्चय किया है। मैं इस विषधर नागसे लड़ना चाहता हूँ। वह अगर सौ दाँत लेकर आये तो भी मुझे कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। वह मुझे काटकर आप ही मर जायगा। अगर वह मुझे काट भी ले तो मेरे पास ऐसे यंत्र और औषधियाँ हैं कि मैं एक क्षणमें उसके विषको उतार सकता हूं। आप इस विषयमें कुछ चिन्ता न कीजिये। मैं विषके लिये अजेय हूं। जगदीशचन्द्र-को अब कोई उज्र न सूझा। हां, उन्होंने एक विशेष प्रयत्न यह किया कि ढाकेमें ही विवाह हो। अतएव वे अपने कुटुम्बियोंको साथ लेकर विवाहके एक सप्ताह पहले ढाका पहुंच गये। चलते समय अपने सन्दूक बिस्तर आदि खूब देख-भालकर रखे कि साँप कहीं उनमें छिपकर न बैठ जाय। शुभ लग्नमें विवाह-संस्कार हो गया। तिलोत्तमा विकल हो रही थी। मुखपर एक रंग आता

था एक रंग जाता था पर संस्कारमें कोई विघ्न-बाधा न पड़ी। तिलोत्तमा रो-धोकर ससुराल गयी। जगदीशचन्द्र घर लौट आये पर ऐसे चिन्तित थे जैसे कोई आदमी सरायमें खुला हुआ सन्दूक छोड़कर बाजार चला जाय।

तिलोत्तमाके स्वभावमें अब एक विचित्र रूपान्तर हुआ। वह औरोंसे हंसती बोलती आरामसे खाती-पीती। सैर करने जाती, थियेटरों और अन्य सामाजिक सम्मेलनोंमें शरीक होती। इन अवसरोंपर प्रोफेसर दयारामसे भी बड़े प्रेमका व्यवहार करती, उनके आरामका बहुत ध्यान रखती। कोई काम उनकी इच्छाके विरुद्ध न करती। कोई अजनबी आदमी उसे देखकर कह सकता था, गृहिणी हो तो ऐसी हो। दूसरोंकी दृष्टिमें इस दम्पतिका जीवन आदर्श था, किन्तु आन्तरिक दशा कुछ और ही थी। उनके साथ शयनागारमें जाते ही उसका मुख विकृत हो जाता, भौंहें तन जातीं, माथेपर बल पड़ जाते, शरीर अग्निकी भांति जलने लगता, पलकें खुली रह जातीं, नेत्रोंसे ज्वाला सी निकलने लगती और उसमेंसे झुलसती हुई लपटें निकलतीं, मुखपर कालिमा छा जाती और यद्यपि स्वरूपमें कोई विशेष अंतर न दिखायी देता; पर न जाने क्यों भ्रम होने लगता, यह कोई नागिन है। कभी-कभी वह फुंकारने भी लगती। इस स्थितिमें दयारामको उसके समीप जाने या उससे कुछ बोलनेकी हिम्मत न पड़ती। वे उसके रूप-लावण्यपर मुग्ध थे, किन्तु इस अवस्थामें उन्हें उससे घृणा होती। उसे इसी उन्मादके आवेशमें छोड़कर बाहर निकल

आते। डाक्टरोंसे सलाह ली, स्वयं इस विषयकी कितनीही किताबोंका अध्ययन किया; पर रहस्य कुछ समझमें न आया उन्हें भौतिक विज्ञानमें अपनी अल्पज्ञता स्वीकार करनी पड़ी।

उन्हें अब अपना जीवन असह्य जान पड़ता। अपने दुस्साहस-पर पछताते, नाहक इस विपत्तिमें अपनी जान फँसायी। उन्हें शङ्का होने लगी कि यह अवश्य कोई प्रेत-लीला है। मिथ्यावादी न थे, पर जहां बुद्धि और तर्कका कुछ वश नहीं चलता, वहां मनुष्य विवश होकर मिथ्यावादी हो जाता है।

शनैः शनैः उनकी यह हालत हो गयी कि सदैव तिलोत्तमासे सशङ्क रहते। उसकी उन्माद-विकृत मुखाकृति उनके ध्यानसे न उतरती। डर लगता कि कहीं यह मुझे मार न डाले। न जाने कब उन्मादका आवेग हो। यह चिन्ता हृदयको व्यथित किया करती। हिप्नाटिज्म, विद्युतशक्ति और कई नये आरोग्य-विधानों-की परीक्षा की गयी। उन्हें हिप्नाटिज्मपर बहुत भरोसा था; लेकिन जब यह योग भी निष्फल हो गया तो वे निराश हो गये।

५

एक दिन प्रो० दयाराम किसी वैज्ञानिक सम्मेलनमें गये हुए थे। लौटे तो बारह बज गये थे। वर्षाके दिन थे। नौकर-चाकर सो रहे थे। वे तिलोत्तमाके शयनगृहमें यह पूछने गये कि मेरा भोजन कहां रखा है। अन्दर कदम रखा ही था कि तिलोत्तमाके सिरहानेकी ओर उन्हें एक अति भीमकाय काला सांप बैठा हुआ

दिखाई दिया। प्रो० साहब चुपकेसे लौट आये। अपने कमरेमें जाकर किसी औषधिकी एक खूराक पी और पिस्तौल और सांगा लेकर फिर तिलोत्तमाके कमरेमें पहुंचे। विश्वास हो गया कि यह वही मेरा पुराना शत्रु है। इतने दिनोंमें टोह लगाता हुआ यहां आ पहुंचा है। पर इसे तिलोत्तमासे क्यों इतना स्नेह है। उसके सिरहाने यों बैठा हुआ है मानों कोई रस्सीका टुकड़ा है। यह क्या रहस्य है। उन्होंने सांपोंके विषयमें बड़ी अद्भुत कथाएं पढ़ी और सुनी थीं, पर ऐसी कुतूहलजनक घटनाका उल्लेख कहीं न देखा था। वे इस भांति सशस्त्र होकर फिर कमरेमें पहुंचे तो सांपका पता न था। हां, तिलोत्तमाके सिरपर भूत सवार हो गया था। वह बैठी हुई आग्नेय नेत्रोंसे द्वारकी ओर ताक रही थी। उसके नयनोंसे ज्वाला निकल रही थी, जिसकी आंच दो गजतक लगती थी। इस समय उन्माद अतिशय प्रचण्ड था। दयारामको देखते ही वह बिजलीकी तरह उनपर टूट पड़ी और हाथोंसे आघात करनेके बदले उन्हें दांतोंसे काटनेकी चेष्टा करने लगी। इसके साथ ही अपने दोनों हाथ उनकी गरदनमें डाल दिये। दयारामने बहुतेरा चाहा, एड़ी चोटीतकका जोर लगाया कि अपना गला छुड़ा लें, लेकिन तिलोत्तमाका बाहुपाश प्रतिक्षण सांपकी गेंडलीकी भांति कठोर एवं संकुचित होता जाता था। उधर यह भय था कि इसने मुझे काटा तो कदाचित् इसे जानसे हाथ धोना पड़े। उन्होंने अभी जो औषधि पी थी वह सर्पविषसे कहीं अधिक घातक थी। इस दशामें उन्हें यह शोकमय विचार

उत्पन्न हुआ। यह भी कोई जीवन है कि दम्पतिका उत्तरदायित्व तो सब सिरपर सवार, पर उसका सुख नामको भी नहीं, उलटे रात-दिन जानका खटका। यह क्या माया है? वह सांप कोई प्रेत तो नहीं है जो इसके सिर आकर यह दशा कर दिया करता हो। कहते हैं ऐसी अवस्थामें रोगीपर जो चोट की जाती है वह प्रेतपर हो पड़ती है। नीची जातियोंमें इसके उदाहरण भी देखे हैं। वे इसी हैस-बैसमें पड़े थे कि उनका दम घुटने लगा। तिलोत्तमाके हाथ रस्सीके फन्दोंकी भांति उनकी गरदनको कस रहे थे। वे दीन, असहाय भावसे इधर-उधर ताकने लगे। क्योंकर जान बचे; कोई उपाय न सूझ पड़ता था। सांस लेना दुस्तर हो गया। देह शिथिल पड़ गयी, पैर थरथराने लगे। सहसा तिलोत्तमाने उनके बांहोंकी ओर मुँह बढ़ाया। दयाराम कांप उठे। मृत्यु आंखोंके सामने नाचने लगी। मनमें कहा, यह इस समय मेरी स्त्री नहीं; विषैली, भयंकर नागिन है। इसके विषसे जान बचनी मुश्किल है। अपनी औषधिपर जो भरोसा था वह जाता रहा। चूहा उन्मत्त दशामें काट लेता है तो जानके लाले पड़ जाते हैं। भगवन्! कितना विकराल स्वरूप है! प्रत्यक्ष नागिन मालूम हो रही है। अब उल्टी पड़े या सीधी, इस दशाका अन्त करना हो पड़ेगा। उन्हें ऐसा जान पड़ा अब गिरा ही चाहता हूं। तिलोत्तमा बार-बार साँपोंकी भाँति फुंकार मारकर, जीभ निकाले हुए उनकी ओर झपटती थी। एकाएक वह बड़े करकश स्वरसे बोली—"मूर्ख! तेरा इतना साहस कि तू इस सुन्दरीसे प्रेमालिङ्गन करे!" यह कहकर वह बड़े वेगसे काटने दौड़ी। दयारामका धैर्य जाता रहा। उन्होंने दाहिना हाथ सीधा किया और तिलोत्तमाकी छातीपर पिस्तौल चला दिया। तिलोत्तमापर कुछ असर न हुआ। उसकी बाँहें और भी कड़ी हो गयीं, आँखोंसे चिनगारियां निकलने लगीं। दयारामने दूसरी गोली दाग दी। यह चोट पूरी पड़ी। तिलोत्तमाका बाहु-बन्धन ढीला पड़ गया। एक क्षणमें उसके हाथ नीचेको लटक गये, सिर झुक गया और वह भूमिपर गिर पड़ी।

तब वह दृश्य देखनेमें आया जिसका उदाहरण कदाचित् अलिफ लैला और चन्द्रकान्तामें भी न मिले। वहीं, पलंगके पास, जमीनपर एक काला, दीर्घकाय सर्प पड़ा तड़प रहा था। उसकी छाती और मुँहसे खूनकी धारा बह रही थी।

दयारामको अपनी आँखोंपर विश्वास न आता था। यह कैसी अद्भुत प्रेतलीला थी। समस्या क्या है? किससे पूछूं? इस तिलिस्मको तोड़नेका प्रयत्न करना मेरे जीवनका एक कर्तव्य हो गया। उन्होंने सांगेसे साँपकी देहमें एक कोंचा मारा और फिर वे उसे लटकाये हुए आँगनमें लाये। बिलकुल बेदम हो गया था। उन्होंने उसे अपने कमरेमें ले जाकर एक खाली सन्दूकमें बन्द कर दिया। उसमें भुस भरवाकर बरामदेमें लटकाना चाहते थे। इतना बड़ा गेहुंवन साँप किसीने न देखा होगा।

तब वे तिलोत्तमाके पास गये। डरके मारे कमरेमें कदम रखनेकी हिम्मत न पड़ती थी। हाँ, इस विचारसे कुछ तस्कीन

होती थी कि सर्परूपी प्रेत मर गया है तो उसकी जान बच गयी होगी। इस आशा और भयकी दशामें वे अन्दर गये तो तिलोत्तमा आईनेके सामने खड़ी केश सँवार रही थी।

दयारामको मानों चारों पदार्थ मिल गये। तिलोत्तमाका मुख-कमल खिला हुआ था। उन्होंने कभी उसे इतना प्रफुल्लित न देखा था। उन्हें देखते ही वह उनकी ओर प्रेमसे चली और बोली—"आज इतनी राततक कहां रहे?"

दयाराम प्रेमोन्मत्त होकर बोले—"एक जलसेमें चला गया था। तुम्हारी तबीयत कैसी है? कहीं दर्द तो नहीं है?"

तिलोत्तमाने उनको आश्चर्यसे देखकर पूछा—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ? मेरी छातीमें ऐसा दर्द हो रहा है; जैसे चिलक पड़ गयी हो।"

स्वत्व-रक्षा

१

मीर दिलावर अलीके पास एक बड़ी रासका कुम्मैत घोड़ा था। कहते तो वह यही थे कि मैंने अपनी जिन्दगीकी आधी कमाई इसपर खर्च की है, पर वास्तवमें उन्होंने इसे पलटनमें सस्ते दामों मोल लिया था। यों कहिये कि यह पलटनका निकाला हुआ घोड़ा था। शायद पलटनके अधिकारियोंने उसे अपने यहां रखना उचित न समझकर नीलाम कर दिया था। मीरसाहब कचहरीमें मुहर्रिर थे। शहरके बाहर मकान था। कचहरीतक आनेमें तीन मीलकी मंजिल तय करनी पड़ती थी, एक जानवरकी फिक्र थी। यह घोड़ा सुभीतेसे मिल गया, ले लिया। पिछले तीन वर्षोंसे वह मीरसाहबकी ही सवारीमें था। देखनेमें तो उसमें कोई ऐब न था, पर कदाचित् आत्म-सम्मानकी मात्रा अधिक थी। उसे उसकी इच्छाके विरुद्ध या अपमान-सूचक काममें लगाना दुस्तर था। खैर, मीरसाहबने सस्ते दामों कलां रासका घोड़ा पाया, तो फूले न समाये। लाकर द्वारपर बांध दिया। साईसका इन्तजाम करना कठिन था। बेचारे खुद ही शाम-सवेरे उसपर दो-चार हाथ फेर लेते थे। शायद घोड़ा इस सम्मानसे प्रसन्न होता था और इसी कारण रातिबकी मात्रा बहुत कम होनेपर भी वह असंतुष्ट नहीं जान पड़ता था। उसे मीरसाहबसे कुछ सहानुभूति हो

गयी थी। इस स्वामी-भक्तिमें उसका शरीर बहुत कुछ क्षीण हो चुका था; पर वह मीरसाहबको नित्य नियत समयपर प्रसन्नता पूर्वक कचहरी पहुंचा दिया करता था। उसकी चाल उसके आत्मिक संतोषकी द्योतक थी। दौड़ना वह अपनी स्वाभाविक गम्भीरताके प्रतिकूल समझता था। उसकी दृष्टिमें उच्छृङ्खलता थी। स्वामि-भक्तिमें उसने अपने कितने ही चिर-संचित स्वत्वोंका बलिदान कर दिया था। अब अगर किसी स्वत्वसे प्रेम था, तो वह रविवारका शान्ति-निवास था। मीरसाहब एतवारको कचहरी न जाते थे। घोड़ेको मलते, नहलाते, तैराते थे। इसमें उसे हार्दिक आनन्द प्राप्त होता था। कहाँ कचहरीमें पेड़के नीचे बँधे हुए सूखी घासपर मुँह मारना पड़ता था; लूसे सारा शरीर झुलस जाता था; कहां इस दिन छप्परोंकी शीतल छांहमें हरी-हरी दूब खानेको मिलती थी। अतएव एतवारको आराम करना वह अपना हक समझता था और मुमकिन न था कि कोई उसका यह हक छीन सके। मीरसाहबने कभी-कभी बाजार जानेके लिये इस दिन उस-पर सवार होनेकी चेष्टा की, पर इस उद्योगमें बुरी तरह मुंहकी खायी। घोड़ने मुंहमें लगामतक न ली। अन्तको मीरसाहबने अपनी हार स्वीकार कर ली। वह उसके आत्म-सम्मानको आघात पहुंचाकर अपने अवयवोंको परीक्षामें न डालना चाहते थे।

२

मीरसाहबके पड़ोसमें एक मुंशी सौदागरलाल रहते थे। उनका भी कचहरीसे ही कुछ सम्बन्ध था। वह मुहर्रिर न थे, कर्मचारी भी न थे। उन्हें किसीने कभी कुछ लिखते-पढ़ते न देखा था। पर उनका वकीलों और मुख्तारोंके समाजमें बड़ा मान था। मीरसाहबसे उनकी दाँत-काटी रोटी थी।

जेठका महीना था। बरातोंकी धूम थी। बाजेवाले सीधे मुंह बात न करते थे। आतशबाजके द्वारपर गरजके बावले लोग चर्खी-की भांति चक्कर लगाते थे। भाँड़ और कथक लोगोंको उंगलियों-पर नचाते थे। पालकीके कहार पत्थरके देवता बने हुए थे; भेंट लेकर भी न पसीजते थे। इसी सहालगोंकी धूममें मुंशीजीने भी लड़केका विवाह ठान दिया। दबाववाले आदमी थे। धीरे-धीरे बारातके और सब समान तो जुटा लिये, पर पालकीका प्रबन्ध न कर सके। कहारोंने ऐन वक्तपर बयाना लौटा दिया। मुंशीजी बहुत गरम पड़े, हरजानेकी धमकी दी; पर कुछ फल न हुआ। विवश होकर यही निश्चय किया कि वरको घोड़ेपर बिठाकर वर-यात्राकी रस्में पूरी कर ली जायं। छः बजे शामको बरात चलनेका मुहूर्त्त था। चार बजे मुंशीजीने आकर मीरसाहबसे कहा—"यार अपना घोड़ा दे दो, वरको स्टेशनतक पहुंचा दे। पालकी तो कहीं मिलती ही नहीं।"

मीरसाहबने कहा—"आपको मालूम नहीं, आज एतवारका दिन है।"

मु०—"मालूम क्यों नहीं है, पर आखिर घोड़ा ही तो ठहरा। किसी-न-किसी तरह स्टेशनतक पहुंचा ही देगा। कौन दूर जाना है?"

मीर०—"यों आपका जानवर है ले जाइए। पर मुझे उम्मेद नहीं कि आज वह पुट्ठे पर हाथतक रखने दे।"

मु०—"अजी मारके आगे भूत भागता है। आप डरते हैं। इसीलिये आपसे बदमाशी करता है। बच्चा पीठपर बैठ जायँगे तो कितना ही उछले-कूदे पर उन्हें हिला न सकेगा।"

मीर०—अच्छी बात है, ले जाइये। अगर उसकी यह जिद्द आप लोगोंने तोड़ दी, तो मैं आपका बड़ा एहसान मानूंगा।

३

मगर ज्योंही मुंशीजी अस्तबलमें पहुंचे, घोड़ेने सशङ्क नेत्रोंसे देखा और एक बार हिनहिनाकर घोषित किया कि तुम आज मेरी शांतिमें विघ्न डालनेवाले कौन होते हो। बाजेकी धड़-धड़, पों-पोंसे वह पहले ही उत्तेजित हो रहा था। मुंशीजीने जब उसके पगहेको खोलना शुरू किया तो उसने कनौतियाँ खड़ी कीं और अभिमान-सूचक भावसे फिर हरी-हरी घास खाने लगा।

लेकिन मुंशीजी भी चतुर खिलाड़ी थे। तुरन्त घरसे थोड़ा सा दाना मँगवाया और घोड़के सामने रख दिया। घोड़ेने इधर बहुत दिनोंसे दानेकी सूरत न देखी थी। बड़ी रुचिसे खाने लगा और तब कृतज्ञ नेत्रोंसे मुंशीजीकी ओर ताका; मानों अनुमति दी कि मुझे आपके साथ चलनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

मुंशीजीके द्वारपर बाजे बज रहे थे। वर वस्त्राभूषण पहने हुए घोड़ेकी प्रतीक्षा कर रहा था। मुहल्लेकी स्त्रियां उसे विदा करनेके लिये आरती लिये खड़ी थीं। पांच बज गये थे। सहसा मुंशीजी घोड़ा लाते हुए दिखायी दिये। बाजेवालोंने आगेकी तरफ कदम बढ़ाया। एक आदमी मीरसाहबके घरसे दौड़कर साज लाया।

घोड़ेको खींचनेकी ठहरी, मगर वह लगामको देखकर मुंह फेर-फेर लेता था। मुंशीजीने चुमकारा पुचकारा, पीठ सुहलायी, फिर दाना दिखाया। पर घोड़ेने मुंहतक न खोला, तब उन्हें क्रोध आ गया। ताबड़तोड़ कई चाबुक लगाये। घोड़ेने जब अब भी मुंहमें लगाम न ली; तो उन्होंने उसके नथनोंपर चाबुकके बेंटसे कई बार मारा। नथनोंसे खून निकलने लगा। घोड़ेने इधर-उधर दीन और विवश आंखोंसे देखा। समस्या कठिन थी। इतनी मार उसने कभी न खायी थी। मीर साहबकी अपनी चीज थी। वह इतनी निर्दयतासे कभी न पेश आते थे। सोचा, मुंह नहीं खोलता तो नहीं मालूम और कितनी मार पड़े। लगाम ले ली। फिर क्या था, मुंशीजीकी फतेह हो गयी। उन्होंने तुरंत जीन भी कस दी। दूल्हा कूदकर घोड़ेपर सवार हो गया।

४

जब वरने घोड़ेकी पीठपर आसन जमा लिया, तो घोड़ा मानों नींदसे जागा। विचार करने लगा, थोड़ेसे दानोंके बदले अपने इस स्वत्वसे हाथ धोना एक कटोरेभर कढ़ीके लिये अपने जन्म-सिद्ध अधिकारोंको बेचना है। उसे याद आया कि मैं कितने दिनोंसे आजके दिन आराम करता रहा हूं, तो आज क्यों यह

बेगार करूं ! ये लोग मुझे न जाने कहां ले जायंगे; लौंडा आसनका पक्का जान पड़ता है; मुझे दौड़ायेगा, एड़ें लगायेगा, चाबुकसे मार मारकर अधमुआ कर देगा; फिर न जाने भोजन मिले या नहीं। यह सोच-विचार कर उसने निश्चय किया कि मैं यहांसे कदम ही न उठाऊंगा। यही न होगा मारेंगे, सवारको लिये हुए जमीनपर लोट जाऊंगा, आप ही छोड़ देंगे। मेरे मालिक मीरसाहब भी तो यहीं कहीं होंगे। उन्हें मुझपर इतनी मार पड़नी कभी पसन्द न आयेगी कि कल उन्हें कचहरी भी न ले जा सकूं।

वर ज्योंही घोड़ेपर सवार हुआ स्त्रियोंने मंगल गान किया, फूलोंकी वर्षा हुई। बरातके लोग आगे बढ़े। मगर घोड़ा ऐसा अड़ा कि पैर ही नहीं उठाता। वर उसे एड़ें लगाता है, चाबुक मारता है, लगामकी झटकें देता है, मगर घोड़ेके कदम मानों जमीनमें ऐसे गड़ गये हैं कि उखड़नेका नाम ही नहीं लेते।

मुंशीजीको ऐसा क्रोध आता था कि अपना जानवर होता तो गोली मार देते। एक मित्रने कहा—"अड़ियल जानवर है, यों न चलेगा। इसके पीछेसे डंडे लगाओ, आप दौड़ेगा।"

मुंशीजीने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। पीछेसे जाकर कई डंडे लगाये, पर घोड़ेने पैर न उठाये; उठाये भी तो अगले पैर और आकाशकी ओर। दो-एक बार पिछले पैर भी जिससे विदित होता था कि वह बिलकुल प्राणहीन नहीं है। मुंशीजी बाल-बाल बच गये।

तब दूसरे मित्रने कहा—"इसकी पूंछके पास एक जलता हुआ कुन्दा चलाओ, आंचके डरसे भागेगा।" यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ। फल यह हुआ कि घोड़ेकी पूंछ जल गयी। वह दो-तीन बार उछला-कूदा पर आगे न बढ़ा, पक्का सत्याग्रही था। कदाचित् इन यंत्रणाओंने उसके संकल्पको और भी दृढ़ कर दिया।

इतनेमें सूर्यास्त होने लगा। मुन्शीजीने कहा "जल्दी कीजिये, नहीं तो मुहूर्त्त चला जायगा।" लेकिन अपने वशकी बात तो थी नहीं। जल्दी कैसे होती। बराती लोग गांवके बाहर जा पहुंचे। यहां स्त्रियों और बालकोंका मेला लग गया। लोग कहने लगे—"कैसा घोड़ा है कि पग ही नहीं उठाता।" एक अनुभवी महाशयने कहा—"मार-पीटसे काम न चलेगा। थोड़ा-सा दाना मँगवाइये। एक आदमी इसके सामने तोबड़में दाना दिखाता हुआ चले। दानेके लालचसे खट-खट चला जायगा।" मुंशीजीने यह उपाय भी कर देखा, पर सफलमनोरथ न हुए। घोड़ा अपने स्वत्वको किसी दामपर बेचना न चाहता था। एक दूसरे महाशयने कहा—"इसे थोड़ी-सी शराब पिला दीजिये। नशेमें आकर खूब चौकड़ियां भरने लगेगा।" शराबकी बोतल आयी। एक तसलेमें शराब उँडेलकर घोड़ेके सामने रखी गयी, पर उसने सूंघातक नहीं।

अब क्या हो ? चिराग जल गये। मुहूर्त्त टल चुका था। घोड़ा यह नाना दुर्गतियां सहकर दिलमें खुश होता था और अपने सुख-

में विघ्न डालनेवालोंकी दुरवस्था और व्यग्रताका आनन्द उठा रहा था। उसे इस समय इन लोगोंकी यत्नशीलतापर एक दार्शनिक आनन्द प्राप्त हो रहा था। देखें आप लोग अब क्या करते हैं। वह जानता था कि अब मार खानेकी संभावना नहीं है। लोग जान गये कि मारना व्यर्थ है। वह केवल उनकी सुयुक्तियोंकी विवेचना कर रहा था।

पाँचवें सज्जनने कहा—"अब एक ही तरकीब और है। वह जो खेतोंमें खाद फेंकनेकी दो-पहिया गाड़ी होती है, उसे घोड़ेके सामने लाकर रखिये। इसके दोनों अगले पैर उसमें रख दिये जायं और हम लोग गाड़ीको खींचें। तब तो जरूर ही इसके पैर उठ जायंगे। अगले पैर आगे बढ़े, तो पिछले पैर भी झख मारकर उठेंगे ही। घोड़ा चल निकलेगा।"

मुन्शीजी डूब रहे थे। कोई तिनका सहारेके लिये काफी था। दो आदमी गये। दो-पहिया गाड़ी निकाल लाये। वरने लगाम तानी। चार-पांच आदमी घोड़ेके पास डंडे लेकर खड़े हो गये। दो आदमियोंने उसके अगले पांव जबर्दस्ती उठाकर गाड़ीपर रक्खे। घोड़ा अभीतक यही समझ रहा था कि मैं यह उपाय भी न चलने दूंगा; लेकिन जब गाड़ी चली, तो उसके पिछले पैर आप-ही-आप उठ गये। उसे ऐसा जान पड़ा, मानों पानीमें बहा जा रहा हूं। कितना ही चाहता था कि पैरोंको जमा लूं। पर कुछ अक्ल काम न करती थी। चारों ओर शोर मचा—'चला-चला।' तालियां पड़ने लगीं। लोग ठट्ठे मार-मारकर हंसने लगे। घोड़ेको यह उप-

हास और यह अपमान असह्य था; पर करता क्या? हां, उसने धैर्य न छोड़ा। मनमें सोचा इस तरह कहांतक ले जायंगे। ज्योंही गाड़ी रुकेगी मैं भी रुक जाऊंगा। मुझसे बड़ी भूल हुई, मुझे गाड़ीपर पैर ही न रखना चाहिए था।

अन्तमें वही हुआ जो उसने सोचा था। किसी तरह लोगोंने सौ कदमतक गाड़ी खींची। आगे न खींच सके। अगर सौ दो सौ कदम ही खींचना होता तो, शायद लोगोंकी हिम्मत बंध जाती पर स्टेशन पूरे तीन मीलपर था। इतनी दूर घोड़ेको खींच ले जाना दुस्तर था। ज्योंही गाड़ी रुकी घोड़ा भी रुक गया। वरने फिर लगामको झटके दिये, एड़ लगायी, चाबुकोंकी वर्षा कर दी, पर घोड़ेने अपनी टेक न छोड़ी। उसके नथनोंसे खून निकल रहा था, चाबुकोंसे सारा शरीर छिल गया था, पिछले पैरोंमें घाव हो गये थे, पर वह दृढ़प्रतिज्ञ घोड़ा अपनी आनपर अड़ा हुआ था।

५

पुरोहितजीने कहा—"आठ बज गये। मुहूर्त्त टल गया।" दीन दुर्बल घोड़ेने मैदान मार लिया। मुंशीजी क्रोधोन्मत्त होकर रो पड़े। वर एक कदम भी पैदल नहीं चल सकता। विवाहके अवसरपर भूमिपर पांव रखना वर्जित है। प्रतिष्ठा भंग होती है, निन्दा होती है कुलको कलङ्क लगता है। पर अब पैदल चलनेके सिवा अन्य उपाय न था। आकर घोड़ेके सामने खड़े हो गये और कुण्ठित स्वरसे बोले—"महाशय, अपना भाग्य बखानो कि

मीरसाहबके घर हो। यदि मैं तुम्हारा मालिक होता, तो तुम्हारी हड्डी-पसलीका भी पता न लगता। इसके साथ ही मुझे आज मालूम हुआ कि पशु भी अपने स्वत्वकी रक्षा किस प्रकार कर सकता है। मैं न जानता था; तुम इतने व्रतधारी हो। बेटा, उतरो, बरात स्टेशन पहुंच रही होगी। चलो, पैदल ही चलें। हम लोग आपसहीके दस बारह आदमी हैं। हंसनेवाला कोई नहीं। ये रंगीन कपड़े उतार दो। रास्तेमें लोग देखेंगे तो हंसेंगे कि पांव-पांव ब्याह करने जाता है। चल बे अड़ियल घोड़े, तुझे मीरसाहबके हवाले कर आऊं।"

पूर्व-संस्कार

१

सज्जनोंके हिस्सेमें भौतिक उन्नति कभी भूलकर ही आती है। रामटहल विलासी, दुर्व्यसनी, चरित्रहीन आदमी थे; पर सांसारिक व्यवहारोंमें चतुर, सूद-ब्याजके मामलेमें दक्ष और मुकद्दमे-अदालतमें कुशल थे। उनका धन बढ़ता जाता था। सभी उनके असामी थे। उधर उन्हींके छोटे भाई शिवटहल साधुभक्त, धर्म-परायण और परोपकारी जीव थे। उनका धन घटता जाता था। उनके द्वारपर दो-चार अतिथि बने ही रहते थे। बड़े भाईका सारे महल्ले पर दबाव था। जितने नीच श्रेणीके आदमी थे, उनका हुक्म पाते ही फौरन उनका काम करते। उनके घरकी मरम्मत बेगारमें हो जाती। ऋणी कुंजड़े साग-भाजी भेंटमें दे जाते। ऋणी ग्वाला उन्हें बाजार-भावसे ड्योढ़ा दूध देता। छोटे भाईको किसीपर रोष न था। साधु-सन्त आते और इच्छा-पूर्ण भोजन करके अपनी राह लेते। दो-चार आदमियोंको रुपये उधार दिये भी, तो सूदके लालचसे नहीं, बल्कि सङ्कटसे छुड़ानेके लिये। कभी जोर देकर तगादा न करते कि कहीं उन्हें दुःख न हो।

इस तरह कई साल गुजर गये। यहांतक कि शिवटहलकी सारी सम्पत्ति परमार्थमें उड़ गयी। रुपये भी बहुत डूब गये। उधर रामटहलने नया मकान बनवा लिया। सोने-चांदीकी दूकान खोल ली। थोड़ी जमीन भी खरीद ली और खेती-बारी भी करने लगे

शिवटहलको अब चिन्ता हुई, निर्वाह कैसे होगा ? धन न था कि कोई रोजगार करते। वह व्यावहारिक बुद्धि भी न थी, जो बिना धनके भी अपनी राह निकाल लेती है। किसीसे ऋण लेनेकी हिम्मत न पड़ती थी। रोजगारमें घाटा हुआ, तो देंगे कहांसे ? किसी दूसरे आदमीकी नौकरी भी न कर सकते थे। कुल-मर्यादा भंग होती थी। दो-चार महीने तो ज्यों-त्यों करके काटे, अन्तको चारों ओरसे निराश होकर बड़े भाईके पास गये और कहा—"भैया, अब मेरे और मेरे परिवारके पालनका भार आपके ऊपर है। आपके सिवा अब किसकी शरण जाऊं ?"

रामटहलने कहा—"इसकी कोई चिन्ता नहीं। तुमने कुकर्ममें तो धन उड़ाया नहीं। जो कुछ किया, उससे कुलकी कीर्ति ही फैली है। मैं धूर्त हूं; संसारको ठगना जानता हूं। तुम सीधे-सादे आदमी हो। दूसरोंने तुम्हें ठग लिया। यह भी तुम्हारा ही घर है। मैंने जो जमीन ली है, उसकी तहसील-वसूल करो; खेती-बारीका काम संभालो। महीनेमें तुम्हें जितना खर्च पड़े, मुझसे ले जाओ। हां, एक बात मुझसे न होगी। मैं साधु-सन्तोंका सत्कार करनेको एक पैसा भी न दूंगा और न तुम्हारे मुंहसे अपनी निन्दा सुनूंगा।"

शिवटहलने गद्‌गद् कण्ठसे कहा—"भैया, मुझसे इतनी भूल अवश्य हुई है कि मैं सबसे आपकी निन्दा करता रहा हूं; उसे क्षमा करो। [illegible] अपनी निन्दा करते सुनना तो जो चाहे दण्ड देना। हां, आपसे भी मेरी एक विनय है। मैंने अबतक अच्छा किया या बुरा, पर भाभीजीको मना कर देना कि उसके लिये मेरा तिरस्कार न करें।"

रामटहल—"अगर वह कभी तुम्हें ताना देंगी, तो उनकी जीभ खींच लूंगा।"

२

रामटहलकी जमीन शहरसे दस-बारह कोसपर थी। वहां एक कच्चा मकान भी था। बैल, गाड़ी, खेतीकी अन्य सामग्रियां वहीं रहती थीं। शिवटहलने अपना घर भाईको सौंपा और अपने बाल-बच्चोंको लेकर गांवमें चले गये। वहां उत्साहके साथ काम करने लगे। नौकरोंने काममें चौकसी की। परिश्रमका फल मिला। पहले ही साल उपज ड्योढ़ी हो गयी और खेतीका खर्च आधा रह गया।

पर स्वभावको कैसे बदलते ? पहलेकी तरह तो नहीं, पर अब भी कभी दो-चार मूर्तियां शिवटहलकी कीर्ति सुनकर आ ही जाती थीं और शिवटहलको विवश होकर उनकी सेवा और सत्कार करना ही पड़ता था। हां, अपने भाईसे यह बात छिपाते थे कि कहीं वह अप्रसन्न होकर जीविकाका यह आधार भी न छीन लें। फल यह होता कि उन्हें भाईसे छिपाकर नाज, भूसा, खली आदि बेचना पड़ता। इस कमीको पूरा करनेके लिये वह मजदूरोंसे और भी कड़ी मेहनत लेते थे और खुद भी कड़ी मेहनत करते। धूप-ठण्ड, पानी-बूंदीकी बिलकुल परवा न करते थे। मगर कभी इतना परिश्रम तो किया न था। शरीर शक्तिहीन होने

लगा। भोजन भी रूखा-सूखा मिलता था। उसपर कोई ठीक समय नहीं, कभी दोपहरको खाया, तो कभी तीसरे पहर। कभी प्यास लगी, तो तालाबका पानी पी लिया। दुर्बलता रोगका पूर्व-रूप है। बीमार पड़ गये। दिहातमें दवा-दारूका सुभीता न था। भोजनमें भी कुपथ्य करना पड़ता था। रोगने जड़ पकड़ ली। ज्वरने प्लीहाका रूप धारण किया और प्लीहाने ६ महीनेमें काम तमाम कर दिया।

रामटहलने यह शोक-समाचार सुना, तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। इन तीन वर्षोंमें उन्हें एक पैसेका नाज नहीं लेना पड़ा था। शक्कर, गुड़, घी, भूसा-चारा, उपले-ईन्धन सब गांवसे चला आता था। बहुत रोये। पछतावा हुआ कि मैंने भाईके दवा-दर्पनकी कोई फिक्र नहीं की, अपने स्वार्थकी चिन्तामें उसे भूल गया। लेकिन मैं क्या जानता था कि मलेरियाका ज्वर प्राण-घातक ही होगा! नहीं तो यथाशक्ति अवश्य इलाज कराता। भगवान्की यही इच्छा थी। फिर मेरा क्या बस!

३

अब कोई खेतीका संभालनेवाला न था। इधर रामटहलको खेतीका मजा भी मिल गया था। उसपर विलासिताने उनका स्वास्थ्य भी नष्ट कर डाला था। अब वह दिहातके स्वच्छ जल-वायुमें रहना चाहते थे। निश्चय किया कि खुद ही गांवमें जाकर खेती-बारी करूं। लड़का जवान हो गया था। शहरका लेन-देन उसे सौंपा और दिहात चले आये।

यहां उनका समय और चित्त विशेषकर गौओंकी देख-भालमें लगता था। उनके पास एक जमनापारी बड़ी रासकी गाय थी। उसे कई साल हुए, बड़े शौक़से ख़रीदा था। दूध खूब देती थी, और सीधी इतनी कि बच्चा भी सींग पकड़ ले, तो न बोलती। वह इन दिनों गाभिन थी। वह उसे बहुत प्यार करते थे। शाम-सवेरे उसकी पीठ सुहलाते, अपने हाथोंसे नाज खिलाते। कई आदमी उसके ड्योढ़े दाम देते थे, पर रामटहलने न बेचा। जब समयपर गऊने बच्चा दिया, तो रामटहलने धूम-धामसे उसका जन्मोत्सव मनाया; कितने ही ब्राह्मणोंको भोजन कराया। कई दिनतक गाना-बजाना होता रहा। इस बछड़ेका नाम रखा गया 'जवाहिर।' एक ज्योतिषीजीसे उसका जन्म-पत्र भी बनवाया गया। उसके अनुसार बछड़ा बड़ा होनहार, बड़ा भाग्यशाली, स्वामि-भक्त निकला। केवल छठे वर्ष उसपर एक सङ्कटकी शङ्का थी। उससे बच गया तो फिर जीवन-पर्यन्त सुखसे रहेगा।

बछड़ा श्वेत-वर्ण था। उसके माथेपर एक लाल तिलक था। आंखें कजरी थीं। स्वरूपका अत्यन्त मनोहर और हाथ पांवका सुडौल था। दिन-भर किलोलें किया करता। रामटहलका चित्त उसे छलांगें भरते देखकर प्रफुल्लित हो जाता था। वह उनसे इतना हिल-मिल गया कि उनके पीछे-पीछे कुत्तेकी भांति दौड़ा करता था। जब वह शाम या सुबहको अपनी खाटपर बैठकर असामियोंसे बातचीत करने लगते, तो जवाहिर उनके पास खड़ा होकर उनके हाथ या पांवको चाटता था। वह प्यारसे उसकी

पीठपर हाथ फेरने लगते, तो उसकी पूंछ खड़ी हो जाती और आंखें हृदयके उल्लाससे चमकने लगतीं। रामटहलको भी उससे इतना स्नेह था कि जबतक वह उनके सामने चौकेमें न बैठा हो, उन्हें भोजनमें स्वाद न मिलता। वह उसे बहुधा गोदमें चिपटा लिया करते। उसके लिये चांदीका हार, रेशमी झूल चांदीकी झांझें बनवायीं। एक आदमी उसे नित्य नहलाता और झाड़ता-पोंछता रहता था। जब कभी वह किसी कामसे दूसरे गांवोंमें चले जाते तो उन्हें घोड़ेपर आते देखकर जवाहिर कुलेलें मारता हुआ उनके पास पहुंच जाता और उनके पैरोंको चाटने लगता।

पशु और मनुष्यमें यह पिता-पुत्रकासा प्रेम देखकर लोग चकित हो जाते थे।

४

जवाहिरकी अवस्था ढाई वर्षकी हुई। रामटहलने उसे अपनी सवारीकी बहेलीके लिये निकालनेका निश्चय किया। वह अब बछड़ेसे बैल हो गया था। उसका ऊंचा डोल, गठे हुए अङ्ग, सुदृढ़ मांस-पेशियां, गर्दनके ऊपर ऊंचा डील, चौड़ी छाती और मस्तानी चाल थी। ऐसा दर्शनीय बैल सारे इलाकेमें न था। बड़ी मुश्किलसे उसका बायां मिला। पर देखनेवाले साफ कहते थे कि जोड़ नहीं मिला। रुपये आपने बहुत खर्च किये हैं, पर कहां जवाहिर और कहां यह! कहां लैंप और कहां दीपक!

पर कौतूहलकी बात यह थी कि जवाहिरको कोई गाड़ीवान हांकता, तो वह आगे पैर न उठाता। गर्दन हिल-हिलाकर रह

जाता। मगर जब रामटहल आप पगहा हाथमें ले लेते और एक बार चुमकारकर कहते—"चलो बेटा" तो जवाहिर उन्मत्त होकर गाड़ीको ले उड़ता। दो-दो कोसतक बिना रुके, एक ही सांस दौड़ता चला जाता। घोड़े भी उसका मुकाबला न कर सकते।

एक दिन सन्ध्या-समय जब जवाहिर नांदमें खली और भूसा खा रहा था और रामटहल उसके पास खड़े उसकी मक्खियां उड़ा रहे थे, एक साधु महात्मा आकर द्वारपर खड़े हो गये। रामटहल-ने अविनय-पूर्ण भावसे कहा—"यहां क्या खड़े हो महाराज, आगे जाओ!"

साधु—"कुछ नहीं बाबा, इसी बैलको देख रहा हूं। मैंने ऐसा सुन्दर बैल कहीं नहीं देखा।"

रामटहल (ध्यान देकर)—"घरहीका बछड़ा है।"

साधु—"साक्षात् देवरूप है।"

यह कहकर महात्माजी जवाहिरके निकट गये और उसके खुर चूमने लगे।

रामटहल—"आपका शुभागमन कहांसे हुआ? आज यहीं विश्राम कीजिये तो बड़ी दया हो।"

साधु—"नहीं बाबा, क्षमा करो। मुझे एक आवश्यक कार्य-से रेलगाड़ीपर सवार होना है। रातों-रात चला जाऊंगा। ठह-रनेसे विलम्ब होगा।"

रामटहल—"तो फिर और कभी दर्शन होंगे?"

साधु—"हां, तीर्थ-यात्रासे ३ वर्षमें लौटकर इधरसे फिर

जाना होगा। तब आपकी इच्छा होगी तो ठहर जाऊंगा। आप बड़े भाग्यशाली पुरुष हैं कि आपको ऐसे देवरूप नन्दीकी सेवाका अवसर मिल रहा है। इन्हें पशु न समझिये, यह कोई महान् आत्मा हैं। इन्हें कोई कष्ट न दीजियेगा। इन्हें कभी फूलसे भी न मारियेगा।

यह कहकर साधुने फिर जवाहिरके चरणोंपर सीस नवाया और चले गये।

५

उस दिनसे जवाहिरकी और भी खातिर होने लगी। वह पशुसे देवता हो गया। रामटहल उसे पहले रसोईके सब पदार्थ खिलाकर तब आप भोजन करते। प्रातःकाल उठकर उसके दर्शन करते। यहांतक कि वह उसे अपनी बहेलीमें भी न जोतना चाहते। लेकिन जब उनको कहीं जाना होता और बहेली बाहर निकाली जाती, तो जवाहिर उसमें जुतनेके लिये इतना अधीर और उत्कण्ठित हो जाता, सिर हिला-हिलाकर इस तरह अपनी उत्सुकता प्रकट करता कि रामटहलको विवश होकर उसे जोतना पड़ता। दो-एक बार वह दूसरी जोड़ी जोतकर चले गये तो जवाहिरको इतना दुःख हुआ कि उसने दिनभर नांदमें मुंह नहीं डाला। इसलिये वह अब बिना किसी विशेष कार्यके कहीं जाते ही न थे।

उनकी श्रद्धा देखकर गांवके अन्य लोगोंने भी जवाहिरको अन्न-ग्रास देना शुरू किया। सुबह उसके दर्शन करने तो प्रायः सभी आ जाते थे।

इस प्रकार तीन साल और बीते। जवाहिरको छठा वर्ष लगा।

रामटहलको ज्योतिषीकी बात याद थी। भय हुआ कहीं उसकी भविष्यद्वाणी सत्य न हो। पशु चिकित्साकी पुस्तकें मंगाकर पढ़ीं! पशु-चिकित्सकसे मिले और कई औषधियां लाकर रखीं। जवाहिरको टीका लगवा दिया। कहीं नौकर उसे खराब चारा या गन्दा पानी न खिला-पिला दें इस आशंकासे वह अपने हाथोंसे उसे खोलने बांधने लगे। पशुशालाका फर्श पक्का करा दिया जिसमें कोई कीड़ा-मकोड़ा न छिप सके। उसे नित्यप्रति खूब धुलवाते भी थे।

संध्या हो गयी थी। रामटहल नांदके पास खड़े जवाहिरको खिला रहे थे कि इतनेमें सहसा वही साधु महात्मा आ निकले जिन्होंने आजसे तीन वर्ष पहले दर्शन दिये थे। रामटहल उन्हें देखते ही पहचान गये। जाकर दण्डवत् की, कुशल-समाचार पूछे और उनके भोजनका प्रबन्ध करने लगे। इतनेमें अकस्मात् जवाहिरने एक बार जोरसे डकार ली और धमसे भूमिपर गिर पड़ा। रामटहल दौड़े हुए उसके पास आये। उसकी आंखें पथरा रही थीं। उसने एक स्नेहपूर्ण दृष्टि उनपर डाली और चित हो गया।

रामटहल घबराये हुए घरसे दवाएं लानेको दौड़े। कुछ समझमें न आया कि खड़े-खड़े इसे यह हो क्या गया। जब वह घरमेंसे दवाइयां लेकर निकले तब जवाहिरका अन्त हो चुका था।

रामटहल शायद अपने छोटे भाईकी मृत्युपर भी इतने शोकातुर न हुए थे। वह बार-बार लोगोंके रोकनेपर भी दौड़-दौड़कर जवाहिरके शवके पास जाते और उससे लिपटकर रोते।

रात उन्होंने रो-रोकर काटी। उसकी सूरत आंखोंसे न उतरती थी। रह-रहकर हृदयमें एक वेदना-सी होती और शोकसे विह्वल हो जाते।

प्रातःकाल लाश उठायी गयी। किन्तु रामटहलने गांवकी प्रथाके अनुसार उसे चमारोंके हवाले नहीं किया। यथाविधि उसकी दाह-क्रिया की, स्वयं आग दी। शास्त्रानुसार सब संस्कार किये। तेरहवें दिन कई गांवोंके ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। उक्त साधु महात्माको उन्होंने अबतक नहीं जाने दिया था। उनकी शांति देनेवाली बातोंसे रामटहलको बड़ी सान्त्वना मिलती थी।

६

एक दिन रामटहलने साधुसे पूछा—"महात्माजी, कुछ समझमें नहीं आता कि जवाहिरको कौन-सा रोग हुआ था। ज्योतिषीजीने उसके जन्मपत्रमें लिखा था कि उसका छठा साल अच्छा न होगा। लेकिन मैंने इस तरह किसी जानवरको मरते नहीं देखा। आप तो योगी हैं यह रहस्य कुछ आपकी समझमें आता है?"

साधु—"हां बाबा, कुछ थोड़ा-थोड़ा समझता हूं।"

रामटहल—"कुछ मुझे भी बताइये। चित्तको धैर्य नहीं आता।"

साधु—"वह उस जन्मका कोई सच्चरित्र, साधु-भक्त, परोपकारी जीव था। उसने अपनी सारी सम्पत्ति धर्म-कार्योंमें उड़ा दी थी। आपके सम्बन्धियोंमें ऐसा कोई सज्जन था?"

रामटहल—"हां महाराज, था।"

साधु—"उसने तुम्हें धोखा दिया। तुमसे विश्वासघात किया। तुमने उसे अपना कोई काम सौंपा था। वह तुम्हारी आंख बचाकर तुम्हारे धनसे साधु-जनोंका सेवा-सत्कार किया करता था।"

रामटहल—"मुझे उसपर इतना सन्देह नहीं होता। वह इतना सरल प्रकृति, इतना सच्चरित्र मनुष्य था कि बेईमानी करनेका उसे कभी ध्यान भी नहीं आ सकता था।"

साधु—"लेकिन उसने विश्वासघात अवश्य किया। अपने स्वार्थके लिये नहीं अतिथि-सत्कारके लिये सही, पर था वह विश्वासघाती।"

रामटहल—"सम्भव है, दुरवस्थाने उसे धर्मपथसे विचलित कर दिया हो।"

साधु—"हां यही बात है। उस प्राणीको स्वर्गमें स्थान देनेका निश्चय किया गया। पर उससे विश्वासघातका प्रायश्चित्त कराना आवश्यक था। उसने बेईमानीसे तुम्हारा जितना धन हर लिया था, उसकी पूर्ति करनेके लिये उसे तुम्हारे यहां पशुका जन्म दिया गया। यह निश्चय कर लिया गया कि ६ वर्षमें प्रायश्चित्त पूरा हो जायगा। इतनी अवधितक वह तुम्हारे यहां

रहा। ज्योंही अवधि पूरी हो गयी त्योंही उसकी आत्मा निष्पाप और निर्लिप्त होकर निर्वाणपदको प्राप्त हो गयी।"

× × × ×

महात्माजी तो दूसरे दिन विदा हो गये लेकिन रामटहलके जीवनमें उसी दिनसे एक बड़ा परिवर्तन देख पड़ने लगा। उनकी चित्तवृत्ति ही बदल गयी। दया और विवेकसे हृदय परिपूर्ण हो गया। वह मनमें सोचते, जब ऐसे धर्मात्मा प्राणीको जरासे विश्वासघातके लिये इतना कठोर दण्ड मिला तो मुझ जैसे कुकर्मीकी क्या दुर्गति होगी! यह बात उनके ध्यानसे कभी न उतरती थी।

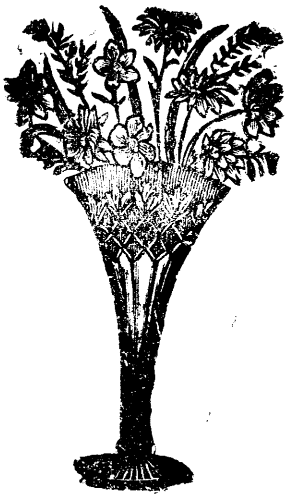

दुस्साहस

१

लखनऊके नौबस्ते मोहल्लेमें एक मुन्शी मैकूलाल मुख्तार रहते थे। बड़े उदार, दयालु और सज्जन पुरुष थे। अपने पेशेमें इतने कुशल थे कि ऐसा बिरला ही कोई मुकदमा होता था जिसमें वह किसी-न-किसी पक्षकी ओरसे न रखे जाते हों। साधु-सन्तोंसे भी उन्हें प्रेम था। उनके सत्सङ्गसे उन्होंने कुछ तत्व-ज्ञान और कुछ गाँजे-चरसका अभ्यास प्राप्त कर लिया था। रही शराब, यह उनकी कुल-प्रथा थी। शराबके नशेमें वह कानूनी मसौदे खूब लिखते थे, उनकी बुद्धि प्रज्ज्वलित हो जाती थी। गाँजे और चरसका प्रभाव उनके ज्ञानपर पड़ता था। दम लगाकर वह वैराग्य और ध्यानमें तल्लीन हो जाते थे। मोहल्लेवालोंपर उनका बड़ा रोब था। लेकिन यह उनकी कानूनी प्रतिभाका नहीं, उनकी उदार सज्जनताका फल था। मोहल्लेके एक्केवान, ग्वाले और कहार उनके आज्ञाकारी थे, सौ काम छोड़कर उनकी खिद-करते थे। उनकी मद्यजनित उदारताने सभोंको वशीभूत कर लिया था। वह नित्य कचहरीसे आते ही अलगू कहारके सामने दो रुपये फेंक देते थे। कुछ कहने-सुननेकी जरूरत न थी, अलगू इसका आशय समझता था। शामको शराबकी एक बोतल और कुछ गांजा और चरस मुन्शीजीके सामने आ जाता था। बस

महफिल जम जाती। यार लोग आ पहुंचते। एक ओर मुवक्किलों- की कतार बैठती, दूसरी ओर सहवासियोंकी। वैराग्य और ज्ञान- की चर्चा होने लगती। बीच-बीचमें मुवक्किलोंसे भी मुकदमेकी दो एक बातें कर लेते। दस बजे रातको वह सभा विसर्जित होती थी। मुन्शीजी अपने पेशे और इस ज्ञान-चर्चाके सिवा और कोई दर्द सिर मोल न लेते थे। देशके किसी आन्दोलन, किसी सभा, किसी सामाजिक सुधारसे उनका सम्बन्ध न था। इस विषयमें वह सच्चे विरक्त थे। बङ्गभङ्ग हुआ, स्वदेशीका आन्दोलन हुआ, नरम-गरम दल बने, राजनैतिक सुधारोंका आविर्भाव हुआ, स्वराज्यकी आकांक्षाने जन्म लिया, आत्मरक्षाकी आवाजें देशमें गूंजने लगीं, किन्तु मुन्शीजीकी अविरल शान्तिमें जरा भी विघ्न न पड़ा। अदालत और शराबके सिवाय वह संसारकी सभी चीजोंको माया समझते थे, सभीसे उदासीन रहते थे।

२

चिराग जल चुके थे। मुन्शी मैकूलालकी सभा जम गयी थी, उपासकगण जमा हो गये थे, अभीतक मदिरा देवी प्रकट न हुई थीं। अलगू बाजारसे न लौटा था। सब लोग बार-बार उत्सुक नेत्रोंसे द्वारकी ओर ताक रहे थे। एक आदमी बरामदेमें प्रतीक्षा स्वरूप खड़ा था, दो-तीन सज्जन टोह लेनेके लिये सड़कपर खड़े थे। लेकिन [illegible] आता नजर न आता था। आज जीवनमें पहला अवसर था कि मुंशीजीको इतनी इन्तजार खींचनी पड़ी।

उनकी प्रतीक्षाजनित उद्विग्नताने गहरी समाधिका रूप धारण कर लिया था, न कुछ बोलते थे, न किसी ओर देखते थे। समस्त शक्तियां प्रतीक्षा-विन्दुपर केन्द्रीभूत हो गयीं।

अकस्मात् सूचना मिली कि अलगू आ रहा है। मुंशीजी जाग पड़े, सहवासीगण खिल गये, आसन बदल कर संभल बैठे, उनकी आंखें अनुरक्त हो गयीं। आशामय विलम्ब आनन्दको और बढ़ा देता है।

एक क्षणमें अलगू आकर सामने खड़ा हो गया। मुन्शीजीने उसे डांटा नहीं, यह पहला अपराध था, इसका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होगा, दबी हुई पर उत्कण्ठायुक्त नेत्रोंसे अलगूके हाथकी ओर देखा। बोतल न थी, विस्मय हुआ; विश्वास न आया, फिर गौरसे देखा, बोतल न थी। यह अप्राकृतिक घटना थी, उन्हें इस- पर क्रोध न आया, नम्रताके साथ पूछा—'बोतल कहां है ?'

अलगू—आज नहीं मिली।

मैकूलाल—यह क्यों ?

अलगू—दूकानके दोनों नाके रोके हुए सुराजवाले खड़े हैं, किसीको उधर जाने ही नहीं देते।

अब मुंशीजीको क्रोध आया, अलगूपर नहीं, स्वराज्यवालोंपर, उन्हें मेरी शराब बन्द करनेका क्या अधिकार है ? तर्क भावसे बोले—'तुमने मेरा नाम नहीं लिया ?'

अलगू—बहुत कहा, लेकिन वहां कौन किसीको सुनता था ? सभी लोग लौटे आते थे, मैं भी लौट आया।

मुन्शी—चरस लाये ?

अलगू—वहां भी यही हाल था।

मुंशी—तुम मेरे नौकर हो या स्वराज्यवालोंके ?

अलगू—मुंहमें कालिख लगवानेके लिये थोड़े ही नौकर हूं ?

मुन्शी—तो क्या वहां बदमाश लोग मुंहमें कालिख भी लगा रहे हैं ?

अलगू—देखा तो नहीं, लेकिन सब यही कहते थे।

मुन्शी—अच्छी बात है, मैं खुद जाता हूं, देखूं किसकी मजाल है जो रोके। एक एकको लाल-घर दिखा दूंगा, यह सरकारका राज है, कोई बदमली नहीं है। वहां कोई पुलिसका सिपाही नहीं था ?

अलगू—थानेदार साहब आप ही खड़े सबसे कहते थे जिसका जी चाहे जाय शराब ले या पिये, लेकिन लोग लौटे आते थे, उनकी कोई न सुनता था।

मुन्शी—थानेदार मेरे दोस्त हैं, चलो जी ईदू चलते हो। रामबली, बेचन, झिनकू सब चलो। एक-एक बोतल ले लो, देखूं कौन रोकता है। कल ही तो मजा चखा दूंगा।

३

मुन्शीजी अपने चारों साथियोंके साथ शराबखानेकी गलीके सामने पहुंचे तो वहां बहुत भीड़ थी। बीचमें दो सौम्य मूर्त्तियां खड़ी थीं। एक मौलाना जामिन थे जो शहरके मशहूर मुजतहिद थे; दूसरे स्वामी घनानन्द थे जो वहांकी सेवासमितिके स्थापक और प्रजाके बड़े हितचिन्तक थे। उनके सम्मुख ही थानेदार साहब कई कानिस्टेबलोंके साथ खड़े थे। मुन्शीजी और उनके साथियोंको देखते ही थानेदार साहब प्रसन्न होकर बोले—'आइये मुख्तार साहब, क्या आज आपहीको तकलीफ करनी पड़ी ? यह चारों आपहीके हमराह हैं न ?'

मुंशीजी बोले—जी हां, पहले आदमी भेजा था, वह नाकाम वापस गया। सुना आज यहां हरबोंग मची हुई है, स्वराज्यवाले किसीको अन्दर जाने ही नहीं देते।

थानेदार—जी नहीं, यहां किसकी मजाल है जो किसीके काममें हाजिर हो सके। आप शौकसे जाइये। कोई चूं तक नहीं कर सकता। आखिर मैं यहां किसलिये हूं ?

मुन्शीजीने गौरवोन्मत्त दृष्टिसे अपने साथियोंको देखा और गलीमें घुसे कि इतनेमें मौलाना जामिनने ईदूसे बड़ी नम्रतासे कहा—दोस्त, यह तो तुम्हारी नमाजका वक्त है, यहां कैसे आये ? क्या इसी दीनदारीके बलपर खिलाफतका मसला हल करेंगे ?

ईदूके पैरोंमें जैसे लोहेकी बेड़ी पड़ गयी। लज्जित भावसे खड़ा भूमिकी ओर ताकने लगा। आगे कदम रखनेका साहस न हुआ।

स्वामी घनानन्दने मुंशीजी और उनके बाकी तीनों साथियोंसे कहा—बच्चा, यह पञ्चामृत लेते जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। झिनकू, रामबली और बेचनने अनिवार्य्य भावसे हाथ फैला दिये और स्वामीजीसे पञ्चामृत लेकर पी गये। मुन्शीजीने कहा—इसे आप खुद पी जाइये, मुझे जरूरत नहीं।

स्वामीजी उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विनीत भावसे बोले—इस भिक्षुकपर आज दया कीजिये, उधर न जाइये।

लेकिन मुन्शीजीने उनका हाथ पकड़कर सामनेसे हटा दिया और गलीमें दाखिल हो गये। उनके तीनों साथी स्वामीजीके पीछे सिर झुकाये खड़े रहे।

मुंशी—रामबली, झिनकू आते क्यों नहीं? किसको, ताकत है कि हमें रोक सके।

झिनकू—तुम ही काहे नहीं लौट आवत हौ। साधु सन्तनकी बात मानेको होत हैं।

मुन्शी—तो इस हौसलेपर घरसे निकले थे?

रामबली—निकले थे कि कोई जबर्दस्ती रोकेगा तो उससे समझेंगे। साधु-सन्तोंसे लड़ाई करने थोड़े ही चले थे।

मुन्शी—सच कहा है, गंवार भेड़ होते हैं।

बेचन—आप सेर हो जायं, हम भेड़ ही बने रहेंगे।

मुंशीजी अकड़ते हुए शराबखानेमें दाखिल हुए। दूकानपर उदासी छायी हुई थी, कलवार अपनी गद्दीपर बैठा ओंघ रहा था। मुंशीजीकी आहट पाकर चौंक पड़े, उन्हें तीव्र दृष्टिसे देखा मानो वह कोई विचित्र जीव हैं, बोतल भर दी और फिर ओंघने लगा।

मुन्शीजी गलीके द्वारपर आये तो अपने साथियोंको न पाया। बहुतसे आदमियोंने उन्हें चारों तरफसे घेर लिया और निन्दा-सूचक बोलियां बोलने लगे।

एकने कहा—दिलावर हो तो ऐसा हो।

दूसरा बोला—शर्म चे कुत्तीस्त कि पेशे मरदां बियायद (मर्दोंके सामने लज्जा नहीं आ सकती।)

तीसरा बोला—है कोई पुराना पियक्कड़ पक्का लतिहर। इतनेमें थानेदार साहबने आकर भीड़ हटा दी। मुन्शीजीने उन्हें धन्यवाद दिया और घर चले। एक कानिस्टेबल भी रक्षार्थ उनके साथ चला।

४

मुन्शीजीके चारों मित्रोंने बोतलें फेंक दीं और आपसमें बातें करते हुए चले।

झिनकू—एक बेर हमार एक्का बेगारमें पकड़ जात रहे तो यही सामीजी चपरासीसे कह सुनके छुड़ाय दिहेन रहा।

रामबली—पिछले साल जब हमारे घरमें आग लगी थी तब भी तो यही सेवा-समितिवालोंको लेकर पहुंच गये थे, नहीं तो घरमें एक सूत न बचता।

बेचन—मुख्तार अपने सामने किसीको गिनते ही नहीं। आदमी कोई बुरा काम करता है तो छुपाके करता है, यह नहीं कि बेहयाईपर कमर बांध ले।

झिनकू—भाई पीठ पीछे कोऊकी बुराई न करे चाही। और जौन कुछ होय पर आदमी बड़ा अकबाली हौ। इतने आदमियनके बीच मां कैसा घुसत चला गवा।

रामबली—यह कोई अकबाल नहीं है। थानेदार न होता तो आटे दालका भाव मालूम हो जाता।

बेचन—मुझे तो कोई पचास रुपये देता तो भी मैं गलोमें पैर न रख सकता। शर्मसे सिर ही नहीं उठता था।

ईदू—इनके साथ आकर आज बड़ी मुसीबतमें फंस गया। मौलाना जहां देखेंगे वहीं आड़े हाथों लेंगे। दीनके खिलाफ ऐसा काम क्यों करें कि शरमिन्दा होना पड़े। मैं तो आज मारे शर्मके गड़ गया। आजसे तोबा करता हूं। अब इसकी तरफ आंख उठाकर भी न देखूंगा।

रामबली—शराबियोंकी तोबा कच्चे धागेसे मजबूत नहीं होती।

ईदू—अगर फिर कभी मुझे पीते देखना तो मुंहमें कालिख लगा देना।

बेचन—अच्छा तो इसी बातपर आजसे मैं भी इसे छोड़ता हूं। अब पिऊं तो गऊ रक्त बराबर।

झिनकू—तो का हम ही सबसे पापी हन। फिर कभू जो हमका पियत देख्यो बैठायके पचास जूता लगायो।

रामबली—अरे जा अभी मुन्शीजी बुलायेंगे तो कुत्तेकी तरह दौड़ते हुए जावोगे।

झिनकू—मुंशीजीके साथ बैठे देख्यो तो सौ जूता लगायो, जिसके बातमें फरक है उसके बापमें फरक है।

रामबली—तो भाई मैं भी कसम खाता हूं कि आजसे गांठके पैसे निकालकर न पीऊंगा। हां मुफ्तकी पीनेमें इन्कार नहीं।

झिनकू—गांठके पैसे तुमने कभी पहले भी खर्च किये हैं?

इतनेमें मुन्शी मैकूलाल लपके हुए आते दिखायी दिये। यद्यपि वह बाजी मारकर आये थे पर मुखपर विजय गर्वकी जगह खिसियानापन छाया हुआ था। किसी अव्यक्त कारणवश वह इस विजयका हार्दिक आनन्द उठा सकते थे। हृदयके किसी कोनेमें छुपी हुई लज्जा उन्हें चुटकियां ले रही थीं। वह स्वयं अज्ञात थे पर उस दुस्साहसका खेद उन्हें व्यथित कर रहा था।

रामबलीने कहा—आइये मुख्तार साहब, बड़ी देर लगायी।

मुख्तार—तुम सब-के-सब गावदी हो निकले, एक साधूके चकमेमें आ गये।

रामबली—इन लोगोंने तो आजसे शराब पीनेकी कसम खाली है।

मुख्तार—ऐसा तो मैंने मर्द ही नहीं देखा जो कि एक बार इसके चङ्गुलमें फंसकर फिर निकल जाय। मुंहसे बकना दूसरी बात है।

ईदू—जिन्दगानी रही तो देख लीजियेगा।

झिनकू—दाना-पानी तो कोऊसे नाहीं छुट सकत है और बातनका जब मनमा आवे छोड़ देब। बस चोट लग जाय का चही, नसा खाये बिना कोऊ मर नाहीं जात है।

मुखतार—देखूंगा तुम्हारी बहादुरी भी।

बेचन—देखना क्या है, नशा छोड़ देना कोई बड़ी बात नहीं। यही न होगा दो चार दिन जी सुस्त रहेगा। लड़ाईमें अङ्गरेजोंने छोड़ दिया था जो इसे पानीकी तरह पीते हैं तो हमारे लिये कोई मुश्किल काम नहीं।

यही बातें करते हुए लोग मुख्तार साहबके मकानपर आ पहुंचे।

५

दीवानखानेमें सन्नाटा था। मुवक्किल चले गये थे। अल्गू पड़ा सो रहा था। मुन्शीजी मसनदपर जा बैठे और आलमारीसे ग्लास निकालने लगे। उन्हें अभीतक अपने साथियोंकी प्रतिज्ञा-पर विश्वास न आता था। उन्हें पूरा यकीन था कि शराबकी सुगन्ध और लालिमा देखते सभोंकी तोबा टूट जायगी। जहां मैंने जरा बढ़ावा दिया वहीं सब-के-सब आकर डट जायंगे और महफिल जम जायगी। जब ईदू सलाम करके चलने लगा और झिनकूने अपना डंडा संभाला तो मुन्शीजीने दोनोंके हाथ पकड़ लिये और बड़े मृदुल शब्दोंमें बोले—यारो, यों साथ छोड़ना अच्छा नहीं। आओ जरा आज इसका मजा तो चखो खास तौरपर अच्छी है।

ईदू—अब तो जो बात ठान ली, वह ठान ली।

मुन्शीजी—अजी आओ तो, इन बातोंमें क्या धरा है?

ईदू—आपहीको मुबारक रहे, मुझे जाने दीजिये।

झिनकू—हम तो भगवान चाही तो एके नियर न जाब, जूता कौन खाय। यह कहकर दोनों अपने-अपने हाथ छोड़ा कर चले गये। तब मुख्तार साहबने बेचनका हाथ पकड़ा जो बरामदेसे नीचे उतर रहा था। बोले—बेचन क्या तुम भी बेवफाई करोगे?

बेचन—मैंने तो बड़ी कड़ी कसम खायी है। जब एक बार

इसे गऊ-रक्त कह चुका तो फिर इसकी ओर ताक भी नहीं सकता। कितना ही गया बीता हूं तो क्या गऊ-रक्तकी लाज भी न रखूंगा? अब आप भी छोड़िये, कुछ दिन राम-राम कीजिये। बहुत दिन तो पीते हो गये। यह कहकर वह भी सलाम करके चलता हुआ।

अब अकेले रामबली रह गया। मुन्शीजीने उससे शोकातुर होकर कहा—देखो रामबली, इन सभोंकी बेवफाई। यह लोग ऐसे ढुलमुल होंगे मैं न जानता था। आओ आज हमीं तुम सही। दो सच्चे दोस्त ऐसे दरजनों कचलोहियोंसे अच्छे हैं। आओ बैठ जाओ।

रामबली—मैं तो हाजिर ही हूं लेकिन मैंने भी कसम खाई है कि कभी गांठके पैसे खर्च करके न पीऊंगा।

मुन्शी—अजी जबतक मेरे दममें दम है तुम जितना चाहे पियो, गम क्या है।

रामबली—लेकिन आप न रहे तब? ऐसा सज्जन फिर कहां पाऊंगा।

मुन्शी—अजी तब देखी जायगी मैं आज मरा थोड़े ही जाता हूं।

रामबली—जिन्दगीका कोई एतबार नहीं। आप मुझसे पहले जरूर ही मरेंगे तो उस वक्त मुझे कौन रोज पिलायेगा। तब तो छोड़ भी न सकूंगा। इससे बेहतर यही है कि अभीसे फिक्र करूं।

मुन्शी—यार ऐसी बातें करके दिल न छोटा करो। आओ बैठ जाव, एक ही गिलास ले लेना।

रामबली—मुख्तार साहब, मुझे अब ज्यादा मजबूर न कीजिये। जब ईदू और झिनकू जैसे लतियोंने कसम खा ली जो औरतोंके गहने बेच-बेच पी गये और निरे मूर्ख हैं, तो मैं इतना निर्लज्ज नहीं हूं कि इसका गुलाम बना रहूं। स्वामीजीने मेरा सर्वनाश होनेसे बचाया है। उनकी आज्ञाको मैं किसी तरह नहीं टाल सकता। यह कहकर रामबली भी बिदा हो गया।

६

मुन्शीजीने प्याला मुंहसे लगाया, लेकिन दूसरा प्याला भरनेके पहले उनकी मद्यातुरता गायब हो गयी थी। जीवनमें यह पहला अवसर था कि उन्हें एकान्तमें बैठकर दवाकी भांति शराब पीनी पड़ी। पहले तो सहवासियोंपर जी झुंझलाया। इन दगाबाजोंको मैंने सैकड़ों रुपये खिला दिये होंगे, लेकिन आज जरासी बातपर सब-के-सब फिरन्ट हो गये। अब मैं भूतकी भांति अकेला पड़ा हुआ हूं, कोई हंसने-बोलनेवाले नहीं। यह तो सोहबतकी चीज है, जब सोहबतका आनन्द ही न रहा तो पीकर खाटपर पड़ रहनेसे क्या फायदा?

मेरा आज कितना अपमान हुआ! जब गलीमें घुसा हूं तो सैकड़ों ही आदमी मेरी ओर आग्नेय दृष्टिसे ताक रहे थे। शराब लेकर लौटा हूं तब तो लोगोंका वश चलता तो मेरी बोटियां नोच खाते। थानेदार न होता तो घरतक आना मुश्किल था। यह अपमान और लोकनिन्दा किसलिये? इसीलिये कि घड़ी भर बैठकर मुंह कड़वा करूं और कलेजा जलाऊं। कोई हंसी-चुहल करनेवालातक नहीं।

लोग इसे कितनी त्याज्य वस्तु समझते हैं, इसका अनुभव मुझे आज ही हुआ, नहीं तो एक संन्यासीके जरासे इशारेपर बरसोंके लती पियक्कड़ यों मेरी अवहेलना न करते। बात यही है कि अंतःकरणसे सभी इसे निषिद्ध समझते हैं। जब मेरे साथके ग्वाले, पक्केवान और कहारतक इसे त्याग सकते हैं तो क्या मैं उनसे भी गया गुजरा हूं? इतना अपमान सहकर, जनताकी निगाहमें पतित होकर, सारे शहरमें बदनाम होकर, नक्कू बनकर एक क्षणके लिये सिरमें सरूर पैदा कर लिया तो क्या बड़ा काम किया? कुवासनाके लिये आत्माको इतना नीचे गिराना क्या अच्छी बात है? यह चारों इस घड़ी मेरी निन्दा कर रहे होंगे, मुझे बना रहे होंगे। मुझे नीच समझ रहे होंगे। इन नीचोंकी दृष्टिमें मैं नीचा हो गया। यह दुरवस्था नहीं सही जाती। आज इस वासनाका अन्त कर दूंगा; अपमानका अन्त कर दूंगा।

एक क्षणमें धड़ाकेकी आवाज हुई। अलगू चौंककर उठा तो देखा कि मुन्शीजी बरामदेमें खड़े हैं और बोतल जमीनपर टूटी पड़ी है।

बौड़म

मुझे देवीपुर गये पांच दिन हो गये थे पर ऐसा एक दिन भी न होगा कि बौड़मकी चर्चा न हुई हो। मेरे पास सुबहसे शामतक गांवके लोग बैठे रहते थे। मुझे अपनी बहुज्ञताके प्रदर्शित करनेका न कभी ऐसा अवसर ही मिला था और न प्रलोभन ही। मैं बैठा-बैठा इधर-उधरकी गप्पें उड़ाया करता। बड़े लाटने गांधी बाबासे यह कहा और गान्धी बाबाने यह जवाब दिया। अभी आप लोग क्या देखते हैं आगे देखियेगा क्या-क्या गुल खिलते हैं। पूरे ५० हजार जवान जेल जानेको तैयार बैठे हुए हैं। गांधीजीने आज्ञा दी है कि अब हिन्दुओंमें छूत-छातका भेद न रहे, नहीं तो देशको और भी अदिन देखने पड़ेंगे। अस्तु। लोग मेरी बातोंको तन्मय होकर सुनते। उनके मुख फूलकी तरह खिल जाते। आत्माभिमानकी आभा मुखपर दिखायी देती। गद्‌गद् कण्ठसे कहते, अब तो महात्माजी होका भरोसा है। न हुआ बौड़म नहीं तो आपका गला न छोड़ता। आपको खाना-पीना कठिन हो जाता। कोई उससे ऐसी बातें किया करे तो रात-की-रात बैठा रहे। मैंने एक दिन पूछा आखिर यह बौड़म है कौन? कोई पगला है क्या? एक सज्जनने कहा—"महाशय, पगला क्या है, बस बौड़म है। घरमें लाखोंकी सम्पत्ति है। शक्करकी एक मिल सिवानमें हैं, दो कारखाने छपरेमें हैं, तीन-तीन चार-चार सौके तलबवाले आदमी नौकर हैं, पर इसे

देखिये फटे-हाल घूमा करता है। घरवालोंने सिवान भेज दिया था कि जाकर वहां निगरानी करे पर दो ही महीनोंमें मैनेजरसे लड़ बैठा, उसने यहां लिखा, मेरा इस्तीफा लीजिये। आपका लड़का मजूरोंको सिर चढ़ाये रहता है, वे मनसे काम नहीं करते। आखिर घरवालोंने बुला लिया। नौकर-चाकर लूटे खाते हैं, उसकी तो जरा भी चिन्ता नहीं, पर जो सामने आमका बाग है उसकी रात-दिन रखवाली किया करता है, क्या मजाल कि कोई एक पत्थर भी फेंक सके।" एक मियांजी बोले—"बाबूजी, घरमें तरह-तरहके खाने पकते हैं मगर इसकी तकदीरमें वही रोटी और दाल लिखी हुई है और कुछ खाता ही नहीं। बाप अच्छे-से-अच्छे कपड़े खरीदते हैं लेकिन यह उनकी तरफ निगाह तक नहीं उठाता। बस, वही मोटा कुरता पहने गाढ़ेकी तहमद बांधे मारा-मारा फिरा करता है। आपसे उसकी सिफत कहां तक कहें, बस पूरा बौड़म है।"

ये बातें सुनकर मुझे भी इस विचित्र व्यक्तिसे मिलनेकी उत्कण्ठा हुई। सहसा एक आदमीने कहा—"वह देखिये बौड़मवा आ रहा है।" मैंने कुतूहलसे उसकी ओर देखा। एक २०-२१ वर्षका हृष्ट-पुष्ट युवक था। नंगे सिर, एक गाढ़ेका कुरता पहने, गाढ़ेका ढीला पाजामा पहने चला आता था! पैरोंमें जूते थे। पहले मेरी ही ओर आया। मैंने कहा, आइये, बैठिये। उसने मण्डलीकी ओर अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा और बोला—अभी नहीं; फिर आऊंगा। यह कहकर चला गया।

जब संध्या हो गयी और सभा विसर्जित हुई तो वह आमके बागकी ओरसे धीरे-धीरे आकर मेरे पास बैठ गया और बोला— इन लोगोंने तो मेरी खूब बुराइयां की होंगी। मुझे यहां बौड़मका लकब मिला है।

मैंने सकुचाते हुए कहा—हां आपकी चर्चा लोग रोज करते थे। मेरी आपसे मिलनेकी बड़ी इच्छा थी। आपका नाम क्या है?

बौड़मने कहा—नाम तो मेरा मुहम्मद खलील है पर आस-पास दस-पांच गावोंमें मुझे लोग उर्फके नामसे ज्यादा जानते हैं। मेरा उर्फ बौड़म है!

मैं—आखिर लोग आपको बौड़म क्यों कहते हैं?

खलील—उनकी खुशी और क्या कहूं! मैं जिन्दगीको कुछ और समझता हूं, पर मुझे इजाजत नहीं है कि पांचों वक्तकी निमाज पढ़ सकूं। मेरे वालिद हैं। चचा हैं। दोनों साहब पहर रातसे पहर राततक काममें मसरूफ रहते हैं। रात-दिन हिसाब किताब, नफा-नुकसान, मन्दी-तेजीके सिवाय और कोई जिक्र ही नहीं होता, गोया खुदाके बन्दे न हुए इस दौलतके बन्दे हुए। चचा साहब हैं वह पहर रातसे शीरेके पीपोंके पास खड़े होकर इन्हें गाड़ीपर लदवाते हैं। वालिद साहब अक्सर अपने हाथोंसे शक्करका वजन करते हैं। दोपहरका खाना शामको और शामका खाना आधी रातको खाते हैं। किसीको निमाज पढ़नेकी भी फुर्सत नहीं। मैं कहता हूं, आप लोग इतना सिर मगजन क्यों

करते हैं? बड़े कारोबारमें सारा काम एतबारपर होता है। मालिकको कुछ-न कुछ-बल खाना ही पड़ता है। अपने बल-बूते-पर तो छोटे कारोबार ही चल सकते हैं। मेरा उसूल किसीको पसन्द नहीं। इसलिये मैं बौड़म हूं।

मैं—मेरे खयालमें तो आपका उसूल ठीक है।

खलील—जी ऐसा भूलकर भी न कहियेगा, वरना एककी जगह दो बौड़म हो जायंगे। लोगोंको अपने कारोबारके सिवा न दीनसे गरज है न दुनियासे। न मुल्कसे, न कौमसे। मैं एक अखबार मंगाता हूं, स्मर्ना फण्डमें कुछ रुपये भेजना चाहता हूं। खिलाफत-फण्डकी मदद करना भी अपना फर्ज समझता हूं। सबसे बड़ा सितम यह है कि खिलाफतका रजाकार भी हूं। क्यों साहब, जब कौमपर, मुल्कपर और दीनपर चारों तरफसे दुश्मनोंका हमला हो रहा है तो क्या मेरा फर्ज नहीं है कि जाती फायदेको कौमपर कुर्बान कर दूं? इसीलिये घर और बाहर मुझे बौड़मका लकब दिया गया है।

मैं आप तो वही कर रहे हैं जिसकी इस वक्त कौमको जरूरत है।

खलील—मुझे खौफ है कि इस चौपट नगरीसे आप बदनाम होकर जायंगे। जब मेरे हजारों भाई जेलमें पड़े हुए हैं, उन्हें गजी-गाढ़ातक पहननेको मयस्सर नहीं तो मेरी गैरत गवारा नहीं करती कि मैं मीठे लुकमे उड़ाऊं और चिकनके कुर्ते पहनूं जिनकी कलाइयों और मोढ़ोंपर सोजनकारी की गयी हो।

मैं—आप यह बहुत ही मुनासिब करते हैं। अफसोस है कि और लोग आपकासा त्याग करनेके काबिल नहीं।

खलील—मैं इसे त्याग नहीं समझता, न दुनियाको दिखानेके लिये यह भेष बनाये घूमता हूं। मेरा जी ही लज्जित और शोकसे फिर गया है। थोड़े दिन होते हैं वालिदने मुझे सिवानके मिलकी निगरानीके लिये भेजा, मैंने वहां जाकर देखा तो इञ्जीनियर साहबके खानसामे, बैरे, मेहतर, धोबी, माली, चौकीदार, सभी मजदूरोंकी जेलमें लिखे हुए थे। काम साहबका करते थे, मजदूरी कारखानेसे पाते थे। साहब बहादुर खुद तो बे-उसूल हैं, पर मजदूरोंपर इतनी सख्ती थी कि अगर पांच मिनटकी भी देर हो जाय तो उनकी आध दिनकी मजदूरी कट जाती थी। मैंने साहबकी मिजाज-पुरसी करनी चाही। मजदूरोंके साथ रियायत करनी शुरू की। फिर क्या था? साहब बिगड़ गये, इस्तैफेकी धमकी दी। घरवालोंको उनके सब हालात मालूम हैं। पल्ले दरजेका हरामकार आदमी हैं। लेकिन उसकी धमकी पातेही सबके होश उड़ गये। मैं तारसे वापस बुला लिया गया और घरपर मेरी खूब ले-दे हुई। पहले बौड़म होनेमें कुछ कोर-कसर थी वह पूरी हो गई। न जाने साहबसे लोग क्यों इतना डरते हैं? शायद उसके चमड़ेका जादू है।

मैं—आपने वही किया जो इस हालतमें मैं भी करता। बल्कि मैं तो पहले साहबपर गबनका मुकदमा दायर-करता, बदमाशोंसे पिटवाता, तब बात करता। ऐसे हरामकारोंकी यही सजायें हैं।

खलील—फिर तो एक और एक दो हो गये। अफसोस यही है कि आपका यहां कयाम न रहेगा। मेरा तो जी चाहता है, कि चन्द रोज आपके साथ रहूं। मुद्दतके बाद आप ऐसे आदमी मिले हैं जिससे मैं अपने दिलकी बातें कह सकता हूं। इन गंवारोंसे मैं बोलता भी नहीं। मेरे चाचा साहबको जवानीमें एक चमारिनसे ताल्लुक हो गया था। उससे दो बच्चे-एक लड़का और एक लड़की—पैदा हुए। चमारिन लड़कीको गोदमें छोड़कर मर गई। तबसे इन दोनों बच्चोंकी मेरे यहां वही हालत थी जो यतीमोंकी होती है। कोई बात न पूछता था। उनके खाने-पहनने को भी न मिलता। बेचारे नौकरोंके साथ खाते और बाहर झोंपड़ेमें पड़े रहते थे। जनाब, मुझसे यह न देखा गया। मैंने उन्हें अपने दस्तरखानपर खिलाया और अब भी खिलाता हूं। घरमें कुहराम मच गया। जिसे देखिये मुझपर त्यौरियां बदल रहा है मगर मैंने परवाह न की। आखिर है वह भी तो हमारा ही खून। इसीलिये मैं बौड़म कहलाता हूं।

मैं—जो लोग आपको बौड़म कहते हैं वे खुद बौड़म हैं।

खलील—जनाब, इनके साथ रहना अजाब है। शाहे काबुलने कुर्बानीकी मुमानियत कर दी है। हिन्दुस्तानके उलमाने भी यही फतवा दिया है, पर यहां खास मेरे घर कुर्बानी हुई। मैंने हरचन्द बावेला मचाया पर मेरी कौन सुनता है? उसका कफारा (प्रायश्चित्त) मैंने यह अदा किया कि अपनी सवारीका घोड़ा बेचकर ३०० फकीरोंको खाना खिलाया और तबसे कसाइयोंको गायें

लिये जाते देखता हूं तो कीमत देकर खरीद लेता हूं। इस वक्त तक दस गायोंकी जान बचा चुका हूं। वे सब यहां हिन्दुओंके घरोंमें हैं। पर मजा यह है कि जिन्हें मैंने गायें दी हैं वे भी मुझे बौड़म कहते हैं। मैं भी इस नामका इतना आदी हो गया हूं कि अब मुझे इससे मुहब्बत हो गई है।

मैं—आप ऐसे बौड़म काश मुल्कमें और ज्यादा होते।

खलील—लीजिये आपने भी बनाना शुरू कर दिया। यह देखिये आमका बाग है। मैं उसकी रखवाली करता हूं। लोग कहते हैं जहां हजारोंका नुकसान हो रहा है वहां तो देख-भाल करता नहीं, जरासी बगियाकी रखवालीमें इतना मुस्तैद। जनाब, यहां लड़कोंका यह हाल है कि एक आम तो खाते हैं और पचीस आम गिराते हैं। कितने पेड़पर ही चोट खा जाते हैं और फिर किसी कामके नहीं रहते। मैं चाहता हूं आम पक आयं, जमीनपर टपकने लगें, तब जिसका जी चाहे चुन ले जाय। कच्चे आम खराब करनेसे क्या फायदा? यह भी मेरे बौड़मपनेमें दाखिल है।

ये बातें हो ही रही थीं कि सहसा तीन-चार आदमी एक बनियेको पकड़े, घसीटते हुए आते दिखाई दिये। पूछा तो उन चारों आदमियोंमेंसे एकने, जो सूरतसे मौलवी मालूम होते थे; कहा—यह बड़ा बेईमान है, इसके बांट कम हैं। अभी इसके यहांसे सेरभर घी ले गया हूं। घरपर तौलता हूं तो आध पाव गायब। अब जो लौटाने आया हूं तो कहता है मैंने तो पूरा तौला

था। पूछो अगर तूने पूरा तौला था तो क्या मैं रास्तेमें खा गया। अब ले चलता हूं थानेपर, वहीं इनकी मरम्मत होगी।

दूसरे महाशय, जो वहां डाकखानेके मुन्शी थे, बोले—इसकी हमेशाकी यही आदत है, कभी पूरा नहीं तौलता। आज ही दो आनेकी शक्कर मंगवायी। लड़का घर लेकर गया तो मुश्किलसे एक आनेकी थी। लौटाने आया तो आखें दिखाने लगा। इसके बांटोंकी आज जरूर जांच करानी चाहिये।

तीसरा आदमी अहीर था। अपने सिरपरसे खलीकी गठरी उतारकर बोला—साहब, यह ॥) की खली है। ६ सेरके भावसे दी थी। घरपर तौला तो २ सेर हुई। लाया कि लौटा दूंगा, पर यह लेता ही नहीं। अब इसका निबटारा थानेहीमें होगा। इसपर कई आदमियोंने कहा—हां, यह सचमुच बेईमान आदमी है।

बनियेने कहा—अगर मेरे बांट रत्ती भर कम निकलें तो हजार रुपये डांड़ दूं।

मौलवी साहबने कहा—तो कम्बख्त तू टाँको मारता होगा।

मुन्शीजी बोले—बस टाँकी मार देता है, यही बात है।

अहीरने कहा—दोहरे बाँट रखे हैं। दिखानेके और, बेचनेके और। इसके घरको पुलिस तलाशी ले।

बनियेने फिर प्रतिवाद किया, पकड़नेवालोंने फिर आक्रमण किया, इसी तरह कोई आध घण्टातक तकरार होती रही। मेरी समझमें न आता था कि क्या करूं। बनियेको छुड़ानेके लिये जोर दूं या जाने दूं। बनियेसे सभी जले हुए मालूम होते थे। खलील

को देखा तो गायब। न जाने कब उठकर चला गया? बनिया किसी तरह न दबता था, यहाँतक कि थाने जानेसे भी न डरता था।

ये लोग थाने जाया ही चाहते थे कि बौड़म सामनेसे आता दिखायी दिया। उसके एक हाथमें एक कटोरा था, दूसरे हाथमें एक टोकरी और पीछे एक ७-८ बरसका लड़का। उसने आते ही मौलवी साहबसे कहा—यह कटोरा आपहीका है काजोजी?

मौलवी—(चौंककर) हाँ है तो, फिर? तुम मेरे घरसे इसे क्यों लाये?

बौड़म—इसलिये कि कटोरेमें वही आध पाव घी है जिसके विषयमें आप कहते हैं कि बनियेने कम तौला। घी वही है। वजन वही है। बेईमानी गरीब बनियेकी नहीं है, बल्कि काजी, हाजी, मौलवी जहूर अहमदकी।

मौलवी—तुम अपना बौड़मपना यहाँ न दिखाना नहीं तो मैं किसीसे डरनेवाला नहीं हूं। तुम लखपती होगे तो अपने घरके होगे। तुम्हें क्या मजाल था मेरे घरमें जानेका?

बौड़म—वही जो आपको बनियेको थाने ले जानेका है। अब यह घी भी थाने जायेगा।

मौलवी—(सिट-पिटाकर) सबके घरमें थोड़ी बहुत चीज रखी ही रहती ह। कसम कुरान शरीफकी, मैं अभी तुम्हारे वालिद-के पास जाता हूं, आजतक गांवभरमें किसीने मुझपर ऐसा इल-जाम नहीं लगाया था।

बनिया—मौलवी साहब आप जाते कहाँ हैं? चलिए हमारा

आपका फैसला थानेमें होगा। मैं एक न मानूंगा। कहलानेको मौलवी, दीनदार ऐसे बनते हैं कि देवता ही हैं। पर घरमें चीज रखकर दूसरोंको बेईमान बनाते हैं। यह लम्बी दाढ़ी धोखा देनेके लिये ही बढ़ायी है?

मगर मौलवी साहब न रुके। बनियेको छोड़कर खलीलके बापके पास चले गये, जो इस वक्त शर्मसे बचनेका महज बहाना था।

तब खलीलने अहीरसे कहा—क्यों बे, तू भी थाने जा रहा है? चल मैं भी चलता हूं। तेरे घरसे यह सेरभर खली लेता आया हूं।

अहीरने मौलवी साहबकी दुर्गति देखी तो चेहरेपर हवाइयां उड़ने लगीं, बोला—भैया जवानीकी कसम है, मुझे मौलवी साहब-ने सिखा दिया था।

खली—दूसरोंके सिखानेसे तुम किसीके घरमें आग लगा दोगे? खुद तो बचा दूधमें आधा पानी मिला-मिलाकर बेचते हो। मगर आज तुमको इतनी मुटमरदी सवार हो गई कि एक भले आदमीको तबाह करनेपर आमादा हो गये। खली उठाकर घरमें रखा ली उसपर बनियेसे कहते हो कि कम तौला।

बनिया—भैया, मेरी लाख रुपयेकी इज्जत बिगड़ गयी। मैं थानेमें रपट किये बिना न मानूंगा।

अहीर—साहजी अबकी माफ करो, नहीं तो कहींका न रहूंगा।

तब खलीलने मुन्शीजीसे कहा—कहिये जनाब, आपको कलई खोलें या चुपकेसे घरकी राह लीजियेगा।

मुंशी—तुम बिचारे मेरी कलई क्या खोलोगे। मुझे भी अहीर समझ लिया है कि जो तुम्हारी भपकियोंमें आऊंगा ?

खलील (लड़केसे)—क्यों बेटा, तुम शक्कर लेकर सीधे घर चले गये थे।

लड़का—(मुन्शीजीको सशङ्क नेत्रोंसे देखकर) न बताऊंगा।

मुन्शी—लड़कोंको जैसा सिखा दोगे वैसा करेंगे।

खलील—बेटा, अभी तुमने मुझसे जो कहा था वही फिर कह दो।

लड़का-दादा मारेंगे।

मुंशी—क्या तूने रास्तेमें शक्कर फाँक ली थी ?

लड़का रोने लगा।

खलील—जी हां, इसने मुझसे खुद कहा। पर आपने उसे तो पूछा नहीं, बनियेके सिर हो गये। यही शराफत है।

मुन्शी—मुझे क्या मालूम था कि उसने रास्तेमें यह शरारत की ?

खलील—तो ऐसे कमजोर सबूतपर आप थाने क्योंकर चले थे ? आप गंवारोंको मनीआर्डरके रुपये देते हैं तो दस रुपयेपर दो आने अपनी दस्तूरी काट लेते हैं। टकेके पोस्टकार्ड आनेमें बेचते हैं, जब कहिये तब साबित कर दूं। उसे क्या आप बेईमानी नहीं समझते ?

मुन्शीजीने बौड़मके मुंह लगना मुनासिब न समझा। लड़केको मारते हुए घर ले गये। बनियेने बौड़मको खूब आशीर्वाद

दिया। दर्शक लोग भी धीरे-धीरे चले गये। तब मैंने खलीलसे कहा—आपने इस बनियेकी जान बचा ली नहीं तो बेचारा बेगुनाह पुलिसके पंजेमें फंस जाता।

खलील—आप जानते हैं इसका मुझे क्या सिला (इनाम) मिलेगा। थानेदार मेरे दुश्मन हो जायंगे। कहेंगे यह मेरे शिकारोंको भगा दिया करता है। वालिद साहब पुलिससे थर-थर कांपते हैं। मुझे हाथों लेंगे कि तू दूसरोंके बीचमें क्यों दखल देता है ? यहां यह भी बौड़मपनमें दाखिल है। एक बनियेके पीछे मुझे भले आदमियोंकी कलई खोलनी मुनासिब न थी। ऐसी हरकत बौड़म लोग किया करते हैं।

मैंने श्रद्धापूर्ण शब्दोंमें कहा—अब मैं आपको इसी नामसे पुकारूंगा। आज मुझे मालूम हुआ कि बौड़म देवताओंको कहा हैं ! जो स्वार्थपर आत्माको भेंट कर देता वह चतुर है, बुद्धिमान है। जो आत्माके सामने सच्चे सिद्धान्तके सामने, सत्यके सामने स्वार्थकी, निन्दाकी परवा नहीं करता वह बौड़म है, निर्बुद्धि है।

गुप्तधन

१

बाबू हरिदासका ईंटोंका पजावा शहरसे मिला हुआ था। आसपासके देहातोंसे सैकड़ों स्त्री, पुरुष लड़के नित्य आते और पजावेसे ईंटें सिरपर उठाकर ऊपर कतारोंमें सजाते। एक आदमी पजावेके पास एक टोकरीमें कौड़ियां लिये बैठा रहता था। मजूरोंको ईंटोंकी संख्याके हिसाबसे कौड़ियां बांटता। ईंटें जितनी ही ज्यादा होतीं उतनी ही ज्यादा कौड़ियां मिलतीं। इस लोभमें बहुतसे मजूर बूते बाहर काम करते। वृद्धों और बालकोंको ईंटोंके बोझसे अकड़े हुए देखना बहुत करुणाजनक दृश्य था। कभी-कभी बाबू हरिदास स्वयं आकर कौड़ीवालेके पास बैठ जाते और मजूरोंको और ईंटें लादनेको प्रोत्साहित करते। यह दृश्य तब और भी दारुण हो जाता था जब ईंटोंकी कोई असाधारण आवश्यकता आ पड़ती। उसमें मजूरी दूनी कर दी जाती थी और मजूर लोग अपनी सामर्थ्यसे दूनी ईंटें लेकर चलते। एक-एक पग उठना कठिन हो जाता। उन्हें सिरसे पैरतक पसीनेमें डूबे पजावेकी राख शरीरपर चढ़ाये ईंटोंका एक पहाड़ सिरपर रखे, बोझसे दबे हुए देखकर ऐसा ज्ञान पड़ता था मानो लोभका भूत उन्हें जमीनपर पटक कर उनके सिरपर सवार हो गया है। सबसे करुण दशा एक छोटे लड़केकी थी जो सदैव

अपनी अवस्थाके लड़कोंसे दुगनी ईंटें उठाता और सारे दिन अविश्रान्त परिश्रम और धैर्यके साथ अपने काममें लगा रहता। उसके मुखपर ऐसी दीनता छायी रहती थी, उसका शरीर इतना कृश और दुर्बल था कि उसे देखकर दया आ जाती थी। और लड़के बनियेकी दूकानसे गुड़ लाकर खाते, कोई सड़कपरसे जानेवाले इक्कों और हवागाड़ियोंकी बहार देखता और कोई व्यक्तिगत संग्राममें अपनी जिह्वा और बाहुके जौहर दिखाता। लेकिन इस गरीब लड़केको अपने कामसे काम था। उसमें लड़कपनकी न चञ्चलता थी, न शरारत, न खिलाड़ीपन, यहांतक कि उसके ओठोंपर कभी हंसी भी न आती थी। बाबू हरिदासको उसकी दशापर दया आती। कभी-कभी कौड़ीवालेको इशारा करते कि उसे हिसाबसे अधिक कौड़ियां दे दो। कभी कभी वे उसे कुछ खानेको दे देते।

एक दिन उन्होंने उस लड़केको बुलाकर अपने पास बैठाया और उसके समाचार पूछने लगे। ज्ञात हुआ कि उसका घर पास ही के गांवमें है। घरमें एक वृद्धा माताके सिवा कोई नहीं है और वह वृद्धा भी किसी पुराने रोगसे ग्रस्त रहती है। घरका सारा भार इसी लड़केके सिर था। कोई उसे रोटियां बनाकर देनेवाला भी न था। शामको घर जाता तो अपने हाथोंसे रोटियां बनाता और अपनी माको खिलाता था। जातिका ठाकुर था। किसी समय उसका कुल धन-धान्य-सम्पन्न था। लेन-देन होता था और शक्करका कारखाना चलता था। कुछ जमीन

भी थी, किन्तु भाइयोंकी स्पर्धा और विद्वेषने उसे इतनी हीनावस्थाको पहुंचा दिया था कि अब रोटियोंके लाले थे। लड़केका नाम मगनसिंह था। हरिदासने पूछा—गांववाले तुम्हारी कुछ मदद नहीं करते ?

मगन—वाह, उनका बस चले तो मुझे मार डालें। सब समझते हैं कि मेरे घरमें रुपये गड़े हैं।

हरिदासने उत्सुकतासे पूछा—पुराना घराना है, कुछ-न-कुछ तो होगा ही। तुम्हारी माने इस विषयमें तुमसे कुछ नहीं कहा ?

मगन—बाबूजी, कहीं एक पैसा भी नहीं है। रुपये होते तो अम्मा इतनी तकलीफ क्यों उठाती।

२

बाबू हरिदास मगनसिंहके स्वभावसे इतने प्रसन्न हुए कि उसे मजूरोंकी श्रेणीसे उठाकर अपने नौकरोंमें रख लिया। उसे कौड़ियां बांटनेका काम दे दिया और पजावेके मुन्शीजीको ताकीद कर दी कि इसे कुछ लिखना-पढ़ना सिखाइये। अनाथके भाग्य जाग उठे।

मगनसिंह बड़ा कर्त्तव्यशील और चतुर लड़का था। उसे कभी देर न होती, कभी नागा न होता। थोड़े ही दिनोंमें उसने बाबू साहबका विश्वास प्राप्त कर लिया। लिखने-पढ़नेमें भी कुशल हो गया।

बरसातके दिन थे। पजावेमें पानी भरा हुआ था। कारबार बन्द था। मगनसिंह तीन दिनोंसे गैरहाजिर था। हरिदासको चिन्ता हुई, क्या बात है, कहीं बीमार तो नहीं हो गया, कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी ? कई आदमियोंसे पूछताछ की, पर कुछ पता न चला। चौथे दिन पूछते-पूछते मगनसिंहके घर पहुंचे। घर क्या था पुरानी समृद्धिका ध्वंसावशेषमात्र था। उनकी आवाज सुनते ही मगनसिंह बाहर निकल आया। हरिदासने पूछा—कई दिनसे आये क्यों नहीं, माताका क्या हाल है ?

मगनसिंहने अवरुद्ध कंठसे उत्तर दिया—अम्मा आजकल बहुत बीमार है, कहती हैं अब न बचूंगी। कई बार आपको बुलानेके लिये मुझसे कह चुकी है, पर मैं सङ्कोचके मारे आपके पास न आता था। अब आप सौभाग्यसे आ गये हैं तो जरा चलकर उन्हें देख लीजिये। उनकी लालसा भी पूरी हो जाय।

हरिदास भीतर गये। सारा घर भौतिक निस्सारताका परिचायक था। सुर्खी, कंकड़, ईंटोंके ढेर चारों ओर पड़े हुए थे। विनाशका प्रत्यक्ष स्वरूप था। केवल दो कोठरियां गुजर करने लायक थीं। मगनसिंहने एक कोठरीकी ओर उन्हें इशारेसे बुलाया। हरिदास भीतर गये, तो देखा कि वृद्धा एक सड़े हुए काठके टुकड़ेपर पड़ी कराह रही है। उनकी आहट पाते ही आंखें खोलीं और अनुमानसे पहचान गयी, बोली—आप आ गये, बड़ी दया की। आपके दर्शनोंकी बड़ी अभिलाषा थी। मेरे अनाथ बालकके नाथ अब आप ही हैं। जैसे आपने अबतक उसकी रक्षा की है वही निगाह उसपर सदैव बनाये रखियेगा। मेरी विपत्तिके दिन पूरे हो गये। इस मिट्टीको पार लगा दीजियेगा। एक दिन

इस घरमें लक्ष्मीका वास था। अदिन आये तो उन्होंने भी आंखें फेर लीं। पुरुषाओंने इसी दिनके लिये कुछ थाती धरती माताको सौंप दी थी। उसका बीजक बड़े यत्नसे रखा था, पर बहुत दिनोंसे उसका कहीं पता न चलता था। मगनके पिताने बहुत खोजा, पर न पा सके, नहीं तो आज हमारी दशा इतनी हीन न होती। आज तीन दिन हुए मुझे वह बीजक आप-ही-आप रद्दी कागदोंमें मिल गया। तबसे उसे छिपाकर रखे हुए हूं, मगन बाहर है न? मेरे सिरहाने जो सन्दूक रखी है उसीमें वह बीजक है। उसमें सब बातें लिखी हैं। उसीसे ठिकानेका भी पता चलेगा। अवसर मिले तो उसे खुदवा डालियेगा। मगनको दे दीजियेगा। यही कहनेके लिये आपको बार-बार बुलाती थी। आपके सिवा मुझे और किसीपर विश्वास न था। संसारसे धरम उठ गया। किसकी नीयतपर भरोसा किया जाय।

३

हरिदासने बीजकका समाचार किसीसे न कहा। नीयत बिगड़ गयी। दूधमें मक्खी पड़ गयी।

बीजकसे ज्ञात हुआ कि धन उस घरसे ५०० डेग पच्छिमकी ओर एक मन्दिरके चबूतरेके नीचे है।

हरिदास धनको भोगना चाहते थे, पर इस तरह कि किसीको कानोंकान खबर न हो। काम कष्टसाध्य था। नामपर धब्बा लगनेकी प्रबल आशंका थी जो संसारमें सबसे बड़ी यन्त्रणा है। कितनी घोर नीचता थी। जिस अनाथकी रक्षा की, जिसे बच्चेकी भांति पाला उसके साथ यह विश्वासघात! कई दिनोंतक आत्मवेदनाकी पीड़ा सहते रहे। अन्तको कुतर्कोंने विवेकको परास्त कर दिया। मैंने कभी धर्मका परित्याग नहीं किया और न कभी करूंगा। क्या कोई ऐसा प्राणी भी है जो जीवनमें एक बार भी विचलित न हुआ हो? यदि है तो वह मनुष्य नहीं, देवता है। मैं मनुष्य हूं। मुझे देवताओंकी पंक्तिमें बैठनेका दावा नहीं है।

मनको समझाना बच्चेको फुसलाना है। हरिदास सांझको सैर करनेके लिये घरसे निकल जाते। जब चारों ओर सन्नाटा छा जाता तो मन्दिरके चबूतरेपर आ बैठते और एक कुदालीसे उसे खोदते। दिनमें भी दो-एक बार इधर-उधर ताक-झांक करते कि कोई चबूतरेके पास खड़ा तो नहीं है। रातको निस्तब्धतामें उन्हें अकेले बैठे ईंटोंको हटाते हुए उतना ही भय होता था जितना किसी भ्रष्ट वैष्णवको आमिष-भोजनसे होता है।

चबूतरा लम्बा-चौड़ा था। उसे खोदते एक महीना लग गया और अभी आधी मंजिल भी तय न हुई। इन दिनों उनकी दशा उस पुरुषकी-सी थी जो कोई मन्त्र जगा रहा हो। चित्तपर चञ्चलता छाई रहती। आंखोंकी ज्योति तीव्र हो गयी थी। बहुत गुम-गुम रहते, मानों ध्यानमें हैं। किसीसे बातचीत न करते, अगर कोई छेड़कर बात करता तो झुंझला पड़ते। पजावेकी ओर बहुत कम जाते। विचारशील पुरुष थे। आत्मा बार-बार इस कुटिल व्यापारसे भागती, निश्चय करते कि अब चबूतरेकी ओर न जाऊंगा, पर सन्ध्या होते ही उनपर एक नशा-सा छा

जाता, बुद्धि-विवेकका अपहरण हो जाता। जैसे कुत्ता मार खा-कर थोड़ी देरके बाद फिर टुकड़ेकी लालचमें आ बैठता है, वही दशा उनकी थी। यहांतक कि दूसरा मास भी व्यतीत हुआ।

अमावसकी रात थी। हरिदास मलिन हृदयमें बैठी हुई कालिमाकी भांति चबूतरेपर बैठे हुए थे। आज चबूतरा खुद जायगा। जरा देरतक और मेहनत करनी पड़ेगी। कोई चिन्ता नहीं। घरके लोग चिन्तित हो रहे होंगे। पर अभी निश्चय हुआ जाता है कि चबूतरेके नीचे क्या है। पत्थरका तहखाना निकल आया तो समझ जाऊंगा कि धन भी अवश्य होगा। तहखाना न मिले तो मालूम हो जायगा कि सब धोखा ही धोखा है। कहीं सचमुच तहखाना न मिले तो बड़ी दिल्लगी हो। मुफ्तमें उल्लू बनूं। पर नहीं, कुदाली खट-खट हो रही है। हां, पत्थरकी चटान है। उन्होंने टटोलकर देखा। भ्रम दूर हो गया। चटान थी। तह-खाना मिल गया। लेकिन हरिदास खुशीसे उछले-कूदे नहीं।

आज वे लौटे तो सिरमें दर्द था। समझे थकन है। लेकिन यह थकन नींदसे न गयी। रातको ही उन्हें जोरका बुखार हो गया। अभी सवेरा भी न हुआ था कि उनकी हालत खराब हो गयी। तीन दिनतक वे ज्वरमें पड़े रहे। किसी दवासे फायदा न हुआ।

इस रुग्णावस्थामें हरिदासको बार-बार भ्रम होता था कहीं यह मेरी तृष्णाका दण्ड तो नहीं है। जीमें आता था मगनसिंहको बीजक दे दूं और क्षमाकी याचना करूं; पर भण्डाफोड़ होनेका भय मुंह बन्द कर देता था। न जाने ईसाके अनुयायी अपने पाद-रियोंके सम्मुख क्योंकर अपने जीवनभरके पापोंकी कथा सुनाया करते थे।

४

हरिदासकी मृत्युके पीछे वह बीजक उनके सुपुत्र प्रभुदासके हाथ लगा। बीजक मगनसिंहके पुरुषाओंका लिखा हुआ है, इसमें लेश-मात्र भी सन्देह न था। लेकिन उन्होंने सोचा—"पिताजीने कुछ सोचकर ही इस मार्गपर पग रखा होगा। वे कितने नीति-परायण, कितने सत्यवादी पुरुष थे। उनकी नीयतपर कभी किसी-को सन्देह नहीं हुआ। जब उन्होंने इस आचरणको घृणित नहीं समझा तो मेरी क्या गिनती है। कहीं यह धन हाथ आ जाय तो कितने सुखसे जीवन व्यतीत हो। शहरके रईसोंको दिखा दूं कि धनका सदुपयोग क्योंकर होना चाहिये। बड़े बड़ोंका सिर नीचा कर दूं। कोई आंखें न मिला सके। इरादा पक्का हो गया।

शाम होते ही वे घरसे निकले। वही समय था, वही चौकन्नी आंखें थीं और वही तेज कुदाली थी। ऐसा ज्ञात होता था मानों हरिदासकी आत्मा इस नये भेषमें अपना काम कर रही है।

चबूतरेका धरातल पहले ही खुद चुका था। अब सङ्गीन तह-खाना था, जोड़ोंको हटाना कठिन था। पुराने जमानेका पक्का मसाला था, कुल्हाड़ी उचट-उचटकर लौट आती थी। कई दिनोंमें ऊपरकी दराजें खुलीं, लेकिन चटानें जरा भी न हिलीं। तब वह लोहेकी छड़से काम लेने लगे, लेकिन कई दिनतक जोर लगानेपर

भी चटानें न खिसकीं। सब कुछ अपने ही हाथों करना था। किसीसे सहायता न मिल सकती थी। यहांतक कि फिर वही अमावस्याकी रात आयी। प्रभुदासको जोर लगाते बारह बज गये और चटानें भाग्य-रेखाओंकी भांति अटल थीं।

पर, आज इस समस्याको हल करना आवश्यक था। कहीं तहखानेपर किसीकी निगाह पड़ जाय तो मेरे मनकी लालसा मनहीमें रह जाय।

वह चटानपर बैठकर सोचने लगे, क्या करूं। बुद्धि कुछ काम नहीं करती। सहसा उन्हें एक युक्ति सूझी। क्यों न बारूदसे काम लूं? इतने अधीर हो रहे थे कि कलपर इस कामको न छोड़ सके। सीधे बाजारकी तरफ चले, दो मीलका रास्ता हवाकी तरह तय किया। पर वहां पहुंचे तो दूकानें बन्द हो चुकी थीं। आतिशबाज हीले करने लगा। बारूद इस समय नहीं मिल सकती। सरकारी हुकुम नहीं है। तुम कौन हो? इस वक्त बारूद लेकर क्या करोगे? ना भैया, कोई वारदात हो जाय तो मुफ्तमें बंधा-बंधा फिरूं। तुम्हें कौन पूछेगा।

प्रभुदासकी शान्ति-वृत्ति कभी इतनी कठिन परीक्षामें न पड़ी थी। वे अन्ततक अनुनय-विनय ही करते रहे, यहांतक कि मुद्राओंकी सुरीली झङ्कारने उन्हें वशीभूत कर लिया। प्रभुदास यहांसे चले तो धरतीपर पांव न पड़ते थे।

रातके दो बजे थे। प्रभुदास मन्दिरके पास पहुंचे। चटानोंकी दराजोंमें बारूद रखकर फलीता लगा दिया और दूर भागे। एक

क्षणमें बड़े जोरका धमाका हुआ। चटान उड़ गयी। अन्धेरा गार सामने सामने था, मानों कोई पिशाच उन्हें निगल जानेके लिये मुंह खोले हुए है।

६

प्रभातका समय था। प्रभुदास अपने कमरेमें लेटे हुए थे। सामने लोहेके सन्दूकमें दस हजार पुरानी मोहरें रखी हुई थीं। उनकी माता सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी। प्रभुदास ज्वरकी ज्वालासे जल रहे थे। करवटें बदलते थे, कराहते थे, हाथ पांव पटकते थे; पर आंखें लोहेके सन्दूककी ओर लगी हुई थीं। इसीमें उनके जीवनकी आशायें बन्द थीं।

मगनसिंह अब पजावेका मुन्शी था। इसी घरमें रहता था। आकर बोला—पजावे चलियेगा? गाड़ी तैयार कराऊं?

प्रभुदासने उसके मुखकी ओर क्षमा-याचनाकी दृष्टिसे देखा और बोले—नहीं, मैं आज न चलूंगा, तबीयत अच्छी नहीं है। तुम भी मत जाओ।

मगनसिंह उनकी दशा देखकर डाक्टरको बुलाने चला गया।

दस बजते-बजते प्रभुदासका मुख पीला पड़ गया। आंखें लाल हो गयीं। माताने उनकी ओर देखा तो शोकसे विह्वल हो गयी। बाबू हरिदासकी अन्तिम दशा उसकी आंखोंमें फिर गयी। जान पड़ता था, यह उसी शोक-घटनाकी पुनरावृत्ति है। वह देवताओंकी मनौतियाँ मना रही थी; किन्तु प्रभुदासकी आंखें उसी

लोहेके सन्दूककी ओर लगी हुई थीं, जिसपर उन्होंने अपनी आत्मा अर्पण कर दी थी।

उनकी स्त्री आकर उनके पैताने बैठ गयी और बिलख-बिलखकर रोने लगी। प्रभुदासकी आंखोंसे भी आंसू बह रहे थे, पर वे आंखें उसी लोहेके सन्दूककी ओर निराशा-पूर्ण भावसे ताक रही थीं।

डाक्टरने आकर देखा, दवा दी और चला गया। पर दवाका असर उल्टा हुआ। प्रभुदासके हाथ-पाँव सर्द हो गये, मुख निस्तेज हो गया, हृदयकी गति मन्द पड़ गयी। पर आंखें सन्दूककी ओरसे न हटीं।

मुहल्लेके लोग जमा हो गये। पिता और पुत्रके स्वभाव और चरित्रपर टिप्पणियां होने लगीं। दोनों शील और विनयके पुतले थे। किसीको भूलकर भी कड़ी बात न कही। प्रभुदासका सम्पूर्ण शरीर ठण्डा हो गया था। प्राण था तो केवल नेत्रोंमें। वे अब भी उसी लोहेके सन्दूककी ओर सतृष्ण भावसे ताक रही थीं।

घरमें कोहराम मचा हुआ था। दोनों महिलायें पछाड़े खा-खाकर गिरती थीं। मोहल्लेकी स्त्रियां उन्हें समझाती थीं। अन्य मित्रगण आंखोंपर रूमाल लगाये हुए थे। जवानकी मौत संसारका सबसे करुण, सबसे अस्वाभाविक और सबसे भयङ्कर दृश्य है। यह वज्राघात है, विधाताकी निर्दय लीला है। प्रभुदासका सारा शरीर प्राणहीन हो गया था, पर आंखें जीवित थीं। वे अब

भी उसी सन्दूककी ओर लगी हुई थीं। जीवने तृष्णाका रूप धारण कर लिया था। सांस निकलती है, पर आज नहीं निकलती।

इतनेमें मगनसिंह सामने आकर खड़ा हो गया। प्रभुदासकी निगाह उसपर पड़ी। ऐसा जान पड़ा मानों उनके शरीरमें फिर रक्तका संचार हुआ। अङ्गोंमें स्फूर्तिके चिह्न दिखाई दिये। इशारेसे अपने मुंहके निकट बुलाया; उसके कानमें कुछ कहा, एक बार लोहेके सन्दूककी ओर इशारा किया और आंखें उलट गयीं; प्राण निकल गये।

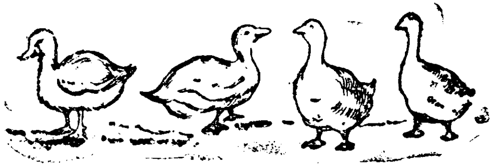

आदर्श विरोध

१

महाशय दयाकृष्ण मेहताके पाँव जमीनपर न पड़ते थे। उनकी वह आकांक्षा पूरी हो गयी थी जो उनके जीवनका मधुर स्वप्न थी। उन्हें वह राज्याधिकार मिल गया था जो भारत-निवासियोंके लिये जीवन-स्वर्ग है। वायसरायने उन्हें अपनी कार्यकारिणी सभाका मेम्बर नियुक्त कर दिया था।

मित्रगण उन्हें बधाइयाँ दे रहे थे। चारों ओर आनन्दोत्सव मनाया जा रहा था। कहीं दावतें होती थीं, कहीं आश्वासन-पत्र दिये जाते थे। यह उनका व्यक्तिगत सम्मान नहीं, राष्ट्रीय सम्मान समझा जाता था। अंगरेज अधिकारिवर्ग भी उन्हें हाथों-हाथ लिये फिरता था।

महाशय दयाकृष्ण लखनऊके एक सुविख्यात बैरिस्टर थे। बड़े उदार-हृदय, राजनीतिमें कुशल तथा प्रजाभक्त थे। सदैव सार्वजनिक कार्योंमें तल्लीन रहते थे। समस्त देशमें शासनका ऐसा निर्भय, तत्त्वान्वेषी, ऐसा निस्पृह समालोचक न था और न प्रजाका ऐसा सूक्ष्मदर्शी, ऐसा विश्वसनीय और ऐसा सहृदय बन्धु।

समाचार-पत्रोंमें इस नियुक्तिपर खूब टीकायें हो रही थीं। एक ओरसे आवाज आती थी "हम गवर्नमेन्टको इस चुनावपर

बधाई नहीं दे सकते" दूसरी ओरके लोग कहते थे—"यह सरकारकी उदारता और प्रजाहित-चिन्ताका सर्वोत्तम प्रमाण है।" एक तीसरा दल भी था, जो दबी जबानसे कहता था कि राष्ट्रका एक और स्तम्भ गिर गया।

संध्याका समय था कैसरपार्कमें लिबरल लीगकी ओरसे महाशय मेहताको पार्टी दी गयी थी। प्रान्तभरके विशिष्ट पुरुष एकत्र थे। भोजनके पश्चात् सभापतिने अपनी वक्तृतामें कहा—हमें पूरा विश्वास है कि आपका अधिकार-प्रवेश 'प्रजाके लिये हितकर होगा, और आपके प्रयत्नोंसे उन धाराओंमें संशोधन हो जायगा जो हमारे राष्ट्रीय जीवनमें बाधक हैं।

महाशय मेहताने उत्तर देते हुए कहा—राष्ट्रके कानून वर्तमान परिस्थितियोंके अधीन होते हैं। जबतक परिस्थितिमें परिवर्तन न हो, कानूनमें सुव्यवस्थाकी आशा करना भ्रम है।

सभा विसर्जित हो गयी। एक दलने कहा—"कितना न्याय-युक्त और प्रशंसनीय राजनैतिक सिद्धान्त है।" दूसरा पक्ष बोला—"आ गये जालमें।" तीसरे दलने नैराश्यपूर्ण भावसे सिर हिला दिया, पर मुँहसे कुछ न कहा।

२

मि० दयाकृष्णको दिल्ली आये हुए एक महीना हो गया। फागुनका महीना था। शाम हो रही थी। वे अपने उद्यानमें हौजके किनारे एक मखमली आराम-कुरसीपर बैठे थे, मिसेज राजेश्वरी मेहता सामने बैठी हुई प्यानो बजाना सीख रही थीं

और मिस मनोरमा हौजकी मछलियोंको विस्कुटके टुकड़े खिला रही थीं। सहसा उसने पितासे पूछा—यह अभी कौन साहब आये थे?

मेहता—कौंसिलके सैनिक मेम्बर हैं।

मनोरमा—वाइसरायके नीचे यही होंगे?

मेहता—वाइसरायके नीचे तो सभी हैं। वेतन भी सबका बराबर है; लेकिन इनकी योग्यताको कोई नहीं पहुँचता। क्यों राजेश्वरी, तुमने देखा, अंगरेज लोग कितने सज्जन और विनयशील होते हैं!

राजेश्वरी—मैं तो इन्हें विनयकी मूर्ति कहती हूँ। इस गुणमें भी ये हमसे बढ़े हुए हैं। उनकी पत्नी मुझसे कितने प्रेमसे गले मिलीं।

मनोरमा—मेरा तो जी चाहता था, उनके पैरोंपर गिर पड़ूं।

मेहता—मैंने ऐसे उदार, शिष्ट, निष्कपट और गुणग्राही मनुष्य नहीं देखे। हमारा दया-धर्म कहनेहीको है। मुझे इसका बहुत खेद है कि अबतक क्यों इनसे बदगुमान रहा। सामान्यतः इनसे हम लोगोंको जो शिकायतें हैं उनका कारण पारस्परिक सम्मिलनका न होना है। एक दूसरेके स्वभाव और प्रकृतिसे परिचित नहीं।

राजेश्वरी—एक यूनियन क्लबकी बड़ी आवश्यकता है, जहाँ दोनों जातियोंके लोग सहवासका आनन्द उठावें। मिथ्या द्वेष भावके मिटानेका एकमात्र यही उपाय है।

मेहता—मेरा भी यही विचार है। (घड़ी देखकर) ७ बज रहे हैं। व्यवसाय-मण्डलके जलसेका समय आ गया। भारत-निवासियोंकी विचित्र दशा है। वे समझते हैं कि हिन्दुस्तानी मेम्बर कौंसिलमें आते ही हिन्दुस्तानके स्वामी हो जाते हैं। जो चाहें स्वच्छन्दतासे कर सकते हैं। आशा की जाती है कि वे शासनकी प्रचलित नीतिको पलट दें, नया आकाश और नया सूर्य बना दें। उन सीमाओंपर विचार नहीं किया जाता है जिनके अन्दर मेम्बरोंको काम करना पड़ता है।

राजेश्वरी—इसमें उनका दोष नहीं। संसारकी यही रीति है कि लोग अपनोंसे सभी प्रकारकी आशा रखते हैं। अब तो कौंसिलके आधे मेम्बर हिन्दुस्तानी हैं। क्या उनकी रायका सरकारकी नीतिपर असर नहीं हो सकता?

मेहता—अवश्य हो सकता है, और हो रहा है, किन्तु उससे नीतिमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। आधे नहीं, अगर सारे मेम्बर हिन्दुस्तानी हों, तो भी वे किसी नई नीतिका उद्‌घाटन नहीं कर सकते। वे कैसे भूल जावें कि कौंसिलमें उनकी उपस्थिति केवल सरकारकी कृपा और विश्वासपर निर्भर है। इसके अतिरिक्त, यहाँ आकर उन्हें आन्तरिक अवस्थाका अनुभव होता है और जनताकी अधिकांश शंकायें असंगत प्रतीत होने लगती है, पदके साथ उत्तरदायित्वका भारी बोझ भी सिरपर आ पड़ता है। किसी नई नीतिकी सृष्टि करते हुए उनके मनमें यह चिन्ता उठनी स्वाभाविक है कि कहीं इसका फल आशाके विरुद्ध

न हो। यहां वस्तुतः उनकी स्वाधीनता नष्ट हो जाती है। उन लोगोंसे मिलते हुए भी झिझकते हैं जो पहले उनके सहकारी थे, पर अब अपने उच्छृङ्खल विचारोंके कारण सरकारकी आंखोंमें खटक रहे हैं। वे अपनी वक्तृताओंमें न्याय और सत्यकी बातें करते हैं और सरकारी नीतिको हानिकर समझते हुए भी उसका समर्थन करते हैं। जब इसके प्रतिकूल वे कुछ कर ही नहीं सकते, उसका विरोध करके अपमानित क्यों बनें? इस अवस्थामें यही सर्वोचित है कि शब्दाडम्बरसे काम लेकर अपनी मान-रक्षा की जाय। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऐसे सज्जन, उदार, नीतिज्ञ, शुभचिन्तकोंके विरुद्ध कुछ कहना या करना मनुष्यत्व और सद्व्यवहारका गला घोटना है। यह लो, मोटर आ गया। चलो व्यवसाय-मण्डलमें लोग आ गये होंगे।

ये लोग वहां पहुंचे तो करतलध्वनि होने लगी। सभापति महोदयने एड्रेस पढ़ा, जिसका निष्कर्ष यह था कि सरकारको उन शिल्प-कलाओंकी रक्षा करनी चाहिये जो अन्य देशी प्रतिद्वन्द्विता-के कारण मिटी जाती हैं, राष्ट्रकी व्यावसायिक उन्नतिके लिये नये-नये कारखाने खोलने चाहिये और जब वे सफल हो जावें तो उन्हें व्यावसायिक संस्थाओंके हवाले कर देना चाहिये। उन कलाओंकी आर्थिक सहायता करना भी उसका कर्त्तव्य है जो अभी शैशवावस्थामें हैं, जिससे जनताका उत्साह बढ़े।

मेहता महोदयने सभापतिको धन्यवाद देनेके पश्चात् सरकार-की औद्योगिक नीतिकी घोषणा करते हुए कहा—"आपके सिद्धांत

निर्दोष हैं, किन्तु उनको व्यवहारमें लाना नितान्त दुस्तर है। गवर्नमेन्ट आपको सम्मति प्रदान कर सकती है, लेकिन व्याव-सायिक कार्योंमें अग्रसर बनना जनताका काम है। आपको स्मरण रखना चाहिये कि ईश्वर भी उन्हींकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। आपमें विश्वास, औद्योगिक उत्साहका बड़ा अभाव है। पग-पगपर सरकारके सामने हाथ फैलाना अपनी अयोग्यता और अकर्मण्यताकी सूचना देना है।

दूसरे दिन समाचार-पत्रोंमें इस वक्तृतापर टीकायें होने लगीं। एक दलने कहा—मिस्टर मेहताकी स्पीचने सरकार-की नीतिको बड़ी स्पष्टता और कुशलतासे निर्धारित कर दिया है।

दूसरे दलने लिखा—हम मिस्टर मेहताकी स्पीच पढ़कर स्तम्भित हो गये। व्यवसाय-मण्डलने वही पथ ग्रहण किया जिसके प्रदर्शक स्वयं मिस्टर मेहता थे। उन्होंने इस लोकोक्तिको चरितार्थ कर दिया कि "नमकको खानमें जो कुछ जाता है नमक हो जाता है।"

तीसरे दलने लिखा—हम मेहता महोदयके इस सिद्धान्तसे सम्पूर्ण सहमत हैं कि हमें पग-पगपर सरकारके सामने दीन भाव-से हाथ न फैलाना चाहिये। यह वक्तृता उन लोगोंकी आँखें खोल देंगी जो कहते हैं कि हमें अपने योग्यतम पुरुषोंको कौंसिल-में भेजना चाहिये। व्यवसाय-मण्डलके सदस्योंपर हमें दया आती है जो आत्म-विश्वासका उपदेश ग्रहण करनेके लिये कानपुरसे दिल्ली गये थे।

३

चैतका महीना था। शिमला आबाद हो चुका था। मेहता महाशय अपने पुस्तकालयमें बैठे हुए कुछ पढ़ रहे थे कि राजेश्वरीने आकर पूछा—ये कैसे पत्र हैं?

मेहता—यह आय-व्ययका मसविदा है। आगामी सप्ताहमें कौन्सिलमें पेश होगा। इनकी कई मदें ऐसी हैं जिनपर मुझे पहले भी शङ्का थी और अब भी है। अब समझमें नहीं आता कि उसपर अनुमति कैसे दूँ। यह देखो, तीन करोड़ रुपये उच्च कर्मचारियोंकी वेतनवृद्धिके लिये रखे गये हैं। यहां 'कर्मचारियोंका वेतन पहलेसे ही बढ़ा हुआ है। इस वृद्धिकी जरूरत ही नहीं, पर यह बात जुबानपर कैसे लाऊं। जिन्हें इससे लाभ होगा वे सभी नित्यके मिलनेवाले हैं। सैनिक व्ययमें बीस करोड़ बढ़ गये हैं। जब हमारी सेनायें अन्य देशोंमें भेजी जाती हैं तो विदित ही है कि वह हमारी आवश्यकतासे अधिक हैं, लेकिन इस मदका विरोध करूं तो कौंसिल मुझपर उँगलियां उठाने लगे।

राजेश्वरी—इस भयसे चुप रह जाना तो उचित नहीं। फिर तुम्हारे यहां आनेसे ही क्या लाभ हुआ?

मेहता—कहना तो आसान है; पर करना कठिन है। यहां जो कुछ आदर-सम्मान है सब 'हाँ हुजूर' में है। वाइसरायकी निगाह जरा तिरछी हो जाय, तो कोई पास भी न फटके। नक्कू बन जाऊं। वह लो, राजा भद्र बहादुर सिंहजी आ गये।

राजेश्वरी—शिवराजपुर कोई बड़ी रियासत है?

मेहता—हां, १५ लाख वार्षिकसे कम आय न होगी और फिर स्वाधीन राज्य है।

राजेश्वरी—राजा साहब मनोरमाकी ओर बहुत आकर्षित हो रहे हैं। मनोरमाको भी उनसे प्रेम होता जान पड़ता है।

मेहता—यह सम्बन्ध हो जाय, तो क्या पूछना। यह मेरा अधिकार है जो राजा साहबको इधर खींच रहा है। लखनऊमें ऐसे सुअवसर कहां थे? वह देखो अर्थसचिव मास्टर काक आ गये।

काक—(मेहतासे हाथ मिलाते हुए) मिसेज मेहता, मैं आपके पहनावपर आसक्त हूं। खेद है, हमारी लेडियाँ साड़ी नहीं पहनतीं।

मिसेज मेहता—मैं तो अब गाउन पहनना चाहती हूं।

काक—नहीं, मिसेज मेहता; खुदाके वास्ते यह अनर्थ न करना। मिस्टर मेहता, मैं आपके वास्ते एक बड़ी खुशखबरी लाया हूं। आपके सुयोग्य पुत्र अभी आ रहे हैं या नहीं? महाराजा भिन्द उन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाना चाहते हैं। आप उन्हें आज ही सूचना दे दें।

मेहता—मैं आपका बहुत अनुग्रहीत हूं।

काक—तार दे दीजिये तो अच्छा हो। आपने काबुलकी रिपोर्ट तो पढ़ी होगी। हिज मैजेस्टी अमीर हमसे सन्धि करनेके लिये उत्सुक नहीं जान पड़ते। वे बोल्शेविकोंकी ओर झुके हुए हैं। अवस्था चिन्ताजनक है।

मेहता—मैं तो ऐसा नहीं समझता। गत शताब्दिमें काबुल-को भारतपर आक्रमण करनेका साहस कभी नहीं हुआ। भारत ही अग्रसर हुआ। हां, वे लोग अपनी रक्षा करनेमें कुशल हैं।

काक—लेकिन क्षमा कीजियेगा आप भूले जाते हैं कि ईरान अफगानिस्तान और बोल्शेविस्टोंमें सन्धि हो गयी है। क्या हमारी सीमापर इतने शत्रुओंका जमा हो जाना चिन्ताकी बात नहीं? उनसे सतर्क रहना हमारा कर्त्तव्य है।

इतनेमें लञ्च (जलपान) का समय आ गया। लोग मेजपर जा बैठे। उस समय घुड़दौड़ और नाट्यशालाकी चर्चा ही रुचिकर प्रतीत हुई।

४

मेहता महोदयने बजटपर जो विचार प्रकट किये उनसे समस्त देशमें हलचल मच गयी। एक दल उन विचारोंको देववाणी समझता था, दूसरा दल भी कुछ अंशोंको छोड़कर शेष विचारोंसे सहमत था किन्तु तीसरा दल वक्तृताके एक-एक शब्दपर निराशासे सिर धुनता और भारतकी अधोगतिपर रोता था। उसे विश्वास ही न आता था कि ये शब्द मेहताकी जबानसे निकले होंगे।

"मुझे आश्चर्य है कि गैर-सरकारी सदस्योंने एक स्वरसे प्रस्तावित व्ययके उस भागका विरोध किया है जिसपर देशकी रक्षा और शान्ति, सुदशा और उन्नति अवलम्बित है। आप शिक्षा-सम्बन्धी सुधारोंको, आरोग्य विधानको, नहरोंकी वृद्धिको अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। आपको अल्प वेतन पानेवाले कर्मचारियों-

का अधिक ध्यान है। मुझे आप लोगोंके राजनैतिक ज्ञानपर इससे अधिक विश्वास था। शासनका प्रधान कर्तव्य भीतर और बाहरकी अशान्तिकारी शक्तियोंसे देशको बचाना है। शिक्षा और चिकित्सा, उद्योग और व्यवसाय गौण कर्तव्य हैं। हम अपनी समस्त प्रजा-को अज्ञान-सागरमें निमग्न देख सकते हैं, समस्त देशको प्लेग और मलेरियामें ग्रसित रख सकते हैं, अल्प वेतनवाले कर्मचा-रियोंको दारुण चिन्ताका आहार बना सकते हैं, कृषकोंको प्रकृति की अनिश्चित दयापर छोड़ सकते हैं, किन्तु अपनी सीमापर किसी शत्रुको खड़े नहीं देख सकते। अगर हमारी आय सम्पूर्णतः देश-रक्षापर समर्पित हो जाय, तो भी हमको आपत्ति न होनी चाहिये। आप कहेंगे इस समय किसी आक्रमणकी सम्भावना नहीं है। मैं कहता हूं, संसारमें "असम्भव" का राज्य है। हवामें रेल चल सकती है, पानीमें आग लग सकती है, वृक्षोंमें वार्तालाप हो सकता है, जड़ चैतन्य हो सकता है। क्या ये रहस्य नित्य-प्रति हमारी नजरोंसे नहीं गुजरते? आप कहेंगे राजनीतिज्ञोंका काम सम्भावनाओंके पीछे दौड़ना नहीं, वर्तमान और निकट भविष्यकी समस्याओंको हल करना है। राजनीतिज्ञोंके कर्तव्य क्या हैं, मैं इस बहसमें नहीं पड़ना चाहता; लेकिन इतना तो सभी मानते हैं कि पथ्य-औषधि-सेवनसे अच्छा होता है। आप-का केवल यही धर्म नहीं कि सरकारके सैनिक व्ययका समर्थन करें, बल्कि यह मन्तव्य आपकी ओरसे पेश होना चाहिये। आप कहेंगे कि स्वयंसेवकोंकी सेना बनाई जाय। सरकारको हालके

महासंग्राममें इसका बहुत ही खेदजनक अनुभव हो चुका है। शिक्षितवर्ग विलासप्रिय, साहसहीन और स्वार्थसेवी हैं। देहातके लोग शान्तिप्रिय, संकीर्णहृदय (मैं भीरु न कहूंगा) और गृहसेवी हैं। उनमें वह आत्मत्याग कहां, वह वीरता कहां, अपने पुरुषाओंकी वीर-कथाएं कहां? और शायद मुझे यह याद दिलानेकी जरूरत नहीं कि किसी शान्तिप्रिय जनताको आप दो-चार वर्षोंमें रणकुशल और समर-प्रवीण बना सकते।"

५

जेठका महीना था, लेकिन शिमलेमें न लूकी ज्वाला थी और न धूपकी ताप। महाशय मेहता विलायती चिट्ठियां खोल रहे थे, 'बालकृष्ण' देखते ही फड़क उठे, लेकिन जब उसे पढ़ा तो मुख-मण्डलपर उदासी छा गई। पत्र लिये हुए राजेश्वरीके पास आये। उसने उत्सुक होकर पूछा, बालाका पत्र आया?

मेहता—हां, यह है।

राजेश्वरी—कब आ रहे हैं?

मेहता—आने-जानेके विषयमें तो कुछ नहीं लिखा, बस सारे पत्रमें मेरे जाति-द्रोह और दुर्नीतिका रोना है। उनकी दृष्टिमें मैं जातिका शत्रु, धूर्त, स्वार्थान्ध, दुरात्मा—सब कुछ हूं। मैं नहीं समझता कि उसके विचारोंमें इतना अन्तर कैसे हो गया। मैं तो इसे बहुत ही शान्त-प्रकृति गम्भीर सुशील सच्चरित्र और सिद्धान्तप्रिय नवयुवक समझता था और उसपर गर्व करता था। और फिर उसे यह पत्र लिखकर ही सन्तोष नहीं हुआ। उसने

मेरी स्पीचका विस्तृत विवेचन एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिकामें छपवाया है। इतनी कुशल हुई कि यह लेख अपने नामसे नहीं लिखा, नहीं तो मैं कहीं मुंह दिखाने योग्य न रहता। मालूम नहीं यह किन लोगोंकी कुसङ्गतिका फल है। महाराजा भिन्दकी नौकरी उसके विचारमें गुलामी है, राजा भद्रबहादुर सिंहके साथ मनोरमाका विवाह घृणित और अपमानजनक है। उसे इतना साहस कि मुझे धूर्त, मक्कार, ईमान बेचनेवाला, कुलद्रोही कहे! यह अपमान! मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता......................

राजेश्वरी—"लाओ, जरा इस पत्रको मैं भी देखूं, वह तो इतना मुँहफट न था।"

यह कहकर उसने पतिके हाथसे पत्र लिया, और एक मिनटमें आद्यन्त पढ़कर बोली—यह सब कटु बातें कहाँ हैं? मुझे तो इसमें एक भी अपशब्द नहीं मिलता।

मेहता—भाव देखो, शब्दोंपर न जाओ।

राजेश्वरी—जब तुम्हारे और उसके आदर्शोंमें विरोध है तो उसे तुमपर श्रद्धा क्योंकर हो सकती है?

लेकिन मेहता महोदय जामेसे बाहर हो रहे थे। राजेश्वरीकी सहिष्णुतापूर्ण बातोंसे वे और जल उठे। दफ्तरमें जाकर उसी क्रोधमें पुत्रको पत्र लिखने लगे जिसका एक-एक शब्द छुरी और कटारसे भी ज्यादा तीखा था।

६

उपर्युक्त घटनाके दो सप्ताह पीछे मिस्टर मेहताने विलायती

डाक खोली तो बालकृष्णका कोई पत्र न था। समझे मेरी चोट काम कर गई, आ गया सीधे रास्तेपर, तभी तो उत्तर देनेका साहस नहीं हुआ। 'लन्दन टाइम्स'-की चिट फाड़ो (इस पत्रको बड़े चावसे पढ़ा करते थे) और तारकी खबरें देखने लगे। सहसा उनके मुंहसे एक आह निकली। पत्र हाथसे छूटकर गिर पड़ा। पहला ही समाचार था—

लन्दनमें भारतीय देशभक्तोंका जमाव, आनरेबल मिस्टर मेहताकी वक्तृतापर असन्तोष, मिस्टर बालकृष्ण मेहताका विरोध और आत्महत्या।

गत शनिवारको बेक्सटन हालमें भारतीय युवकों और नेताओं-की एक बड़ी सभा हुई। सभापति मिस्टर तालिबजीने कहा—"हमको बहुत खोजनेपर भी कौंसिलके किसी अंगरेज मेम्बरकी वक्तृतामें ऐसे मर्म-भेदी, ऐसे कठोर शब्द नहीं मिलते। हमने अबतक किसी राजनीतिज्ञके मुखसे ऐसे भ्रान्तिकारक, ऐसे निरं-कुश विचार नहीं सुने। इस वक्तृताने सिद्ध कर दिया कि भारतके उद्धारका कोई उपाय है तो वह स्वराज्य है जिसका आशय है मन और वचनकी पूर्ण स्वाधीनता। क्रमागत उन्नति (Evolution) परसे यदि हमारा एतबार अबतक नहीं उठा था तो अब उठ गया। हमारा रोग असाध्य हो गया है। वह अब चूर्णों और अवलेहोंसे अच्छा नहीं हो सकता। उससे निवृत्त होनेके लिये हमें काया-कल्पकी आवश्यकता है। ऊँचे राज्यपद हमें स्वाधीन

नहीं बनाते बल्कि हमारी आध्यात्मिक पराधीनताको और भी पुष्ट कर देते हैं। हमें विश्वास है कि आनरेबल मिस्टर मेहताने जिन विचारोंका प्रतिपादन किया है उन्हें वे अन्तःकरणसे मिथ्या समझते हैं; लेकिन सम्मान-लालसा, श्रेय प्रेम और पदानुरागने उन्हें अपनी आत्माका गला घोंटनेपर बाध्य कर दिया है······(किसीने उच्च स्वरसे कहा, यह मिथ्या दोषारोपण है।)

लोगोंने विस्मित होकर देखा तो मिस्टर बालकृष्ण अपनी जगहपर खड़े थे। क्रोधसे उनका शरीर काँप रहा था। वे बोलना चाहते थे, लेकिन लोगोंने उन्हें घेर लिया और उनकी निन्दा और अपमान करने लगे। सभापतिने बड़ी कठिनाईसे लोगोंको शान्त किया; किन्तु मिस्टर बालकृष्ण वहाँसे उठकर चले गये।

दूसरे दिन जब मित्रगण बालकृष्णसे मिलने गये तो उनकी लाश फर्शपर पड़ी हुई थी। पिस्तौलकी दो गोलियां छातीसे पार हो गई थीं। मेजपर उनकी डायरी खुली पड़ी थी उसपर ये पंक्तियां लिखी हुई थीं:—

आज सभामें मेरा गर्व दलित हो गया। मैं यह अपमान नहीं सह सकता। मुझे अपने पूज्य पिताके प्रति ऐसे कितने ही निन्दासूचक दृश्य देखने पड़ेंगे। इस आदर्श-विरोधका अन्त ही कर देना अच्छा है। संभव है, मेरा जीवन उनके निर्दिष्ट मार्गमें बाधक हो। ईश्वर! मुझे बल प्रदान कर!!

विषम समस्या

१

मेरे दफ्तरमें चार चपरासी थे, उनमें एकका नाम गरीब था। वह बहुत ही सीधा, बड़ा आज्ञाकारी, अपने काममें चौकस रहनेवाला, घुड़कियां खाकर चुप रह जानेवाला, यथा नाम तथा गुणः, मनुष्य था। मुझे इस दफ्तरमें आये सालभर हो गया था। मगर मैंने उसे एक दिनके लिये भी गैरहाजिर नहीं पाया था। मैं उसे ९ बजे दफ्तर-में अपनी फटी दरीपर बैठे हुए देखनेका ऐसा आदी हो गया था मानों वह भी उसी इमारतका कोई अङ्ग है। इतना सरल था कि किसीकी बात टालना जानता ही न था। एक चपरासी मुसलमान था। उससे सारा दफ्तर डरता था, मालूम नहीं क्यों? मुझे तो इसका कारण सिवाय उसकी बड़ी-बड़ी बातोंके और कुछ नहीं मालूम होता था। उसके कथनानुसार उसके चचेरे भाई रामपुर रियासतमें काजी थे, फूफा टोंककी रियासतमें कोतवाल थे। उसे सर्वसम्मतिने काजीकी उपाधि दे रखी थी, शेष दो महाशय जातिके ब्राह्मण थे। उनके आशीर्वादका मूल्य उनके कामसे कहीं अधिक था। ये तीनों कामचोर, गुस्ताख और आलसी थे। कोई छोटा सा भी काम करनेको कहिये तो बिना नाक-भौं सिकोड़े न करते थे। क्लर्कोंको तो कुछ समझते ही न थे। केवल बड़े बाबूसे कुछ दबते थे; यद्यपि कभी-कभी उनसे

भी बेअदबी कर बैठते थे। मगर इन सब दुर्गुणोंके होते हुए भी उनमेंसे किसीकी मिट्टी इतनी खराब नहीं थी जितनी बेचारे गरीबकी। तरक्कीका अवसर आता तो ये तीनों नम्बर मार ले जाते। गरीबको कोई पूछता भी न था। और सब दस-दस रुपये पाते थे, पर बेचारा गरीब सात हीपर पड़ा हुआ था। सुबहसे शामतक उसके पैर एक क्षणके लिये भी न टिकते थे। यहांतक कि तीनों चपरासी भी उसपर रोब जमाते और ऊपरकी आमदनीमें उसे कोई भाग न देते थे। तिसपर भी दफ्तरके सब कर्मचारी, दफ्तरीसे लेकर बड़े बाबूतक उससे चिढ़ा करते थे। उसकी कितनी ही बार शिकायतें हो चुकी थीं, कितनी ही बार जुर्माना हो चुका था और डांट-फटकार तो नित्यका व्यवहार था। इसका रहस्य मेरी समझमें कुछ नहीं आता था। मुझे उसपर दया आती थी और अपने बर्तावसे मैं यह दिखाना चाहता था कि उसका आदर मेरी दृष्टिमें अन्य तीनों चपरासियोंसे कम नहीं है। यहां-तक कि कई बार मैं उसके पीछे कर्मचारियोंसे लड़ भी चुका था।

२

एक दिन बड़े बाबूने गरीबसे अपनी मेज साफ करनेको कहा। वह तुरत मेज साफ करने लगा। दैवयोगसे झाड़नका झटका लगा तो दावात उलट गयी और रोशनाई मेजपर फैल गयी। बड़े बाबू यह देखते ही जामेसे बाहर हो गये। उसके दोनों कान पकड़-कर खूब ऐंठे और भारतवर्षकी सभी प्रचलित भाषाओंसे दुर्व-चन चुन-चुनकर उसे सुनाने लगे। बेचारा गरीब आंखोंमें आंसू

खरे चुपचाप मूर्तिवत् सुनता था ; मानों उसने कोई हत्या कर डाली हो। मुझे बड़े बाबूका जरा-सी बातपर इतना भयङ्कर रौद्र-रूप धारण करना बुरा मालूम हुआ। यदि किसी दूसरे चपरासीने इससे भी बड़ा अपराध किया होता तो भी उसपर इतना कठोर वज्र-प्रहार न होता। मैंने अंगरेजीमें कहा—"बाबू साहब, आप यह अन्याय कर रहे हैं ; उसने जान-बूझकर तो रोशनाई गिरायी नहीं। इसका इतना कड़ा दण्ड देना अनौचित्यकी पराकाष्ठा है।"

बाबूजीने नम्रतासे कहा—"आप इसे जानते नहीं, यह बड़ा दुष्ट है।"

"मैं तो इसकी कोई दुष्टता नहीं देखता।"

"आप अभी इसे जानते नहीं। यह बड़ा पाजी है। इसके घर दो हलोंकी खेती होती है, हजारोंका लेन-देन करता है, कई भैंसे लगती हैं, इन्हीं बातोंका इसे घमण्ड है।"

"घरकी ऐसी दशा होती तो आपके यहां चपरासीगिरी क्यों करता ?"

बड़े बाबूने गम्भीर भावसे कहा—"विश्वास मानिये, बड़ा पोढ़ा आदमी है, और बलाका मक्खी चूस है।"

"यदि ऐसा ही हो तो कोई अपराध नहीं है।"

"अभी आप यहां कुछ दिन और रहिये तो आपको मालूम हो जायगा कि यह कितना कमीना आदमी है।"

एक दूसरे महाशय बोल उठे—"भाई साहब, इसके घर मनों दूध होता है। मनों जुआर, चना, मटर होती है, लेकिन इसकी कभी इतनी हिम्मत नहीं होती कि थोड़ा-सा दफ्तरवालोंको भी दे दे। यहां इन चीजोंके लिये तरस-तरसकर रह जाते हैं। तो फिर क्यों न जी जले और यह सब कुछ इसी नौकरीकी बदौलत हुआ है नहीं तो पहले इसके घरमें भूनी भांगतक न थी।"

बड़े बाबू सकुचाकर बोले—"यह कोई बात नहीं ; उसकी चीज है चाहे किसीको दे या न दे।"

मैं इसका मर्म कुछ-कुछ समझ गया। बोला—"यदि ऐसे तुच्छ हृदयका आदमी है तो वास्तवमें पशु ही है। मैं यह न जानता था।"

अब बड़े बाबू भी खुले, संकोच दूर हुआ। बोले—"इन बातोंसे उबार तो होता नहीं, केवल देनेवालेका सहृदयता प्रकट होती है और आशा भी उसीसे की जाती है जो इस योग्य है। जिसमें कुछ सामर्थ्य ही नहीं उससे कोई आशा भी नहीं करता। नंगेसे कोई क्या लेगा ?"

रहस्य खुल गया। बड़े बाबूने सरल भावसे सारी अवस्था दर्शा दी। समृद्धिके शत्रु सब होते हैं; छोटे ही नहीं, बड़े भी। हमारी ससुराल या ननिहाल दरिद्र हो तो हम उससे कुछ आशा नहीं रखते। कदाचित् हम उसे भूल जाते हैं; किन्तु वे समर्थवान होकर हमें न पूछें, हमारे यहां तीज और चौथ न भेजें, तो हमारे कलेजेपर साँप लोटने लगता है।

हम अपने किसी निर्धन मित्रके पास जायं तो उसके एक बीड़े पान ही पर सन्तुष्ट हो जाते हैं, पर ऐसा कौन मनुष्य है जो किसी धनी मित्रके घरसे बिना जलपान किये हुए लौटे और

सदाके लिये उसका तिरस्कार न करने लगे। सुदामा कृष्णके घरसे यदि निराश लौटते तो कदाचित वे उनके शिशुपाल और जरासिन्धुसे भी बड़े शत्रु होते।

३

कई दिन पीछे मैंने गरीबसे पूछा—"क्योंजी, तुम्हारे घर कुछ खेती-बारी होती है?"

गरीबने दीन भावसे कहा—"हां सरकार, होती है, आपके दो गुलाम हैं, वहीं करते हैं।"

मैंने पूछा—"गायें भैंसें भी लगती हैं?"

"हां हुजूर, दो भैंसें लगती हैं। गायें अभी गाभिन हैं। आप लोगोंकी दयासे पेटकी रोटियां चली आती हैं।"

"दफ्तरके बाबू लोगोंकी भी कभी कुछ खातिर करते हो?"

गरीबने दीनतापूर्ण आश्चर्यसे कहा—"हुजूर, मैं सरकार लोगोंकी क्या खातिर कर सकता हूं। खेतीमें जव, चना, मक्का, जुवार, घासपातके सिवाय और क्या होता है! आप लोग राजा हैं, यह मोटी-झोंटी चीजें किस मुंहसे आपको भेट करूं। जी डरता है कि कहीं कोई डांट न बैठे, कि टके आदमीकी इतनी मजाल! इसी मारे बाबूजी कभी हियाव नहीं पड़ता। नहीं तो दूध दहीकी कौन बिसात थी। मुंहके लायक बीड़ा तो होना चाहिये।"

"भला एक दिन कुछ लाके दो तो; देखो लोग क्या कहते हैं।

शहरमें ये चीजें कहाँ मुयस्सर होती हैं! इन लोगोंका जी भी तो कभी-कभी मोटी-झोंटी चीजोंपर चला करता है।"

"जो सरकार कोई कुछ कहे तो? कहीं साहबसे शिकायत कर दे तो मैं कहींका न रहूं।"

"इसका मेरा जिम्मा है, तुम्हें कोई कुछ न कहेगा, कोई कुछ कहेगा भी, तो मैं उसे समझा दूंगा।"

"हुजूर, आजकल तो मटरकी फसिल है और कोल्हू भी खड़े हो गये हैं। इसके सिवाय तो और कुछ भी नहीं है।"

"बस तो यही चीजें लाओ।"

"कुछ उलटी-सीधी पड़ी तो आपहीको संभालना पड़ेगा।"

"हाँ जी, कह तो दिया मैं देख लूंगा।"

दूसरे दिन गरीब आया तो उसके साथ तीन हृष्ट-पुष्ट युवक भी थे। दोके सिरोंपर दो टोकरियां थीं। उनमें मटरकी फलियां भरी हुई थीं। एकके सिरपर मटका था जिसमें ऊखका रस था। तीनों युवक ऊखका एक-एक गट्ठा काँखमें दबाये हुए थे। गरीब आकर चुपकेसे बरामदेके सामने पेड़के नीचे खड़ा हो गया। दफ्तरमें उसे आनेका साहस नहीं होता था मानों कोई अपराधी है। वृक्षके नीचे खड़ा ही था कि इतनेमें दफ्तरके चपरासियों और अन्य कर्मचारियोंने उसे घेर लिया। कोई ऊख लेकर चूसने लगा। कई आदमी टोकरोंपर टूट पड़े। इतनेमें बड़े बाबू भी दफ्तरमें आ पहुंचे। यह कौतुक देखकर उच्चस्वरसे बोले, "यह क्या भीड़ लगा रक्खी है! चलो अपना-अपना काम देखो।"

मैंने जाकर उनके कानमें कहा—"गरीब, अपने घरसे यह सौगात लाया है कुछ आप लीजिये, कुछ हम लोगोंको बांट दीजिये।" बड़े बाबूने कृत्रिम क्रोध धारण करके कहा—"क्यों गरीब, तुम यह चीजें यहां क्यों लाये? अभी लौटा ले जाओ, नहीं तो मैं अभी साहबसे कह दूंगा। क्या हम लोगोंको कोई मरभूका समझ लिया है?"

गरीबका रंग उड़ गया। थर-थर कांपने लगा। मुंहसे एक शब्द भी नहीं निकला। मेरी ओर अपराधी नेत्रोंसे ताकने लगा।

मैंने उसकी ओरसे क्षमा-प्रार्थना की। बहुत कहने-सुननेपर बाबू साहब राजी हुए। सब चीजोंमेंसे आधी अपने घर भिजवायीं, आधीमें अन्य लोगोंके हिस्से लगाये गये। इस प्रकार यह अभिनय समाप्त हुआ।

४

अब दफ्तरमें गरीबका मान होने लगा। उसे नित्य घुड़कियां न मिलतीं। दिन भर दौड़ना न पड़ता। कर्मचारियोंके व्यंग और अपने सहवर्गियोंके कटुवाक्य न सुनने पड़ते। चपरासी लोग स्वयं उसका काम कर देते। उसके नाममें थोड़ासा परिवर्तन हुआ। वह गरीबसे गरीबदास बना। स्वभावमें भी कुछ तबदीली पैदा हुई। दीनताकी जगह आत्म-गौरवका उद्भव हुआ। तत्परताकी जगह आलस्यने ली। वह अब कभी-कभी देरमें दफ्तर आता। कभी-कभी बीमारीका बहाना करके घर बैठ रहता। उसके सभी अपराध अब क्षम्य थे। उसे अपनी प्रतिष्ठा-

का गुर हाथ लग गया। वह अब दसवें पांचवें दिन दूध दही आदि लाकर बड़े बाबूको भेंट किया करता। वह देवताको सन्तुष्ट करना सीख गया। सरलताके बदले अब उसमें काइयांपन आ गया। एक रोज बड़े बाबूने उसे सरकारी फार्मोंका पार्सल छुड़ानेके लिये स्टेशन भेजा। कई बड़े-बड़े पुलिन्दे थे, ठेलेपर आये। गरीबने ठेलेवालोंसे बारह आना मजदूरी तय की थी। जब कागज दफ्तरमें पहुंच गये तो उसने बड़े बाबूसे ।।।) पैसे ठेलेवालोंको देनेके लिये वसूल किये। लेकिन दफ्तरसे कुछ दूर जाकर उसकी नीयत बदली, अपनी दस्तूरी मांगने लगा। ठेलेवाले राजी न हुए। इसपर गरीबने बिगड़कर सब पैसे जेबमें रख लिये और धमकाकर बोला—"अब एक फूटी कौड़ी भी न दूंगा, जाओ जहां चाहो फरियाद करो। देखें हमारा क्या बना लेते हो।" ठेलेवालोंने जब देखा कि भेंट न देनेसे जमा ही गायब हुई जाती है तो रो-धोकर चार आने पैसे देनेको राजी हुए। गरीबने अठन्नी उनके हवाले की और बारह आनेकी रसीद लिखवाकर उनके अंगूठोंके निशान लगवाये और रसीद दफ्तरमें दाखिल हो गयी।

यह कौतूहल देखकर मैं दंग रह गया। यह वही गरीब है जो कई महीने पहले सत्यता और दीनताकी मूर्ति था। जिसे कभी अन्य चपरासियोंसे भी अपने हिस्सेकी रकम माँगनेका साहस न होता था! जो दूसरोंको खिलाना भी न जानता था, खानेका जिक्र ही क्या। मुझे यह स्वभावान्तर देखकर अत्यन्त खेद हुआ।

इसका उत्तरदायित्व किसके सिर था ?—मेरे सिर। उसे धूर्तता-का पहला पाठ पढ़ाया था। मेरे चित्तमें प्रश्न उठा, इस काइयाँ-पनसे, जो दूसरोंका गला दबाता है, वह भोलापन क्या बुरा था; जो दूसरोंका अन्याय सह लेता था। वह अशुभ मुहूर्त था जब उसे मैंने प्रतिष्ठा-प्राप्तिका मार्ग दिखाया, क्योंकि वास्तवमें वह उसके पतनका भयङ्कर मार्ग था। मैंने बाह्य प्रतिष्ठापर उसकी आत्म-प्रतिष्ठाका बलिदान कर दिया।

अनिष्ट शंका

१

चाँदनी रात, समीरके सुखद झोंके, सुरम्य उद्यान। कुंवर अमरनाथ अपनी विस्तीर्ण छतपर लेटे हुए मनोरमासे कह रहे थे "तुम घबराओ नहीं, मैं जल्द आऊंगा।"

मनोरमाने उनकी ओर कातर नेत्रोंसे देखकर कहा—"मुझे भी साथ क्यों नहीं लेते चलते ?"

अमरनाथ—"तुम्हें वहां कष्ट होगा। मैं कभी यहां रहूंगा, कभी वहां, सारे दिन मारा-मारा फिरूंगा, पहाड़ी देश है, जंगल और बीहड़के सिवाय बस्तीका कोसों पता नहीं, उसपर भयङ्कर पशुओंका भय। तुमसे यह तकलीफें न सही जायंगी।

मनोरमा—"तुम भी तो इन तकलीफोंके आदी नहीं हो।"

अमर—"मैं पुरुष हूं, आवश्यकता पड़नेपर सभी तकलीफों-का सामना कर सकता हूं।"

मनोरमा (गर्वसे)—"मैं भी स्त्री हूं, आवश्यकता पड़नेपर आगमें कूद सकती हूं। स्त्रियोंकी कोमलता पुरुषोंकी काव्य-कल्पना है। उन्हें शारीरिक सामर्थ्य चाहे न हो पर उनमें वह धैर्य और साहस है जिसपर कालकी दुश्चिन्ताओंका जरा भी असर नहीं होता।"

अमरनाथने मनोरमाको श्रद्धामय दृष्टिसे देखा और बोले—

"यह मैं मानता हूं, लेकिन जिस कल्पनाको हम चिरकालसे प्रत्यक्ष समझते आये हैं वह एक क्षणमें नहीं मिट सकती। तुम्हारी तकलीफ मुझसे न देखी जायगी, मुझे दुःख होगा। देखो इस समय चाँदनीमें कितनी बहार है।"

मनोरमा—"मुझे बहलाओ मत। मैं हठ नहीं करती, लेकिन यहां मेरा जीवन अपाढ़ हो जायगा। मेरे हृदयकी दशा विचित्र है। तुम्हें अपने सामने न देखकर मेरे मनमें तरह-तरहकी शंकायें उठने लगती हैं। तुम हाकी खेलने जाते हो तो मुझे यह संशय होता है कि कहीं चोट न लग गयी हो, शिकार खेलने जाते हो तो डरती हूं कहीं घोड़ेने शरारत न की हो। मुझे अनिष्टका भय सदैव सताया करता है।"

अमरनाथ—"लेकिन मैं तो विलासका भक्त हूं। मुझपर इतना अनुराग करके तुम अपने ऊपर अन्याय करती हो।"

मनोरमाने अमरनाथको दबी हुई दृष्टिसे देखा जो कह रही थी—"मैं तुमको तुमसे ज्यादा पहचानती हूं।"

२

बुन्देलखण्डमें भीषण दुर्भिक्ष था। लोग वृक्षोंकी छालें छील-छालकर खाते थे। क्षुधा पीड़ाने भक्ष्याभक्ष्यकी पहचान मिटा दी थी। पशुओंका तो कहना ही क्या, मानव सन्तानें कौड़ियोंके मोल बिकती थीं। पादरियोंकी चढ़ बनी थी, उनके अनाथालयों-

में नित्य गोलके गोल बच्चे भेड़ोंकी भांति हांके जाते थे। मांकी ममता मुट्ठीभर अनाजपर कुर्बान हो जाती थी। कुंवर अमरनाथ काशी सेवासमितिके व्यवस्थापक थे। समाचार-पत्रोंमें यह रोमाञ्चकारी समाचार देखे तो तड़प उठे। समितिके कई नवयुवकोंको साथ लिया और बुन्देलखण्ड जा पहुंचे। मनोरमाको वचन दिया कि प्रतिदिन पत्र लिखेंगे और यथासाध्य जल्द लौट आयेंगे।

एक सप्ताहतक तो उन्होंने अपना वचन पालन किया, लेकिन शनैः शनैः पत्रोंमें विलम्ब होने लगा। अक्सर इलाके डाकघरसे बहुत दूर पड़ते थे। यहांसे नित्यप्रति पत्र भेजनेका प्रबन्ध करना दुःसाध्य था।

मनोरमा वियोग-दुःखसे विकल रहने लगी। वह अव्यवस्थित दशामें उदास बैठी रहती, कभी नीचे आती कभी ऊपर जाती, कभी बागमें जा बैठती। जबतक पत्र न आ जाता वह इसी भांति व्यग्र रहती, पत्र मिलते ही सूखे धानमें पानी पड़ जाता।

लेकिन जब पत्रोंके आनेमें देर होने लगी तो उसका वियोग-विकल-हृदय अधीर हो गया। बार-बार पछताती कि मैं नाहक उनके कहनेमें आ गई, मुझे उनके साथ जाना चाहिए था। उसे किताबोंसे प्रेम था पर अब उनकी ओर ताकनेका भी जी न चाहता। विनोदकी वस्तुओंसे उसे अरुचि-सी हो गई। इस प्रकार एक महीना गुजर गया।

एक दिन उसने स्वप्न देखा कि अमरनाथ द्वारपर नंगे सिर,

नंगे पैर, खड़े रो रहे हैं। वह घबराकर उठ बैठी और उसी उग्रावस्थामें दौड़ी द्वारतक आयी। यहांका सन्नाटा देखकर उसे होश आ गया। उसी दम मुनीबको जगाया और कुंवर साहबके नाम तार भेजा। किन्तु जवाब न आया। सारा दिन गुज़र गया मगर कोई जवाब नहीं। दूसरी रात भी गुज़री लेकिन जवाबका पता न था। मनोरमा निर्जल, निराहार, मूर्च्छित दशामें अपने कमरेमें पड़ी रहती। जिसे देखती उसीसे पूछती "जवाब आया?" कोई द्वारपर आवाज़ देता तो दौड़ी हुई जाती और पूछती—"कुछ जवाब आया?"

उसके मनमें विविध शङ्काएं उठतीं, लौंडियोंसे स्वप्नका आशय पूछती। स्वप्नोंका कारण और विवेचनापर कई ग्रन्थ पढ़ डाले, पर कुछ रहस्य न खुला। लौंडियां उसे दिलासा देनेके लिये कहतीं "कुंवरजी कुशलसे हैं। स्वप्नमें किसीको नंगे पैर देखे तो समझो वह घोड़ेपर सवार है। घबरानेकी कोई बात नहीं।" लेकिन मनोरमाको इस बातसे तस्कीन न होती। उसे तारके जवाबकी रट लगी हुई थी, यहांतक कि चार दिन गुज़र गये।

किसी मुहल्लेमें मदारीका आ जाना बालवृन्दके लिये एक महत्वकी बात है। उसके डमरूकी आवाज़में खोंचेवालेकी क्षुधावर्द्धक ध्वनिसे भी अधिक आकर्षण होता है। इसी प्रकार मुहल्लेमें किसी ज्योतिषीका आ जाना मारकेकी बात है। एक क्षणमें उसकी खबर घर-घर फैल जाती है। सास अपनी बहूको लिये आ पहुंचती हैं, माता अपनी भाग्यहीन कन्याको लेकर आ जाती

है। ज्योतिषीजी दुःख-सुखकी अवस्थानुसार वर्षा करने लगते हैं। उनकी भविष्य-वाणियोंमें बड़ा गूढ़ रहस्य होता है। उनका भाग्य-निर्णय भाग्य-रेखाओंसे भी जटिल और दुष्ग्राह्य होता है। संभव है कि वर्तमान शिक्षा विधाताने ज्योतिषका आदर कुछ कम कर दिया हो पर ज्योतिषीजीके माहात्म्यमें जरा भी कमी नहीं हुई। उनकी बातोंपर चाहे किसीको विश्वास न हो पर सुनना सभी चाहते हैं। उनके एक एक शब्दमें आशा और भयको उत्तेजित करनेकी अद्भुत शक्ति भरी रहती है, विशेषतः उनकी अमंगल सूचना तो वज्रपातके तुल्य है, घातक और दग्धकारी।

तार भेजे हुए आज पांचवां दिन था कि कुंवर साहबके द्वारपर एक ज्योतिषीका आगमन हुआ। तत्काल मुहल्लेकी महिलाएं जमा हो गईं। ज्योतिषीजी भाग्य-विवेचन करने लगे, किसीको रुलाया किसीको हंसाया। मनोरमाको भी खबर मिली। उन्हें तुरन्त अन्दर बुला भेजा और अपने स्वप्नका आशय पूछा।

ज्योतिषीजीने इधर-उधर देखा, पन्नेके पन्ने उलटे, उंगलियोंपर कुछ गिना, पर कुछ निश्चय न कर सके कि क्या उत्तर देना चाहिये, बोले क्या—सरकारने यह स्वप्न देखा है?

मनोरमा बोली—नहीं, मेरी एक सखीने देखा है। मैं कहती हूं यह अमंगलसूचक है, वह कहती है मंगलमय है। आप इसकी क्या विवेचना करते हैं?

ज्योतिषीजी फिर बगलें झांकने लगे। उन्हें अमरनाथकी यात्राका हाल न मालूम था और न इतनी मुहलत ही मिली थी

कि यहां आनेके पूर्व वह अवस्थाज्ञान प्राप्त कर लेते जो अनुमान-के साथ मिलकर जनतामें ज्योतिषके नामसे प्रसिद्ध है। जो प्रश्न पूछा था उसका भी कुछ सूत्रसूचक उत्तर न मिला। निराश होकर मनोरमाके समर्थन करनेहीमें अपना कल्याण देखा। बोले,—सरकार जो कहती हैं वही सत्य है। यह स्वप्न अमङ्गल-सूचक है।

मनोरमा खड़ी सितारके तारोंकी भांति थर-थर कांपने लगी। ज्योतिषीजीने उस अमङ्गलका उद्घाटन करते हुए कहा—उनके पतिपर कोई महान् सङ्कट आनेवाला है, उनका घर नाश हो जायगा, वह देश-विदेश मारे-मारे फिरेंगे।

मनोरमाने दीवारका सहारा लेकर कहा—भगवान, मेरी रक्षा करो और मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ी।

ज्योतिषीजी अब चेते, समझ गये कि बड़ा धोखा खाया। आश्वासन देने लगे, आप कुछ चिन्ता न करें। मैं उस सङ्कटका निवारण कर सकता हूं। मुझे एक बकरा, कुछ लौंग और कच्चा धागा मंगा दें। जब कुंवरजीके यहांसे कुशल-समाचार आ जाय तो जो दक्षिणा चाहें दे दें। काम कठिन है पर भग-वानकी दयासे असाध्य नहीं है। सरकार देखें, मुझे बड़े-बड़े हाकिमोंने सार्टीफिकिट दिये हैं। अभी डिप्टी साहबकी कन्या बीमार थीं। डाक्टरोंने जवाब दे दिया था। मैंने यन्त्र दिया, बैठे-बैठे आंखें खुल गयीं। कलकी बात है, सेठ चन्दूमलके यहां-से रोकड़की एक थैली उड़ गयी थी, कुछ पता न चलता था,

मैंने सगुन बिचारा और बात-की-बातमें चोर पकड़ लिया। उनके मुनीमका काम था थैला ज्यों-की-त्यों निकल आयी।

ज्योतिषीजी तो अपनी सिद्धियोंकी सराहना कर रहे थे और मनोरमा अचेत पड़ी हुई थी।

अकस्मात् वह उठ बैठी, मुनीमको बुलाकर कहा—यात्राकी तैयारी करो, मैं शामकी गाड़ीसे बुन्देलखण्ड जाऊंगी।

४

मनोरमाने स्टेशनपर आकर अमरनाथको तार दिया—"मैं आ रही हूं।" उनके अन्तिम पत्रसे ज्ञात हुआ था कि वह कबरई-में हैं, कबरईका टिकट लिया। लेकिन कई दिनोंसे जागरण कर रही थी। गाड़ीपर बैठते ही नींद आ गयी और नींद आते ही अनिष्ट शङ्काने एक भीषण स्वप्नका रूप धारण कर लिया।

उसने देखा सामने एक अगम सागर है, उसमें एक टूटी हुई नौका हलकोरे खाती बहती चली जाती है। उसपर न कोई मल्लाह है, न पाल, न डांड़े। तरङ्गें उसे कभी ऊपर ले जाती हैं कभी नीचे, सहसा उसपर एक मनुष्य दृष्टिगोचर हुआ। यह अमरनाथ थे, नंगे सिर, नंगे पैर, आंखोंसे आंसू बहता हुआ। मनोरमा थर-थर कांप रही थी। जान पड़ता था, नौका अब डूबी और अब डूबी। उसने जोरसे चीख मारी और जाग पड़ी। शरीर पसीनेसे तर था, छाती धड़क रही थी। वह तुरत उठ बैठी, हाथ-मुंह धोया और इरादा किया अब न सोऊंगी। हा! कितना

भयावह दृश्य था। परमपिता! अब तुम्हारा ही भरोसा है। उनकी रक्षा करो।

उसने खिड़कीसे सिर निकालकर देखा। आकाशपर तारागण दौड़ रहे थे। घड़ी देखी, बारह बजे थे। उसको आश्चर्य हुआ, मैं इतनी देरतक सोयी। अभी तो एक झपकी भी पूरी न होने पायी।

उसने एक पुस्तक उठा ली और विचारोंको एकाग्र करके पढ़ने लगी। इतनेमें प्रयाग आ पहुंचा, गाड़ी बदली। उसने फिर किताब खोली और उच्च स्वरसे पढ़ने लगी। लेकिन कई दिनोंकी जागी आंखें इच्छाके अधीन नहीं होतीं। बैठे-बैठे झपकियां लेने लगी, आंखें बन्द हो गयीं और एक दूसरा दृश्य सामने उपस्थित हो गया।

उसने देखा, एक आकाशसे मिला हुआ पर्वत-शिखर है। उसके ऊपरके वृक्ष छोटे-छोटे पौदोंके सदृश दिखायी देते हैं। श्यामवर्ण घटाएं छायी हुई हैं, बिजली इतनी जोरसे कड़कती है कि कानके परदे फटे जाते हैं, कभी यहाँ गिरती है कभी वहाँ। शिखरपर एक मनुष्य नंगे सिर बैठा हुआ है, उसकी आँखोंका अश्रु-प्रवाह साफ दीख रहा है। मनोरमा दहल उठी, यह अमरनाथ थे। वह पर्वत शिखरसे उतरना चाहते थे, लेकिन मार्ग न मिलता था। भयसे उनका मुख वर्ण-शून्य हो रहा था। अकस्मात् एक बार बिजलीका भयङ्कर नाद सुनायी दिया, एक ज्वालासी दिखायी दी और अमरनाथ अदृश्य हो गये। मनोरमाने फिर चीख

मारी और जाग पड़ी। उसका हृदय बांसों उछल रहा था, मस्तिष्क चक्कर खाता था। जागते ही उसकी आंखोंसे जल-प्रवाह होने लगा। वह उठ खड़ी हुई और कर जोड़कर ईश्वरसे विनय करने लगी—ईश्वर, मुझे ऐसे बुरे-बुरे स्वप्न दिखायी दे रहे हैं, न जाने उनपर क्या बीत रही है, तुम दीनोंके बन्धु हो, मुझपर दया करो, मुझे धन और सम्पत्तिकी इच्छा नहीं, मैं झोंपड़ीमें खुश रहूंगी, मैं केवल उनकी शुभकामना रखती हूं। मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार करो।

वह फिर अपनी जगहपर बैठ गयी। अरुणोदयकी मनोरम छटा और शीतल सुखद समीरणने उसे आकर्षित कर लिया। उसे सन्तोष हुआ, किसी तरह रात कट गयी, अब तो नींद न आयेगी, पर्वतोंके मनोहर दृश्य दिखायी देने लगे, कहीं पहाड़ियोंपर भेड़ोंके गल्ले, कहीं पहाड़ियोंके दामनमें मृगोंके झुण्ड, कहीं कमलके फूलोंसे लहराते हुए सागर। मनोरमा एक अर्धस्मृतिकी दशामें इन दृश्योंको देखती रही। लेकिन फिर न जाने कब उसकी अभागी आंखें झपक गयीं।

उसने देखा अमरनाथ घोड़ेपर सवार एक पुलपर चले जाते हैं। नीचे नदी उमड़ी हुई है, पुल बहुत तंग है, घोड़ा रह-रहकर बिचकता है और अलफ हो जाता है। मनोरमाके हाथ-पांव फूल गये। वह उच्च-स्वरसे चिल्ला-चिल्ला कहने लगी—घोड़ेसे उतर पड़ो, घोड़ेसे उतर पड़ो, यह कहते हुए वह उनकी तरफ झपकी, आंखें खुल गयीं। गाड़ी किसी स्टेशनके प्लेटफार्मसे सनसनाती

चली आती थी। अमरनाथ नंगे सिर, नंगे पैर प्लेटफार्मपर खड़े थे। मनोरमाकी आंखोंमें अभीतक वही भयंकर स्वप्न समाया हुआ था। कुंवरको देखकर उसे भय हुआ कि वह घोड़ेसे गिर पड़े और नीचे नदीमें फिसला चाहते हैं। उसने तुरत उन्हें पकड़नेको हाथ फैलाया और जब उन्हें न पा सकी तो उसी सुषुप्तावस्थामें उसने गाड़ीका द्वार खोला और कुंवर साहबकी ओर हाथ फैलाये हुए गाड़ीसे बाहर निकल आयी। तब वह चौंकी, जान पड़ा किसीने उठाकर आकाशसे भूमिपर पटक दिया, ज़ोरसे एक धक्का लगा और वह चेतनाशून्य हो गयी।

८

यही कबरईका स्टेशन था। अमरनाथ तार पाकर स्टेशनपर आये थे। मगर यह डाक गाड़ी थी, वहां न ठहरती थी। मनोरमाको हाथ फैलाये गाड़ीसे गिरते देखकर वह हां, हां, करते हुए लपके लेकिन कर्मलेख पूरा हो चुका था। मनोरमा प्रेमवेदीपर बलिदान हो चुकी थी।

इसके तीसरे दिन वह नंगे सिर, नंगे पैर भग्नहृदय घर पहुंचे। मनोरमाका स्वप्न सच्चा हुआ।

उस प्रेमविहीन स्थानमें अब कौन रहता। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति काशी-सेवा-समितिको प्रदान कर दी और अब नंगे सिर, नंगे पैर, विरक्त दशामें देश-विदेश घूमते रहते हैं। ज्योतिषीजीकी विवेचना भी चरितार्थ हो गयी।

नैराश्य लीला

१

पण्डित हृदयनाथ अयोध्याके एक सम्मानित पुरुष थे। धनवान तो नहीं, लेकिन खाने पीनेसे खुश थे। कई मकान थे, उन्हींके किरायेपर गुज़र होता था। इधर किराये बढ़ गये थे जिससे उन्होंने अपनी सवारी भी रख ली थी। बहुत विचारशील आदमी थे, अच्छी शिक्षा पायी थी; संसारका काफ़ी तजरबा था, पर क्रियात्मक शक्तिसे वंचित थे, सब कुछ जानते हुए भी कुछ न जानते थे। समाज उनकी आंखोंमें एक भयंकर भूत था जिससे सदैव डरते रहना चाहिये। उसे ज़रा भी रुष्ट किया तो फिर जानकी खैर नहीं। उनकी स्त्री जागेश्वरी उनका प्रतिबिम्ब थी, पतिके विचार उसके विचार और पतिकी इच्छा उसकी इच्छा थी। दोनों प्राणियोंमें कभी मत-भेद न होता था। जागेश्वरी शिवकी उपासक थी, हृदयनाथ वैष्णव थे, पर दान और व्रतमें दोनोंको समान श्रद्धा थी। दोनों धर्मनिष्ठ थे, उससे कहीं अधिक जितना सामान्यतः शिक्षित लोग हुआ करते हैं। इसका कदाचित् यह कारण था कि एक कन्याके सिवा और कोई सन्तान न थी, उसका विवाह तेरहवें वर्षमें हो गया था और माता-पिताको अब यही लालसा थी कि भगवान इसे पुत्रवती करें तो हम लोग नवासेके नाम अपना सब कुछ लिख-लिखाकर निश्चिन्त हो जायं।

किन्तु विधाताको कुछ और ही मंजूर था। कैलाशकुमारीका अभी गौना भी न हुआ था, वह अभीतक यह भी न जानने पायी थी कि विवाहका आशय क्या है कि उसका सोहाग उठ गया। वैधव्यने उसके जीवनकी अभिलाषाओंका दीपक बुझा दिया।

माता और पिता विलाप कर रहे थे, घरमें कुहराम मचा हुआ था, पर कैलाशकुमारी भौचक्की हो-होकर सबके मुंहकी ओर ताकती थी। उसके समझ हीमें न आता था, यह लोग रोते क्यों हैं? मां-बापकी इकलौती बेटी थी। मां-बापके अतिरिक्त वह किसी तीसरे व्यक्तिको अपने लिये आवश्यक न समझती थी। उसकी सुख-कल्पनाओंमें अभीतक पतिका आवेश न हुआ था। वह समझती थी, स्त्रियां पतिके मरनेपर इसीलिये रोती ह कि वह उनका और उनके बच्चोंका पालन करता है। मेरे घर-में किस बातकी कमी है? मुझे इसकी क्या चिन्ता है कि खायंगे क्या? पहनेंगे क्या? मुझे जिस चीजकी जरूरत होगी, बाबूजी तुरन्त ला देंगे, अम्मासे जो चीज मांगूंगी वह तुरन्त दे देंगी। फिर रोऊं क्यों? वह अपनी मांको रोते देखती तो रोती, पतिके शोकसे नहीं, मांके प्रेमसे। कभी सोचती, शायद यह लोग इस-लिये रोते हैं कि कहीं मैं कोई ऐसी चीज न मांग बैठूं जिसे वह दे न सकें। तो मैं ऐसी चीज मांगूंहीगी क्यों? मैं अब भी तो उनसे कुछ नहीं मांगती, वह आप ही मेरे लिये एक-न-एक चीज नित्य लाते रहते हैं। क्या मैं अब कुछ और हो जाऊंगी? इधर माताका यह हाल था कि बेटीकी सूरत देखते ही आंखोंसे आंसू-

की झड़ी लग जाती। बापकी दशा और भी करुणाजनक थी। घरमें आना-जाना छोड़ दिया। सिरपर हाथ धरे कमरेमें अकेले उदास बैठे रहते। उसे विशेष दुःख इस बातका था कि सहे-लियां भी अब उसके साथ खेलनेको न आतीं। उसने उनके घर जानेको मातासे आज्ञा मांगी तो वह फूट-फूट रोने लगी। माता-पिताकी यह दशा देखी तो उसने उनके सामने आना छोड़ दिया, बैठी किस्से कहानियां पढ़ा करती, उसकी एकान्तप्रियताका, मां-बापने कुछ और ही अर्थ समझा। लड़की शोकके मारे घुली जाती है, इस वज्राघातने उसके हृदयको टुकड़े-टुकड़े कर डाला है।

* * * *

एक दिन हृदयनाथने जागेश्वरीसे कहा—जी चाहता है घर छोड़कर कहीं भाग जाऊं, इसका कष्ट अब नहीं देखा जाता!

जागेश्वरी—मेरी तो भगवानसे यही प्रार्थना है कि मुझे संसारसे उठा लें कहांतक छातीपर पत्थरकी सिल रखूं।

हृदयनाथ—किसी भांति इसका मन बहलाना चाहिये, जिस-में शोकमय विचार आने ही न पायें। हम लोगोंको दुःखी और रोते देखकर उसका दुःख और भी दारुण हो जाता है।

जागे०—मेरी तो बुद्धि कुछ काम नहीं करती।

हृदय०—हम लोग यों ही मातम करते रहे तो लड़कीकी जानपर बन जायगी। अब कभी-कभी उसे लेकर सैर करने चली जाया करो। कभी-कभी थियेटर दिखा दिया, कभी घरमें

गाना-बजाना करा दिया। इन बातोंसे उसका दिल बहलता रहेगा।

जागे०—मैं तो उसे देखते ही रो पड़ती हूं। लेकिन अब जब्त करूंगी। तुम्हारा विचार बहुत अच्छा है। बिना दिल बहलावके उसका शोक न दूर होगा।

हृदय०—मैं भी अब उससे दिल बहलानेवाली बातें किया करूंगा। कल एक सैरबीं लाऊंगा, अच्छे-अच्छे दृश्य जमा करूंगा। ग्रामोफोन तो आज ही मंगवाये देता हूं। बस उसे हर-वक्त किसी-न-किसी काममें लगाये रहना चाहिये। एकान्तवास शोक-ज्वालाके लिये समीरके समान है।

उस दिनसे जागेश्वरीने कैलाशकुमारीके लिये विनोद और प्रमोदके सामान जमा करने शुरू किये। कैलाशी मांके पास आती तो उसकी आंखोंमें आंसूकी बून्दें न देखती, होठोंपर हंसीकी आभा दिखाई देती। वह मुस्कुराकर कहती—बेटी, आज थियेटरमें बहुत अच्छा तमाशा होनेवाला है, चलो देख आयें। कभी गंगास्नानकी ठहरती, वहां मां-बेटी किश्तीपर बैठकर नदीमें जल-विहार करतीं, कभी दोनों सन्ध्या समय पार्ककी ओर चली जातीं। धीरे-धीरे सहेलियां भी आने लगीं। कभी सब-की-सब बैठकर ताश खेलतीं, कभी गाती बजातीं। पण्डित हृदयनाथने भी विनोदकी सामग्रियां जुटायीं। कैलाशीको देखते ही मग्न होकर बोलते—"बेटी आओ, तुम्हें आज काश्मीरके दृश्य दिखाऊं, कभी कहते, आओ आज स्विट्जरलैण्डके अनुपम झीलों और झरनोंकी छटा देखें" कभी ग्रामोफोन बजाकर उसे सुनाते। कैलाशी इन सैर-सपाटोंका खूब आनन्द उठाती। इतने सुखसे उसके दिन कभी न गुजरे थे।

* * * * *

३

इस भांति दो वर्ष बीत गये। कैलाशी इन विषयोंकी इतनी आदी हो गयी कि एक दिन भी थियेटर न जाती तो बेकल-सी होने लगती। मनोरञ्जन नवीनताका दास है और समानताका शत्रु। थियेटरोंके बाद सिनेमाकी सनक सवार हुई; सिनेमाके बाद मिस्मरेजिम और हिप्नटिज्मके तमाशोंकी। ग्रामोफोनके नये रेकार्ड आने लगे। संगीतका चसका पड़ गया। बिरादरीमें कहीं उत्सव होता तो मां-बेटी अवश्य जातीं। कैलाशी नित्य इसी नशेमें डूबी रहती, चलती तो कुछ गुन-गुनाती हुई, किसीसे बातें करती तो वही थियेटर और सिनेमाकी। भौतिक-संसारसे अब उसे कोई वास्ता न था, अब उसका निवास कल्पना-संसारमें था। दूसरे लोककी निवासिनी होकर उसे प्राणियोंसे कोई सहानुभूति न रही, किसीके दुःखपर जरा भी दया न आती। स्वभावमें उच्छृ-ङ्खलताका विकास हुआ, अपनी सुरुचिपर गर्व करने लगी। सहे-लियोंसे डींगें मारती; यहांके लोग मूर्ख हैं, यह सिनेमाकी कदर क्या करेंगे। इसकी कदर तो पूर्वके लोग करते हैं। वहां मनोरंजनकी सामग्रियां उतनी ही आवश्यक हैं जितनी हवा। जभी तो वह इतने प्रसन्नचित्त रहते हैं; मानों किसी बातकी

चिन्ता ही नहीं है। यहां किसीको इसका रस ही नहीं, जिन्हें भगवानने सामर्थ भी दिया है वह भी सरेशामसे मुंह ढांपकर पड़े रहते हैं। सहेलियां कैलाशीकी यह गर्वपूर्ण बातें सुनतीं और उसकी और भी प्रशंसा करतीं। वह उनका अपमान करनेके आवेगमें आप ही हास्यास्पद बन जाती थीं।

पड़ोसियोंमें इन सैर-सपाटोंकी चर्चा होने लगी। लोक-सम्मति किसीकी रिआयत नहीं करती। किसीने सिरपर टोपी टेढ़ी रखी और पड़ोसियोंकी आंखोंमें खुबा, कोई जरा अकड़कर चला और पड़ोसियोंने आवाजें कसीं। विधवाके लिये पूजा पाठ है, तीर्थ व्रत है, मोटा खाना है, मोठा पहनना है; उसे विनोद और विलास, राग और रङ्गकी क्या जरूरत? विधाताने उसके सुखके द्वार बन्द कर दिये हैं। लड़की प्यारी सही; लेकिन शर्म और हया भी तो कोई चीज है! जब मां बाप ही उसे सिर चढ़ाये हुए हैं तो उसका क्या दोष? मगर एक दिन आंखें खुलेंगी अवश्य। महिलायें कहतीं, बाप तो मर्द है, लेकिन मां कैसी है; उसको जरा भी विचार नहीं कि दुनियां क्या कहेगी। कुछ उन्हींकी एक दुलारी बेटी थोड़े ही है; इस भांति मन बढ़ाना अच्छा नहीं।

कुछ दिनोंतक तो यह खिचड़ी आपसमें पकती रही। अन्तको एक दिन कई महिलाओंने जागेश्वरीके घर पदार्पण किया। जागेश्वरीने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें करनेके बाद एक महिला बोली—"महिलायें

रहस्यकी बातें करनेमें बहुत अभ्यस्त होती हैं—बहन, तुम्हीं मजेमें हो कि हंसी-खुशीमें दिन काट देती हो। हमें तो दिन पहाड़ हो जाता है। न कोई काम न धंधा; कोई कहांतक बातें करे?"

दूसरी देवीने आंखें मटकाते हुए कहा—"अरे यह तो बड़े बड़ेकी बात है। सभीके दिन हंसी-खुशीमें कटें तो रोये कौन? यहां तो सुबहसे शामतक चक्की-चूल्हेहीसे छुट्टी नहीं मिलती; किसी बच्चेको दस्त आ रहे हैं तो किसीको ज्वर चढ़ा हुआ है। कोई मिठाइयोंकी रट लगा रहा है तो कोई पैसोंके लिये महना-मथ मचाये हुए है। दिनभर हाय हाय करते बीत जाता है। सारे दिन कठपुतलियोंकी भांति नाचती रहती हूं।"

तीसरी रमणीने इस कथनका रहस्यमय भावसे विरोध किया—"बड़ेकी बात नहीं है वैसा दिल चाहिये। तुम्हें कोई राज-सिंहासनपर बिठा दे तब भी तस्कीन न होगी। तब और भी हाय हाय करोगी।"

इसपर एक वृद्धाने कहा—नौज ऐसा दिल। यह भी कोई दिल है कि घरमें चाहे आग लग जाय, दुनियामें कितना ही उपहास हो रहा हो, लेकिन आदमी अपने राग-रङ्गमें मस्त रहे! वह दिल है कि पत्थर! हम गृहिणी कहलाती हैं, हमारा काम है अपनी गृहस्तीमें रत रहना। आमोद-प्रमोदमें दिन काटना हमारा काम नहीं। और महिलाओंने इस निर्दय व्यंग्यपर लज्जित होकर सिर झुका दिया। वह जागेश्वरीकी चुटकियां लेनी चाहती थीं,

उसके साथ बिल्ली और चूहेकी निर्दय क्रीड़ा करना चाहती थीं, आहतको तड़पाना उनका उद्देश्य था। इस खुली हुई चोटने उनके परपीड़न-प्रेमके लिये कोई गुंजाइश न छोड़ी। परन्तु बात पलट दी और स्त्री-शिक्षापर बहस करने लगीं। किन्तु जागेश्वरीको ताड़ना मिल गई। स्त्रियोंके बिदा होनेके बाद उसने जाकर पतिसे यह सारी कथा कह सुनाई। हृदयनाथ उन पुरुषोंमें न थे जो प्रत्येक अवसरपर अपनी आत्मिक स्वाधीनताका स्वांग भरते हैं, हठधर्मीको आत्मस्वातन्त्र्यके नामसे छिपाते हैं। वह सचिन्त भावसे बोले—तो अब क्या होगा?

जागे०—तुम्हीं कोई उपाय सोचो।

हृदयनाथ—पड़ोसियोंने जो आक्षेप किया है वह सर्वथा उचित है। कैलाशकुमारीके स्वभावमें मुझे एक विचित्र अन्तर दिखाई दे रहा है। मुझे स्वयं ज्ञात हो रहा है कि उसके मनबहलावके लिये हम लोगोंने जो प्रथा निकाली है वह मुनासिब नहीं है। उनका यह कथन सत्य है कि विधवाओंके लिये यह आमोद-विनोद वर्जित है। अब हमें यह परिपाटी छोड़नी पड़ेगी।

जागे०—लेकिन कैलाशी तो इन खेल-तमाशोंके बिना एक दिन भी नहीं रह सकती।

हृदयनाथ—उसकी मनोवृत्तियोंको बदलना पड़ेगा।

* * * * *

३

शनैः शनैः यह विलासोन्माद शांत होने लगा। वासनाका

तिरस्कार किया जाने लगा। पण्डितजी संध्या समय ग्रामोफोन न बजाकर कोई धर्मग्रन्थ पढ़कर सुनाते। स्वाध्याय, संयम-उपासनामें मां-बेटी रहने लगीं। कैलाशीको गुरुजीने दीक्षा दी, मोहल्ले और बिरादरीकी स्त्रियां आईं, उत्सव मनाया गया।

मां-बेटी अब किश्तीपर सैर करनेके लिये गंगा न जातीं बल्कि स्नान करनेके लिये। मन्दिरोंमें नित्य जातीं। दोनों एकादशीको निर्जल व्रत रहने लगीं। कैलाशीको गुरुजी नित्य सन्ध्या समय धर्मोपदेश करते। कुछ दिनोंतक तो कैलाशीको यह विचार-परिवर्तन बहुत कष्टजनक मालूम हुआ, पर धर्मनिष्ठा नारियोंका स्वाभाविक गुण है, थोड़े ही दिनोंमें उसे धर्मसे रुचि हो गई। अब उसे अपनी अवस्थाका ज्ञान होने लगा था। विषय-वासनासे चित्त आप-ही-आप खिंचने लगा। 'पति' का यथार्थ आशय समझमें आने लगा था। पति ही स्त्रीका सच्चा मित्र, सच्चा पथ-दर्शक और सच्चा सहायक है। पतिविहीन होना किसी घोर पापका प्रायश्चित्त है। मैंने पूर्व जन्ममें कोई अकर्म किया होगा। पतिदेव जीवित होते तो मैं फिर मायामें फंस जाती। प्रायश्चित्तका अवसर कहां मिलता। गुरुजीका वचन सत्य है कि परमात्माने तुम्हें पूर्व कर्मोंके प्रायश्चित्तका यह अवसर दिया है। वैधव्य यातना नहीं है, जीवोद्धारका साधन है। मेरा उद्धार त्याग, वैराग्य, भक्ति और उपासनासे ही होगा।

कुछ दिनोंके बाद उसकी धार्मिक वृत्ति इतनी प्रबल हुई कि अन्य प्राणियोंसे वह पृथक् रहने लगी, किसीको न छूती। मह-

रियोंसे दूर रहती, सहेलियोंसे गलेतक न मिलती, दिनमें दो-दो तीन-तीन बार स्नान करती, हमेशा कोई-न-कोई धर्मग्रन्थ पढ़ा करती। साधु-महात्माओंके सेवा-सत्कारमें उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता। जहां किसी महात्माके आनेकी खबर पाती, उनके दर्शनोंके लिये विकल हो जाती, उनकी अमृतवाणी सुननेसे जी न भरता। मन संसारसे विरक्त होने लगा। तल्लीनताकी अवस्था प्राप्त हो गई। घण्टों ध्यान और चिन्तनमें मग्न रहती। सामाजिक बन्धनोंसे घृणा हो गई। हृदय स्वाधीनताके लिये लालायित हो गया। यहांतक कि तीन ही वर्षोंमें उसने संन्यास ग्रहण करनेका निश्चय कर लिया।

मां-बापको यह समाचार ज्ञात हुआ तो होश उड़ गये। मां बोली—बेटी, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है कि तुम ऐसी बात सोचती हो?

कैलाशकुमारी—माया-मोहसे जितनी निवृत्ति हो जाय उतना ही अच्छा।

हृदय०—क्या अपने घरमें रहकर माया-मोहसे मुक्त नहीं हो सकती हो? माया मोहका स्थान मन है, घर नहीं।

जागे०—कितनी बदनामी होगी?

कैलाश०—अपनेको भगवानके चरणोंपर अर्पण कर चुकी तो मुझे बदनामीकी क्या चिन्ता?

जागे०—बेटी तुम्हें न हो हमको तो है। हमें तो तुम्हारा ही सहारा है। तुमने जो संन्यास ले लिया तो हम किस आधारपर जियेंगे?

कैलाश०—परमात्मा ही सबका आधार है। किसी दूसरे प्राणीका आश्रय लेना भूल है।

दूसरे ही दिन यह बात मोहल्लेवालोंके कानोंमें पहुंच गई। जब कोई अवस्था असाध्य हो जाती है तो हम उसपर व्यंग्य करने लगते हैं। यह तो होना ही था, नई बात क्या हुई? लड़कियोंको इस तरह स्वच्छन्द नहीं कर दिया जाता। फूले न समाते थे कि लड़कीने कुलके नामको उज्ज्वल कर दिया, पुराण पढ़ती है, उपनिषद् और वेदान्तका पाठ करती है, धार्मिक समस्याओंपर ऐसी-ऐसी दलीलें करती है कि बड़े-बड़े विद्वानोंकी जबान बन्द हो जाती है, तो अब क्यों पछताते हैं? भद्र पुरुषोंमें कई दिनोंतक यही आलोचना होती रही। लेकिन जैसे अपने बच्चेको दौड़ते-दौड़ते धमसे गिर पड़नेपर हम पहले क्रोधके आवेशमें उसे झिड़कियां सुनाते हैं, इसके बाद गोदमें उठाकर आंसू पोंछने और फुसलाने लगते हैं, उसी तरह इन भद्र पुरुषोंने व्यंग्यके बाद इस गुत्थीको सुलझानेको :सोचना शुरू किया। कई सज्जन हृदयनाथके पास आये और सिर झुकाकर बैठ गये। विषयका आरम्भ कैसे हो।

कई मिनटके बाद एक सज्जनने कहा—सुना है डाक्टर गौड़का प्रस्ताव आज बहुमतसे स्वीकृत हो गया था।

दूसरे महाशय बोले—यह लोग हिन्दू-धर्मका सर्वनाश करके छोड़ेंगे।

तीसरे महानुभावने फर्माया—सर्वनाश तो हो ही रहा है, अब

और कोई क्या करेगा। जब हमारे साधु-महात्मा, जो हिन्दू-जातिके स्तम्भ हैं, इतने पतित हो गये हैं कि भोली-भाली युवतियोंको बहकानेमें सङ्कोच नहीं करते तो, सर्वनाश होनेमें रह ही क्या गया ?

हृदयनाथ—यह विपत्ति तो मेरे सिर ही पड़ी हुई है। आप लोगोंको तो मालूम होगा ?

पहले महाशय—आपहीके सिर क्यों ? हम सभीके सिर पड़ी हुई है।

दूसरे महाशय—समस्त जातिके सिर कहिये।

हृदयनाथ—उद्धारका कोई उपाय सोचिये।

पहले महाशय—आपने समझाया नहीं ?

हृदयनाथ—समझाके हार गया। कुछ सुनती ही नहीं।

तीसरे महाशय—पहले ही भूल हुई। उसे इस रास्तेपर डालना ही न चाहिये था।

पहले महा०—उसपर पछतानेसे क्या होगा ? सिरपर जो पड़ी है उसका उपाय सोचना चाहिये। आपने समाचारपत्रोंमें देखा होगा; कुछ लोगोंकी सलाह है कि विधवाओंसे अध्यापकोंका काम लेना चाहिये। यद्यपि मैं इसे भी बहुत अच्छा नहीं समझता, पर संन्यासिनी बननेसे तो कहीं अच्छा है। लड़की अपनी आंखोंके सामने रहेगी। अभिप्राय केवल यही है कि कोई ऐसा काम होना चाहिये जिसमें लड़कीका मन लगे। किसी अवलम्बके बिना मनुष्यको भटक जानेकी शंका सदैव बनी रहती

है। जिस घरमें कोई नहीं रहता, उसमें चमगादड़ बसेरा लेते हैं।

दूसरे महाशय—सलाह तो अच्छी है। मोहल्लेकी दस-पांच कन्यायें पढ़नेके लिये बुला ली जायें। उन्हें किताबें, गुड़ियां आदि इनाम मिलता रहे तो वह बड़े शौकसे आयेंगी। लड़कीका मन तो लग जायगा ?

हृदयनाथ—देखा चाहिये। भरसक समझाऊंगा।

ज्योंही यह लोग बिदा हुए, हृदयनाथने कैलाशकुमारीके सामने यह तजवीज पेश की। कैलाशीको संन्यस्तके उच्चपदके सामने अध्यापक बनना अपमानजनक जान पड़ता था। कहां वह महात्माओंका सत्संग, वह पर्वतोंकी गुफा, वह सुरम्य प्राकृतिक दृश्य, वह हिमराशिकी ज्ञान-मय ज्योति, वह मानसरोवर और कैलाशकी शुभ्र छटा, वह आत्मदर्शनकी विशाल कल्पनाएं और कहां बालिकाओंको चिड़ियोंकी भांति पढ़ाना। लेकिन हृदयनाथ कई दिनों तक लगातार सेवा-धर्मका माहात्म्य उसके हृदयपर अंकित करते रहे। सेवा ही वास्तविक संन्यास है। संन्यासी केवल अपनी मुक्तिका इच्छुक होता है, सेवा-व्रतधारी अपनेको परमार्थकी वेदीपर बलि दे देता है। इसका गौरव कहीं अधिक है। देखो, ऋषियोंमें दधीचिका जो यश है, हरिश्चन्द्रकी जो कीर्ति है, उसकी तुलना और कहां की जा सकती है। संन्यास स्वार्थ है, सेवा त्याग है, आदि। इस कथनकी उपनिषदों और वेद-मन्त्रोंसे पुष्टि की। यहांतक कि धीरे-धीरे

कैलाशीके विचारोंमें परिवर्तन होने लगा। पण्डितजीने मोहल्ले-वालोंकी लड़कियोंको एकत्र किया, पाठशालाका जन्म हो गया। नाना प्रकारके चित्र और खिलौने मंगाये गये। पण्डितजी स्वयं कैलाशकुमारीके साथ लड़कियोंको पढ़ाते। कन्यायें शौकसे आतीं। उन्हें यहांकी पढ़ाई खेल मालूम होती। थोड़े ही दिनोंमें पाठशालाकी धूम मच गई, अन्य मोहल्लोंकी कन्याएं भी आने लगीं।

४

कैलाशकुमारीकी सेवा-प्रवृत्ति दिनों दिन तीव्र होने लगी। दिनभर लड़कियोंको लिये रहती। कभी पढ़ाती कभी उनके साथ खेलती, कभी सीना-पिरोना सिखाती। पाठशालाने परिवारका रूप धारण कर लिया। कोई लड़की बीमार हो जाती तो तुरन्त उसके घर जाती, उनकी सेवा-शुश्रूषा करती, गाकर या कहानियां सुनाकर उनका दिल बहलाती।

पाठशालाको खुले हुए सालभर हुआ था। एक लड़कीको जिससे वह बहुत प्रेम करती थी, चेचक निकल आई। कैलाशी उसे देखने गई। मां-बापने बहुत मना किया पर उसने न माना, कहा—तुरत लौट आऊंगी। लड़कीकी हालत खराब थी। कहां तो रोते-रोते तालु सूखता था, कहां कैलाशीको देखते ही मानों सारे कष्ट भाग गये। कैलाशी एक घण्टातक वहां रही। लड़की बराबर उससे बातें करती रही है। लेकिन जब वह चलनेको उठी तो लड़कीने रोना शुरू किया। कैलाशी मजबूर होकर बैठ गई। थोड़ी देरके बाद जब वह फिर उठी तो फिर लड़कीकी यही दशा

हो गई। लड़की उसे किसी तरह छोड़ती न थी। सारा दिन गुजर गया। रातको भी लड़कीने न आने दिया। हृदयनाथ उसे बुलानेको बार-बार आदमी भेजते पर वह लड़कीको छोड़कर न जा सकती। उसे ऐसी शङ्का होती थी कि मैं यहांसे चली और लड़की हाथसे गई। उसकी मां विमाता थी। इससे कैलाशीको उसके ममत्वपर विश्वास न होता था। इस प्रकार वह तीन दिनों तक वहां रही, आठों पहर बालिकाके सिरहाने बैठी पङ्खा झलती रहती। बहुत थक जाती तो दीवारसे पीठ टेक लेती। चौथे दिन लड़कीकी हालत कुछ संभलती हुई मालूम हुई तो वह अपने घर आई। मगर अभी स्नान भी न करने पाई थी कि आदमी पहुंचा। जल्द चलिये, लड़की रो-रोकर जान दे रही है।

हृदयनाथने कहा—कह दो अस्पतालसे कोई नर्स बुला लें।

कैलाशकुमारी—दादा, आप व्यर्थमें झुंझलाते हैं। उस बेचारीकी जान बच जाये मैं तीन दिन नहीं, तीन महीने उसकी सेवा करनेको तैयार हूं। आखिर यह देह किस दिन काम आयेगी।

हृदय०—तो और कन्यायें कैसे पढ़ेंगी?

कैलाशी—दो-एक दिनमें वह अच्छी हो जायगी, दाने मुरझाने लगे हैं तबतक आप इन लड़कियोंकी देखभाल करते रहियेगा।

हृदय०—यह बीमारी छूतसे फैलती है।

कलाशी—(हंसकर) मर जाऊंगी तो आपके सिरसे एक विपत्ति टल जायगी। यह कहकर उसने उधरकी राह ली। भोजनका थाली परसी रह गई।

तब हृदयनाथने जागेश्वरीसे कहा—जान पड़ता है बहुत जल्द यह पाठशाला भी बन्द करनी पड़ेगी।

जागे०—बिना मांझीके नावका पार लगना कठिन है। जिधर हवा पाती है उधर ही बह जाती है।

हृदय०—जो रास्ता निकालता हूं वही कुछ दिनोंके बाद किसी दलदलमें फँसा देता है। अब फिर बदनामीके सामान होते नजर आ रहे हैं। लोग कहेंगे दूसरोंके घर जाती है और कई कई दिन पड़ी रहती है। क्या करूं, कह दूं लड़कियोंको न पढ़ाया करो ?

जागे०—इसके सिवाय और हो ही क्या सकता है ?

कैलाशकुमारी दो दिनके बाद लौटी तो हृदयनाथने पाठशाला बन्द कर देनेकी समस्या उसके सामने रखी। कैलाशीने तीव्र स्वरसे कहा—अगर आपको बदनामीका इतना भय है तो मुझे विष दे दीजिये। इसके सिवाय बदनामीसे बचनेका और कोई उपाय नहीं है।

हृदय०—बेटी, संसारमें रहकर तो संसारकी सी करनी ही पड़ेगी।

कैलाशी—तो कुछ मालूम भी तो हो कि संसार मुझसे क्या चाहता है। मुझमें जीव है, चेतना है, जड़ क्योंकर बन जाऊं ? मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपनेको अभागिनी दुखिया समझूं और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूं। ऐसा क्यों करूं ? संसार मुझे जो चाहे समझे, मैं अपनेको अभागिनी नहीं समझती। मैं अपने आत्म-सम्मानकी रक्षा आप कर सकती हूं। मैं इसे अपना घोर अपमान समझती हूं कि पग पगपर मुझपर शङ्का की जाय, नित्य कोई चरवाहोंकी भांति मेरे पीछे लाठी लिये घूमता रहे कि किसीके खेतमें न जा पड़ूं। यह दशा मेरे लिये असह्य है। यह कहकर कैलाशकुमारी वहांसे चली गई कि कहीं मुंहसे अनर्गल शब्द न निकल पड़ें। इधर कुछ दिनोंसे उसे अपनी बेकसीका यथार्थ ज्ञान होने लगा था। स्त्री पुरुषकी कितनी अधीन है, मानो स्त्रीको विधाताने इसीलिये बनाया है कि पुरुषोंके अधीन रहे! यह सोचकर वह समाजके अत्याचारोंपर दांत पीसने लगती थी।

पाठशाला तो दूसरे ही दिनसे बन्द हो गई, किन्तु उसी दिनसे कैलाशकुमारीको पुरुषोंसे जलन होने लगी। जिस सुख-भोगसे प्रारब्ध हमें वञ्चित कर देता है उससे हमें द्वेष हो जाता है। गरीब आदमी इसीलिये तो अमीरोंसे जलता है और धनकी निन्दा करता है ? कैलाशी बार-बार झुंझलाती कि स्त्री क्यों पुरुषपर इतनी अवलम्बित है ? पुरुष क्यों स्त्रीके भाग्यका विधायक है ? स्त्री क्यों नित्य पुरुषोंका आश्रय चाहे ? क्यों उनका मुंह ताके ? इसीलिये न कि स्त्रियोंमें अभिमान नहीं है, आत्म-सम्मान नहीं है। नारी-हृदयका कोमल भाव, उसे कुत्तेका दुम हिलाना मालूम होने लगा। प्रेम कैसा, यह सब ढोंग है। स्त्री पुरुषके अधीन है, उसकी खुशामद न करे, सेवा न करे तो उसका निर्वाह कैसे हो!

एक दिन उसने अपने बाल गूंधे और जूड़ेमें एक गुलाबका

फूल लगा लिया। मांने देखा तो ओंठसे जीभ दबा ली। महरियोंने छातीपर हाथ रखे।

इसी तरह उसने एक दिन रङ्गीन रेशमी साड़ी पहन ली। पड़ोसिनोंमें इसपर खूब आलोचनाएं हुईं।

उसने एकादशीका व्रत रखना छोड़ दिया जो पिछले ८ बरसोंसे रखती आई थी। कंघी और आईनेको वह अब त्याज्य न समझती थी।

सहालगके दिन आये। नित्यप्रति उसके द्वारपरसे बरातें निकलतीं। महल्लेकी स्त्रियां अपने अटारियोंपर खड़ी होकर देखतीं। वरके रंग-रूप, आकार-प्रकारपर टीकायें होतीं। जागेश्वरीसे भी बिना एक आँख देखे न रहा जाता। लेकिन कैलाशकुमारी कभी भूलकर भी इन जलूसोंको न देखती। कोई बरात या विवाहकी बात चलाता तो वह मुंह फेर लेती। उसकी दृष्टिमें यह विवाह नहीं, भोली-भाली कन्याओंका शिकार था। बरातोंको वह शिकारियोंके कुत्ते समझती। यह विवाह नहीं है, स्त्रीका बलिदान है।

* * * *

५

तीजका व्रत आया, घरोंमें सफाई होने लगी। रमणियां इस व्रतको रखनेकी तैयारियां करने लगीं। जागेश्वरीने भी व्रतका सामान किया। नई-नई साड़ियां मंगवाईं। कैलाशकुमारीकी ससुरालसे इस अवसरपर कपड़े, मिठाइयां और खिलौने आया करते थ। अबकी भी आये। यह विवाहिता स्त्रियोंका व्रत है। इसका फल है पतिका कल्याण। विधवाएं भी इस व्रतका यथोचित रीतिसे पालन करती हैं। पतिसे उनका सम्बन्ध शारीरिक नहीं, वरन् आध्यात्मिक होता है। उसका इस जीवनके साथ अन्त नहीं होता, अनन्तकालतक जीवित रहता है। कैलाशकुमारी अबतक यह व्रत रखती आई थी। अबकी उसने निश्चय किया मैं यह व्रत न रखूंगी। मांने सुना तो माथा ठोंक लिया। बोली—बेटी, यह व्रत रखना तुम्हारा धर्म है।

कैलाशी०—पुरुष भी स्त्रियोंके लिये कोई व्रत रखते हैं ?

जागे०—मरदोंमें इसकी प्रथा नहीं है।

कैलाशी०—इसीलिये न कि पुरुषोंको स्त्रियोंकी जान उतनी प्यारी नहीं होती जितनी स्त्रियोंको पुरुषोंकी जान ?

जागे०—स्त्रियां पुरुषोंकी बराबरी कैसे कर सकती हैं ? उनका तो धर्म है अपने पुरुषकी सेवा करना।

कैलाशी०—मैं इसे अपना धर्म नहीं समझती। मेरे लिये अपनी आत्माकी रक्षाके सिवाय और कोई धर्म नहीं है।

जागे०—बेटी, गजब हो जायगा, दुनिया क्या कहेगी ?

कैलाशी०—फिर वही दुनिया ! अपनी आत्माके सिवाय मुझे किसीका भय नहीं।

हृदयनाथने जागेश्वरीसे यह बातें सुनीं तो चिन्ता-सागरमें डूब गये। इन बातोंका क्या आशय ? क्या आत्म-सम्मानका भाव जागृत हुआ है या नैराश्यकी क्रूर क्रीड़ा है ? धनहीन प्राणीको

जब कष्ट निवारणका कोई उपाय नहीं रह जाता तो वह लज्जाको त्याग देता है। निस्सन्देह नैराश्यने यह भीषणरूप धारण किया है। सामान्य दशाओंमें नैराश्य अपने यथार्थ रूपमें आता है, पर गर्वशील प्राणियोंमें वह परिमार्जित रूप ग्रहण कर लेता है। हृद्गत कोमल भावोंका अपहरण कर देता है, चरित्रमें अस्वाभाविक विकास उत्पन्न कर देता है। मनुष्य लोकलाज और उपहासकी ओरसे तब उदासीन हो जाता है। यह नैराश्यकी अन्तिम अवस्था है। नैतिक बन्धन टूट जाते हैं।

हृदयनाथ इन्हीं विचारोंमें मग्न थे कि जागेश्वरीने कहा—अब क्या करना होगा?

हृदय०—क्या बताऊं।

जागे०—कोई उपाय है?

हृदय०—बस एक ही उपाय है, पर उसे जबानपर सकता।

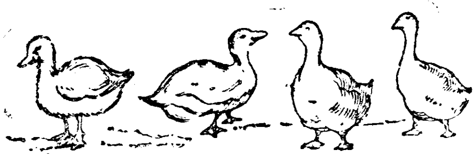

परीक्षा

१

नादिरशाहकी सेनाने दिल्लीमें कतलाम कर रखा है। गलियोंमें खूनकी नदियां बह रही हैं। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। बाजार बन्द हैं। दिल्लीके लोग घरोंके द्वार बन्द किये जानकी खैर मना रहे हैं। किसीकी जान सलामत नहीं है। कहीं घरोंमें आग लगी हुई है, कहीं बाजार लुट रहा है, कोई किसीकी फरियाद नहीं सुनता। रईसोंकी बेगमें महलोंसे निकाली जा रही हैं और उनकी बेहुरमती की जाती है। ईरानी सिपाहियोंकी रक्तपिपासा किसी तरह नहीं बुझती। मानव-हृदयकी क्रूरता, कठोरता और पैशाचिकता अपना विकरालतम रूप धारण किये हुए है। इसी समय नादिरशाहने बादशाही महलमें प्रवेश किया।

दिल्ली उन दिनों भोगविलासका केन्द्र बनी हुई थी। सजावट और तकल्लुफके सामानोंसे रईसोंके भवन सजे रहते थे। स्त्रियोंका बनाव-सिंगारके सिवा कोई काम न था। पुरुषोंको सुख-भोगके सिवा और कोई चिंता न थी। राजनीतिका स्थान शेर शायरीने ले लिया था। समस्त प्रान्तोंसे धन खिंच-खिंचकर दिल्ली आता था और पानीकी भांति बहाया जाता था। वेश्याओंकी चांदी थी। कहीं तीतरोंके जोड़ होते थे, कहीं बटेरों और बुलबुलोंकी

पालियां ठनती थीं। सारा नगर विलास-निद्रामें मग्न था। नादिरशाह शाही महलमें पहुंचा तो वहांका सामान देखकर उसकी आंखें खुल गईं। उसका जन्म दरिद्र घरमें हुआ था। उसका समस्त जीवन रणभूमिमें ही कटा था। भोग-विलासका उसे चसका न लगा था। कहां रणक्षेत्रके कष्ट और कहां यह सुख-साम्राज्य! जिधर आंख उठती थी, उधरसे हटनेका नाम न लेती थी।

सन्ध्या हो गई थी। नादिरशाह अपने सरदारोंके साथ महलकी सैर करता और अपने पसन्दकी चीजोंको बटोरता हुआ दीवाने खासमें आकर कारचोबी मसनदपर बैठ गया। सरदारोंको वहांसे चले जानेका हुक्म दे दिया, अपने सब हथियार खोलकर रख दिये और महलके दारोगाको बुलाकर हुक्म दिया—मैं शाही बेगमोंका नाच देखना चाहता हूं। तुम इसी वक्त उनको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सजाकर मेरे सामने लावो। खबरदार, जरा भी देर न हो। मैं कोई उज्र या इन्कार नहीं सुन सकता।

२

दारोगाने यह नादिरशाही हुक्म सुना तो होश उड़ गये। वह महिलायें जिनपर कभी सूर्य्यकी दृष्टि भी नहीं पड़ी कैसे इस मजलिसमें आयेंगी! नाचनेका तो कहना ही क्या! शाही बेगमोंका इतना अपमान कभी न हुआ था। हा नरपिशाच! दिल्लीको खूनसे रंगकर भी तेरा चित्त शान्त नहीं हुआ। मगर नादिरशाहके सम्मुख एक शब्द भी जबानसे निकालना अग्निके

मुखमें कूदना था, सिर झुकाकर आदाब बजा लाया और आकर रनिवासमें सब बेगमोंको नादिरशाही हुक्म सुना दिया और उसके साथ ही यह इत्तला भी दे दी कि जरा भी ताम्मुल न हो, नादिरशाह कोई उज्र या हीला न सुनेगा। शाही खानदानपर इतनी बड़ी विपत्ति कभी नहीं पड़ी, पर इस समय विजयी बादशाहकी आज्ञाको शिरोधार्य्य करनेके सिवा प्राण-रक्षाका अन्य कोई उपाय नहीं था।

बेगमोंने यह आज्ञा सुनी तो हतबुद्धि-सी हो गईं, सारे रनिवासमें मातम-सा छा गया। वह चहल पहल गायब हो गई। सैकड़ों हृदयोंसे इस अत्याचारीके प्रति एक शाप निकल गया। किसीने आकाशकी ओर सहायता-याचक लोचनोंसे देखा, किसीने खुदा और रसूलका स्मरण किया। पर ऐसी एक महिला भी न थी जिसकी निगाह कटार या तलवारकी तरफ गई हो। यद्यपि इनमें कितनी ही बेगमोंके नसोंमें राजपूतनियोंका रक्त प्रवाहित हो रहा था, पर इन्द्रियलिप्साने "जुहार" की पुरानी आग ठण्डी कर दी थी। सुख-भोगकी लालसा आत्मसम्मानका सर्वनाश कर देती है। आपसमें सलाह करके मर्य्यादाकी रक्षाका कोई उपाय सोचनेकी मुहलत न थी। एक-एक पल भाग्यका निर्णय कर रहा था। हताश होकर सभी ललनाओंने पापीके सम्मुख जानेका निश्चय किया। आंखोंसे आंसू जारी थे, दिलोंसे आहें निकल रही थीं पर रत्नजटित आभूषण पहने जा रहे थे। अश्रु सिंचित नेत्रोंमें सुरमा लगाया जा रहा था, शोक-व्यथित हृदयों-

पर सुगन्धका लेप किया जा रहा था। कोई केश गुंथाती थी, कोई मांगोंमें मोतियां पिरोती थी। एक भी ऐसे पक्के इरादेकी स्त्री न थी जो ईश्वरपर, अथवा अपनी टेकपर, इस आज्ञाको उल्लङ्घन करनेका साहस कर सके।

एक घण्टा भी न गुजरने पाया था कि बेगमोंकी कतार-की-कतार आभूषणोंसे जगमगाती, अपने मुखकी कांतिसे बेले और गुलाबकी कलियोंको लजाती, सुगन्धकी लपटें उड़ाती, छम छम करते हुए दीवाने खासमें आकर नादिरशाहके सामने खड़ी हो गयी।

३

नादिरशाहने एक बार कनखियोंसे परियोंके इस दलको देखा और तब मसनदकी टेक लगाकर लेट गया। अपनी तलवार और कटार सामने रख दी। एक क्षणमें उसकी आंखें झपकने लगीं। उसने एक अंगड़ाई ली और करवट ले लिया। जरा देरमें उसके खर्राटोंकी आवाजें सुनाई देने लगीं। ऐसा जान पड़ा कि वह गहरी निद्रामें मग्न हो गया है। आध घण्टेतक वह पड़ा सोता रहा और बेगमें ज्यों-की-त्यों सिर नीचा किये दीवारके चित्रोंकी भांति खड़ी रहीं। उनमें दो-एक महिलायें जो ढीठ थीं घूंघटकी ओटसे नादिरशाहको देख भी रही थीं और आपसमें दबी जबानसे कानाफूसी कर रही थीं—कैसा भयङ्कर स्वरूप है! कितनी रणोन्मत्त आंखें हैं! कितना भारी शरीर है! आदमी काहेको हैं देव है!

सहसा नादिरशाहकी आंखें खुल गईं। परियोंका दल पूर्ववत् खड़ा था। उसे जागते देखकर बेगमोंने फिर सिर नीचे कर लिये और अंग समेट कर भेड़ोंकी भांति एक दूसरेसे मिल गईं। सबके दिल धड़क रहे थे कि अब यह जालिम नाचने गानेको कहेगा, तब कैसे क्या होगा! खुदा इस जालिमसे बचावे। मगर नाचा तो न जायगा चाहे जान ही क्यों न जाये! इससे ज्यादा जिल्लत अब न सही जायगी!

सहसा नादिरशाह कठोर शब्दोंमें बोला—"खुदाकी बन्दियो, मैंने तुम्हारा इम्तहान लेनेके लिये बुलाया था और अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारी निस्बत मेरा जो गुमान था वह हरफ ब हरफ सच निकला। जब किसी कौमकी औरतोंमें गैरत नहीं रहती, तो वह क़ौम मुरदा हो जाती है। मैं देखना चाहता था कि तुम लोगोंमें अभी कुछ गैरत बाकी है या नहीं। इसीलिये मैंने तुम्हें यहां बुलाया था। मैं तुम्हारी बेहुरमती नहीं करना चाहता था। मैं इतना ऐशका बन्दा नहीं हूं वरना आज भेड़ोंके गल्ला चराता होता। न इतना हवसपरस्त हूं वरना आज फारसमें सरोद और सितारकी तानें सुनता होता, जिसका मजा मैं हिन्दुस्तानी गानेसे कहीं ज्यादा उठा सकता हूं। मुझे सिर्फ तुम्हारा इम्तहान लेना था। मुझे यह देखकर सच्चा मलाल हो रहा है कि तुममें गैरतका जौहर बाकी नहीं रहा। क्या यह मुमकिन न था कि तुम मेरे हुक्मको पैरोंतले कुचल देतीं? जब तुम यहां आ गईं तो मैंने तुम्हें एक और मौका दिया। मैंने नींदका

किया। क्या यह मुमकिन न था कि तुममेंसे कोई खुदाकी बन्दी इस कटारको उठाकर मेरे जिगरमें चुभा देती। मैं कलामे पाककी कसम खाकर कहता हूं कि तुममेंसे किसीको कटारपर हाथ रखते देखकर मुझे बेहद खुशी होती। मैं उन नाज़ुक हाथोंके सामने गर्दन झुका देता। पर अफसोस है कि आज तैमूरी खान्दानकी एक बेटी भी यहां ऐसी न निकली जो अपनी हुरमत बिगाड़नेवालेपर हाथ उठाती! अब यह सल्तनत जिन्दा नहीं रह सकती। इसकी हस्तीके दिन गिने हुए हैं। इसका निशान बहुत जल्द दुनियासे मिट जायगा। तुम लोग जाओ और हो सके तो अब भी सल्तनतको बचाओ, वरना इसी तरह हवसकी गुलामी करते हुए दुनियासे रुखसत हो जाओ!

समाप्त

कितन।

काहेको है